ISSN : 2394-1723

वागर्थ

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका
वर्ष 24, अंक 272, मार्च 2018

संरक्षक
केदारनाथ सिंह
इंद्रनाथ चौधुरी

संपादक
शंभुनाथ

प्रबंध संपादक
डॉ. कुसुम खेमानी

प्रकाशक
नंदलाल शाह

संपादन सहयोग और अंक सज्जा
सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग
36 ए, शेक्सपियर सरणी
कोलकाता–700017
vagarth.hindi@gmail.com
7449503734
(दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे)

आवरण
तारकनाथ राय

संपादकीय 5

कहानियाँ

लोरी : **पल्लवी त्रिवेदी** 11
गुनाह : **मंजुश्री** 18
आषाढ़ की एक रात : **आशुतोष** 25
बकरी चोर (तमिल) : **पेरुमल मुरुगन**
(अनुवाद : अवधेश प्रसाद सिंह) 35
एक्सपायरी डेट (बांग्ला) : **शीर्षेंदु मुखोपाध्याय**
(अनुवाद : सुशील कान्ति) 44

कविताएँ

जसिंता केरकेट्टा/जहीर कुरेशी/बुद्धिनाथ मिश्र
मनोज कुमार झा/तरसेम/जयप्रकाश मानस
अंबिका दत्त/कृष्ण समिद्ध 50

परिचर्चा

भक्ति साहित्य की अर्थवत्ता : **नंदकिशोर आचार्य**
मैनेजर पांडेय/रमेश कुंतल मेघ/अजय तिवारी
राजकुमार/प्रमीला के पी/अरुण कुमार
रवि श्रीवास्तव/आशीष त्रिपाठी
(प्रस्तुति : पूजा गुप्ता) 59

आलेख
महात्मा गांधी और भक्ति साहित्य : **गोपेश्वर सिंह** 92
विश्व दृष्टि
तिब्बती कविताएँ : **तेंजिंग सुनड्यू, तेंजिंग राबागा** 97
वातायन
पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम : **एकांत श्रीवास्तव** 100
समीक्षा संवाद
किस्सागोई का नया जमाना : **गीता दूबे** 103
सोशल मीडिया 110
विविध
मत-मतांतर/किताबें 113
लघुकथाएँ
अपनेक्षित उत्तर : **संतोष सुपेकर** 43
बतरस
हम अमृतकन्याएँ : लालबत्ती की : **कुसुम खेमानी** 116
देश-देशांतर
महादेवी वर्मा और **क्याबशेन डेड्रोल**

साधारण डाक खर्च सहित **वार्षिक सदस्यता :** 300 रुपए/**तीन साल** : 850 रुपए
आजीवन : 3000 रुपए/ विदेश : **वार्षिक** : 40 डॉलर
(रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से मंगाने पर वार्षिक रु.240 अतिरिक्त भेजें)
भारतीय भाषा परिषद, वागर्थ के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें
एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान Bharatiya Bhasha Parishad, Vagarth के नाम या नेफ्ट द्वारा : पंजाब नेशनल बैंक, शाखा : पार्कस्ट्रीट, A/c no. 0573000100107770, IFC Code PUNB0057300 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।
भुगतान के बाद एस एम एस कर दें – 07044972716 : **बोनिक सिंह**(सदस्यता और बिक्री)
10 बजे दिन से 6 बजे संध्या तक
व्यवस्था : **मीनाक्षी दत्तागुप्ता, एस पी श्रीवास्तव;** प्रूफ संशोधन : **मिथिलेश प्रसाद**
समय पर भुगतान करने वाली एजेंसियों को ही हम भविष्य में पत्रिका भेज पाएंगे।

● प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
© सर्वाधिकार सुरक्षित
● वागर्थ से संबंधित सभी विवाद कोलकाता न्यायालय के अधीन होगा।
● **www.bharatiyabhashaparishad.org**

संपादकीय

धर्मनिरपेक्ष ईश्वर

क्या ईश्वर धर्मनिरपेक्ष नहीं है? ईश्वर सभी धर्मों में है और धर्मों से स्वाधीन भी है। भक्त कवियों का ईश्वर ऐसा ही था।

दुनिया के सभी शब्दकोशों में 'सेक्यूलर' का अर्थ है- धार्मिक नियमों से स्वतंत्र। इसका एक अन्य अर्थ है- लौकिक। भक्त कवियों ने वैरागियों की तरह इस लोक को झूठ नहीं माना। कबीर अच्छे गृहस्थ थे। तुलसी ने दुनिया को वृक्ष के रूपक में बांधते हुए उसके हमेशा पल्लवित, फलप्रद और नूतन होने की कामना की थी, 'पल्लवित फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे'। यह भी कहा, 'तुलसी बहुत भलो लागत जग'। भक्ति साहित्य में लौकिक जीवन को ही सुखमय बनाने का रास्ता बताया गया है, 'तुलसीदास मैं-मोर गए बिन जिय सुख कबहुँ न पावै'। भक्ति काव्य में व्यक्तिवाद का विरोध है। बार-बार कहा गया है कि सच्चे सुख के लिए स्वार्थ और अहंकार को त्यागना होगा। संसार की वास्तविकता और मनुष्य की महत्ता स्थापित करना और जीवन में 'सुंदर' की खोज ही भक्त कवियों के मुख्य लक्ष्य थे।

भक्ति काव्य में विविधता और स्थानीय भाषा-प्रेम के साथ सार्वभौमताबोध उसे भारतीय चेतना में एक प्रस्थान बिंदु बना देता है। यदि भक्तों ने कठोर धार्मिक नियमों को तोड़कर अपने-अपने ढंग से उच्च सार्वभौम मूल्यों की प्रस्तावना की है तो कहा जा सकता है कि वे सेक्यूलर थे। सेक्यूलर के अर्थ को 'सर्व धर्म-सम भाव' में सीमित कर देना रूढ़िवादी और भ्रष्ट होने की पूरी छूट देता है। सभी भक्त कवि मूल्यप्रवण और नवोन्मेषी थे। वे पुनरुत्थानवादी न थे। उनका ईश्वर पोथी में कैद, छुआछूत से डरने वाला और कर्मकांड में सीमित न था। उनकी भक्ति ने सांप्रदायिक किलेबंदी तोड़ी। वह एक आध्यात्मिक क्रांति थी, जिसने उन्नीसवीं सदी में आकर नवजागरण का रूप लिया।

भक्ति आंदोलन वेदांत और बौद्ध धर्म के बाद भारतीय जीवन का तीसरा महान क्रांतिकारी उन्मेष था। बौद्ध धर्मावलंबी वैदिक और सनातन हिंदू व्यवस्था से विद्रोह करके बाहर निकल गए थे, जबकि भक्त कवियों ने भीतर रह कर सुधार चाहा। वे उच्छेदवादी की जगह संरक्षणशील उदारवादी थे, 'इनसाइड क्रिटिक' थे। उन्होंने बौद्धों का अधूरा काम भीतर रह कर ही आगे बढ़ाया। दक्षिण भारत के आलवार और नायनार भक्तों से लेकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, कबीर, गुरुनानक, सूर, तुलसी, मीरा, जायसी आदि तक सभी ने कर्मकांड, धार्मिक पाखंड और कट्टरतावाद का विरोध किया था जो आज बढ़-चढ़ गए हैं। उन्होंने भक्ति को भेदभाव के उन्मूलन के अलावा लौकिक

संसार से लगाव और अंत:करण के मधुर विस्तार का औजार बनाया।

कहना न होगा कि सगुण और निर्गुण गौण मामले हैं। भक्ति का प्रधान अर्थ है ज्ञान, 'भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसी)। कबीर के निकट भी भक्ति और ज्ञान अलग तत्व नहीं हैं, 'संतो आई ज्ञान की आंधी रे, भ्रम की टांटी सबै उड़ानी माया रहै न बांधी रे।' ज्ञानरहित भक्ति अंधविश्वास है और भक्तिरहित ज्ञान अहंकार है।

प्रेम मार्ग और ज्ञान मार्ग भी दो अलग संसार नहीं हैं। ज्ञान अपने सर्वोच्च धरातल पर सभी से प्रेम है और प्रेम अपने सर्वोच्च धरातल पर सृष्टि की अखंडता का ज्ञान है। संतों का प्रेम हो, सूफियों का या वैष्णव भक्तों का, हिंसा के उस जमाने में प्रेम ही संपूर्ण भक्ति काव्य का मूल संदेश है।

जायसी के 'पद्मावत' का रत्नसेन स्त्री को जीत कर बलपूर्वक नहीं, बल्कि योगी बन कर प्रेम से अपना बनाता है। एक कवि पहली बार स्त्री में ईश्वर को देखता है। वह उदारतापूर्वक यह भी कहता है, 'विधिना के मारग हैं तेते, सरग नखत तन रोवां जेते', अर्थात- ईश्वर तक पहुँचने के उतने रास्ते हैं, जितने आसमान के नक्षत्र और शरीर के रोएं हैं। जायसी का काव्य भारत की सांस्कृतिक समावेशिकता और प्रेम का आख्यान है। फिल्म में तो इस महाकाव्य का छिलका है। वह शिकार और युद्ध के दृश्यों में 'बाहुबली' की नकल और बंबइया मसाले से बना महज छिलके का आलू चिप्स है! इसमें सामंती वीरता, हिंसा और जौहर का महिमामंडन है। यह फिल्म साहित्यिक कृतियों को तहस-नहस करने का एक और नमूना है।

'इधर देवता- उधर देवता, उफ् पैर रखने की जगह नहीं!' कन्नड़ भक्त कवि बसव ने बारहवीं सदी में यह कहा था। भक्ति एक कठोर धार्मिक-सामंती समाज में घुल-मिल कर और अपने स्वतंत्र विवेक से जीने के लिए 'स्पेस' की खोज थी। सैकड़ों भक्त कवियों ने अपने-अपने ढंग से अपनी भावना व्यक्त की, ईश्वर को जीवन के दुख-हर्ष के भीतर से विविध रूपों में उद्घाटित किया। उनकी भक्ति आज की तरह शोर नहीं थी, एक शांतिपूर्ण वैयक्तिक अनुभूति थी। हिंदी में दक्षिण की तरह शैव भक्त कवि क्यों नहीं हुए, यह शोध का विषय है। राम और इनसे अधिक कृष्ण ने कवियों को ज्यादा आकर्षित किया। उन्होंने इन देव रूपों से अपने हृदय का मिलन करके जाना था कि ईश्वर का अर्थ क्या है। यह भी जाना था कि ईश्वर कैसे उन बुराइयों का प्रतिपक्ष है जो प्राचीन काल से शैतानों या राक्षसों में मूर्त हुई थीं।

भक्त कवियों ने ईश्वर को परंपरा से ग्रहण करते हुए भी वस्तुत: अपनी अनोखी भावनाओं से रचा। वह अलौकिक दिखते हुए भी एक लौकिक पुनर्सृष्टि है। भक्त कवि धार्मिक कर्मकांड, बाह्याचार और दिखावे को महत्व नहीं देते। उनकी आस्था शक्ति प्रदर्शन न थी। वे आजकल की तरह धर्म के नाम पर प्रवचन देकर धन-दौलत नहीं बटोरते थे, उनका भजन धन कमाने का साधन न था। उस जमाने के सद्गुरु च्यवनप्राश, मसाले और साबुन नहीं बेचते थे। तुलसी के शब्दों में सभी भक्तों के लिए धर्म का अर्थ है, 'परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई'। आज धर्म परपीड़ा का राजनीतिक हथियार है, उससे 'परहित' गायब है। धर्म खंजरों, त्रिशूलों और बारूद के धुएं से भर गया है या मनोरंजन की वस्तुओं से। राजनीति का कोई धर्म न हो, पर धर्म की राजनीति है। बाजार का कोई धर्म न हो, पर धर्म का बाजार है। एक तरफ अध्यात्म की जेरक्स कापियाँ हैं। दूसरी तरफ, 'पंडित सोइ जो गाल बजावा' (तुलसी)। धर्म अब एक राजनीतिक औजार है। यह धार्मिक कट्टरता में सिकुड़ गया है या फिल्मी धुन पर मनोरंजन और खाना-पीना है।

भक्ति ने शत्रुता को बढ़ावा देने की जगह 'निर्वैर' को प्रधानता दी थी। कबीर कहते थे 'निरवैरी निहकामता साईं सेती नेह'। तुलसी ने भी लिखा, 'वयरु न कर काहू सन कोई'। हिंसा और मारकाट के जमाने में निर्वैर को महत्व देना साधारण बात नहीं

है। दादूदयाल ने भी लिखा था, 'निरवैरी निज आत्मा साधन का मत सार'। वे सभी भक्त लोग भेदभाव और पाखंड का विरोध करने में 'निरभै' थे। वे अपने ऊपर हँसने वालों से डरते नहीं थे। लोभ तब आज जैसा ही फैला था। भक्त कवियों ने निष्काम भाव को अपनाया, माया से परहेज किया। कबीर ने यह कहा कि जब नाव में पानी और घर में पैसा अधिक हो जाय, सयाने आदमी का काम है कि दोनों हाथ से इसे जल्दी बाहर निकाल दे। भक्तों का शत्रुता, भय और लोभ से मुक्त होने के लिए कहना समाज को बदलने के लिए ऐसी मुनादी है जो वर्तमान बहरे जमाने में सुनाई नहीं देती। यही वजह है कि भक्तिकालीन जागरण की निरंतरता की जगह आज पुनर्सुसुप्ति है, एक विपर्यय है।

हिंदी के पहले दौर के विद्वान आलोचकों ने भक्ति काव्य ग्रंथों के बिखरे और प्रक्षिप्त पाठों को संपादित करके एक महान विरासत को बचाया, वह काम अब के लोगों से संभवतः नहीं होता। उन्होंने दूसरा बड़ा काम रीतिवादी कवियों से भक्त कवियों की श्रेष्ठता स्थापित करके किया। इसके लिए वैचारिक रूप से बहुत लड़ना पड़ा। आज भी कुछ वैसी ही चुनौती है। धार्मिक पाखंडियों से भक्तों की भिन्नता और श्रेष्ठता को उद्घाटित करने की। पहले के विद्वानों ने एक गलती जरूर की, वे भक्ति आंदोलन की महत्ता को समग्रता में परिचित कराते हुए भी निजी पसंद के अनुसार एक न एक कवि के खूंटे से बंध गए थे।

भक्त कवियों का अध्ययन लंबे काल तक कबीर और तुलसी के बीच साहित्यिक ध्रुवीकरण से प्रभावित था। इन्हें लेकर दो विपरीत वैचारिक शिविर बन गए, जबकि परंपराओं के बीच सिर्फ टकराहट नहीं, संबंध भी होता है। भक्ति काव्य और आर्थिक आधार के बीच यांत्रिक भौतिकवादी संबंध भी कम नहीं स्थापित हुआ। दरअसल प्राचीन साहित्य को आधुनिक, क्रांतिकारी या सबाल्टर्नवादी मानदंडों पर परखना गलत है। भक्त कवियों की भिन्नता को उनकी विशिष्टता समझना चाहिए और विविधता को मर्यादा देना उचित है। भक्ति में निर्वैर, निर्भयता, निःस्वार्थता, बाह्याचार-विरोध, सादगी, 'दूसरे' से मिश्रण, घृणा की जगह प्रेम की प्रतिष्ठा, तन्मयता जैसे जो सामान्य तत्व हैं, उन पर ज्यादा जोर देना उचित है। यह देखना ज्यादा जरूरी है कि उन कवियों ने अपनी ऐतिहासिक सीमाओं में मानवता के अर्थ को किस तरह कितना विस्तार दिया। एक समय तुलसी को लेकर ऐसा व्यर्थ विवाद हुआ था कि उन्हें पुनरुत्थानवादी ले उड़े।

भक्त कवियों में कौन बड़ा, कौन छोटा और कौन सामंतवाद का पिट्ठू, यह सब हिंदी आलोचना में ज्यादा बताया जाता रहा है, जबकि आज के शिक्षित लोग भी जाति पहले पूछते हैं। वे जातिवाद और अन्य सामंती तत्वों से ज्यादा भरे हुए हैं।

कबीर का रजनीश के प्रवचनों और मेडोना के गाने तक में उपयोग हुआ। उन्हें कुमार गंधर्व ने भी गाया। तुलसीदास को आशाराम बापू और मुरारी बापू ले उड़े थे, रामकथा पर व्यावसायिक प्रवचनों में तुलसी खो गए। सूर अनूप जलोटा के गाए भजनों तक बंध गए। मीरां को खुद बड़े आलोचकों ने ही उपेक्षित कर रखा था। संत कवि मठों में घेर लिए गए। कबीर जैसी विद्रोही चेतना लेकर दलित समुदायों से फिर लंबे काल तक कवि पैदा नहीं हुए। संत कवियों के मठों में इस समय भीषण लड़ाइयाँ और मुकदमेबाजी है। धार्मिक-सामाजिक भेदभाव का विरोध करने के लिए सभी संत कवियों को लेकर 'हिंदी संत काव्योत्सव' एक स्वप्न है।

दरअसल नए युग में पिछड़ों और दलितों को धार्मिक आश्रय के लिए राम-रहीम जैसे गुरु और डेरा मिलते गए। देवी दत्त पटनायक, अमिश जैसों ने मिथकीय व्याख्याओं की धार्मिक फैक्टरी खोल ली और धर्म को एकरेखीय बौद्धिक मनोरंजन में बदल दिया।

दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, बंगाल, असम ने अपने भक्त कवियों को बचा लिया, यहाँ गंभीर हादसे नहीं हुए। लेकिन हिंदी क्षेत्रों में तो जैसे सांस्कृतिक शून्यता आ गई।

^क्ति साहित्य को 'अर्ली माडर्न' कह कर उसे गौरव देने की कोशिश की जाती है। मान लिया जाता है कि 'मध्यकाल' स्थानांतरित हो गया और हम महान हो गए। याद रखने की जरूरत है कि 'अर्ली माडर्न' पंद्रहवीं सदी से 1789 की फ्रेंच क्रांति तक के यूरोपीय इतिहास के लिए बनी एक पुरानी अवधारणा है। यह अवधारणा नवजागरण-पूर्व के मध्यकाल का निषेध नहीं करती। इससे भी अधिक आपत्तिजनक बात यह है कि यदि प्रारंभिक आधुनिकता आधुनिकता से कमतर चीज है तो हम भक्त कवियों को 'अर्ली माडर्न' कह कर वस्तुतः उनकी मर्यादा बढ़ा रहे हैं या गिरा रहे हैं। कहीं यह अपने को 'माडर्न' समझ कर आत्मगौरवान्वयन तो नहीं है? किसी भी संत और भक्त कवि को 'अर्ली माडर्न' कहना हीनताबोध का द्योतक है। दरअसल यह अंग्रेजी राज की इकहरी आधुनिकता का औचित्य स्थापित करना ही नहीं है, बल्कि एकरूपीय औपनिवेशिक आधुनिकता को भक्ति की विविधता पर थोपना भी है। भक्ति साहित्य को 'अर्ली माडर्न' कहेंगे तो शृंगारिक साहित्य क्या है? पश्चिमी चश्मा उतार देना चाहिए, भक्त कवियों के गौरव के वृहत्तर जातीय-मानवीय संदर्भ कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

भक्ति काव्य में हम माया और लीला- दो खास चीजें पाते हैं। भक्तिकालीन लोकजागरण को समझना माया और लीला की अंत:क्रीड़ाओं को जानना है। कृष्ण लीला है, रामलीला है और कबीर जब 'हरि मेरा पिव मैं हरि की बहुरिया' कहते हैं, तो यह निर्गुण लीला है। भक्ति काव्य में यथार्थ का विरोध नहीं है, माया का विरोध है, 'वर्चुअल रियलिटी' का विरोध है। माया यथार्थ पर आवरण है। यह उस अति-इंद्रीयपरायणता का नतीजा है जो लोभ, विलासिता, जीवन की कृत्रिमता, शिशु हत्या, यौन उत्पीड़न, विद्वेष भावना और भेदभावों की ओर ले जाती है। मनुष्य इंद्रियपरायण प्राणी है। इसलिए भक्त कवियों ने बार-बार कहा कि इंद्रियों को नियंत्रण में रखो। लोभ, उत्पीड़न और भेदभाव में न जाओ। माया 'रामचरितमानस' के रावण और 'पद्मावत' के अलाउद्दीन खिलजी में अपना उत्कर्ष पाती है। हम दोनों को 'माया की आग' द्वारा निगल लिया जाता देखते हैं। कृष्ण, राम, निर्गुण हरि या पद्मावती की लीलाएँ माया को वेध कर यथार्थ को उजागर करने के लिए हैं, नीति पर आधारित समाज बनाने के लिए हैं और जीवन की सुंदरताओं की निरंतर खोज के लिए हैं। माया है, इसलिए लीला है।

ईश्वर क्या है, यह बताने के लिए खुद ईश्वर कभी नहीं आया। मनुष्य ही कभी सत्य, कभी प्रेम, कभी करुणा, कभी ईमानदारी, कभी स्वच्छता, कभी प्रकृति, कभी अपनी देव कल्पनाओं या रहस्यमय आनंदानुभूति में हजारों साल से ईश्वर को खोजता आया है। तुलसी ने 'सियाराममय सब जग जानी' कहा, जबकि 'जय श्रीराम' स्त्री का बहिष्कार है। कबीर दलित आत्मपहचान का संघर्ष जारी रखते हुए किसी बिंदु पर कहते थे, 'जाति न पूछौ साधु की'। तुलसी वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुए भी किसी बिंदु पर कहते थे, 'सबते कठिन जाति अपमाना' और 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माही'। सामाजिक विषमता ने तुलसी को भी मथा था। निश्चय ही सभी भक्त कवियों से एक ही तरह की आवाज की अपेक्षा सही नहीं है। उनके भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तर से आए होने की वजह से यह कभी संभव नहीं था। इतना मानना चाहिए कि सभी भक्त कवि ही उस युग की रूढ़िवादी व्यवस्था में 'एलियनेशन' का अनुभव करते थे। कबीर ने यदि कहा था, 'दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवे', तो मीरां भी बोलती थीं, 'री म्हाँ बैठयां जागा, जगत सब सोबा'। तुलसी ने 'धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो, जोलहा कहो कोऊ' जैसी पंक्तियाँ लिखी थीं और बेगानापन व्यक्त किया था। एक-दूसरे से जोड़ने वाले ऐसे सूत्र ही भक्ति साहित्य को एक आंदोलन का रूप दे रहे थे। यह प्रतिरोध के साथ पुनर्निर्माण की भी आवाज थी। सामान्यतः कहा जा रहा था- दिखावा, घृणा और दमन से मुक्त मानवीय समाज बनाओ!

भक्ति की कविताएँ लोकभाषाओं-ब्रज, अवधी

या सधुक्कड़ी भाषा में लिखी गईं, क्योंकि संस्कृत और फारसी पर सांप्रदायिक पंडितों-मौलवियों का कब्जा था। यह काम लोकजीवन के तत्वों को लेकर हो रहा था, ताकि शास्त्रों-पोथियों का प्रभुत्व मिटे। यह भी देखना होगा कि उसी समय हिंदी की एक बड़ी जातीय जमीन बन रही थी। इस तरह भक्ति काव्य विविधता और सार्वभौमता के साथ स्थानीय जातीय अखंडता की तीव्र होती चेतना से जुड़ा था।

उस जमाने में भी सामाजिक प्रश्नों पर लगातार बहस चल रही थी। कबीर खुल कर तर्क करते थे। तुलसी सुमति और विवेक की बात करते थे। बंधुत्व और समता की बात होती थी। तुलसी धर्म का व्यवसाय करने वाले द्विजों, अराजक शासन और दंभ को चुनौती दे रहे थे, 'द्विज श्रुतिबेचक भूप प्रजासन। कोउ-नहिं मान निगम अनुशासन'। वह बहस उन्नीसवीं सदी के नवजागरण की पूर्वपीठिका थी। उस जमाने में भी कामुकता, हिंसा, दंभ और लोभ बढ़े-चढ़े थे। भयंकर बेरोजगारी थी, 'जीविकाविहीन लोग सीधमान सोच बस/कहैं एक एकन सों, कहां जाई का करी'। यह दशा तब थी, जब मुगलों के समय के यूरोपीय यात्री मोरलैंड के अनुसार भारत दुनिया का समृद्धतम देश था!

भक्त कवि अपने सुख और समृद्धि के लिए भक्त नहीं बने थे। वे अंधविश्वासी नहीं थे। वे ईश्वर को आत्मपरिष्कार के लिए जानना चाहते थे और अनन्य हो जाना चाहते थे, 'जानत तुमहिं तुमहिं हो जाई'। अर्थात- ईश्वर को जानने का अर्थ है, 'दूसरे' का, 'हम-वे' का अहसास न हो। ऐसी आध्यात्मिकता धार्मिक रूढ़ियों और पाखंडों को चुनौती थी। धर्म और अध्यात्म का फर्क यह है कि धर्म का संबंध पृथक पहचान से है, जबकि अध्यात्म अपृथकता की चेतना है। कबीर ने हिंदू और मुसलमान शब्दों का प्रयोग करते हुए कठमुल्लों को ललकारा था। उनके लगभग सौ साल बाद तुलसी हुए। इन्होंने अपने संपूर्ण काव्य में एक भी जगह 'हिंदू' या 'मुसलमान' शब्द का प्रयोग नहीं किया। भिन्न मार्गों से कबीर और तुलसी दोनों कवियों का लक्ष्य एक था- लोकजागरण। दोनों भक्ति की दो आंखों की तरह हैं।

भक्ति साहित्य के अनगिनत संकेतों को समझने की जरूरत है, सिर्फ गाने-बजाने और प्रवचन सुनने से भक्ति नहीं होती। इन दिनों धर्म के संबंध में आम लोगों के अज्ञान का बड़े पैमाने पर शोषण हो रहा है। अज्ञानता-निर्माण एक विद्या है जो मनुष्य की नाजानकारियों का शोषण करती है। सूचना क्रांति के बाद 'अज्ञानता का शास्त्र' बड़े पैमाने पर उनके द्वारा गढ़ा और प्रचारित किया जा रहा है जिन्हें हम पढ़ा-लिखा, देशभक्त या शिक्षक कहते हैं। मीडिया और सोशल मीडिया की ताकत से आम लोगों की अज्ञानता का बड़े पैमाने पर शोषण एक उद्योग का रूप ले चुका है। अफवाहों और भ्रामक सूचना का जाल बिछा है। इससे समझा जा सकता है कि अज्ञानता सिर्फ जानकारी का अभाव नहीं है, यह एक राजनीतिक और प्रौद्योगिक निर्मिति है।

इस 'निर्मित अज्ञानता' से जनता का दिलोदिमाग व्यावसायिक-राजनीतिक रूप से प्रचारित की गई भ्रामक सूचनाओं का भंडार बन जाता है। काफी लोग अपनी नाजानकारी को हर ज्ञान से श्रेष्ठ मानने लगते हैं। शिक्षा के क्षेत्र को नकली विवाद घेर लेते हैं। धर्म अज्ञानता-निर्माण विद्या का एक बड़ा अखाड़ा बन जाता है। नकली विवाद बुनियादी मुद्दों से ध्यान हटा देते हैं। चुनाव में न पूरे होने वाले वादे कर लिए जाते हैं। मार्क्स, गांधी, विवेकानंद, पटेल, नेहरू, अंबेडकर आदि के उद्धरण तोड़-मरोड़ कर रखे जाते हैं और वे सच माने-जाने लगते हैं।

सांप्रदायिकता या आतंकवाद अज्ञानता-निर्माण विद्या की देन है। फिलहाल मानवता की अब तक की सारी उपलब्धियाँ शक के दायरे में ला दी गई हैं। इतिहास को झूठा बताया जाने लगा है। सांप्रदायिक और जातीय स्वार्थों के अनुरूप इतिहास बन रहे हैं। आज इतिहास अज्ञानता के शोषण का एक विशाल मंच है। ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु धर्मों के भीतर छिपे हैं!

शंभुनाथ

लोरी

पल्लवी त्रिवेदी

'मम्मा, तुमने मेरे सामान को फिर हाथ लगाया! क्या खोजती रहती हो तुम मेरे सामान में, मेरी डायरी में? जासूसी कर रही हो क्या मेरी? इसके पहले भी तुम रात को चोरों की तरह मेरे सामान को देख चुकी हो। नाउ दिस इज एनफ। हद है ये तो।' लोरी गुस्से में चीख रही थी।

सुपर्णा के हाथ नाश्ता लगाते- लगाते रुक गए और वह फटी-फटी आंखों से लोरी को देखने लगी।

'आइंदा तुम मेरे सामान को कभी हाथ मत लगाना, वरना मैं ताला बंद करके रखूंगी। बता दे रही हूँ।' लोरी गुस्से में कांप रही थी।

'तू सुन तो सही, पहले नाश्ता कर ले लोरी।' सुपर्णा एकदम झेंप गई थी मानों किसी ने चोरी करते हुए पकड़ लिया हो।

'नहीं करना मुझे नाश्ता।' लोरी एक झटके में तेज कदमों से बड़बड़ाती हुई बाहर निकल गई। सुपर्णा की आंखों से आंसू बह निकले।

ये क्या हो गया है लोरी को। पहले तो कभी इतनी बदतमीजी से बात नहीं करती थी। अभी कुछ महीनों से एकदम रिबेलियन चाइल्ड हो गई है। अभी सिर्फ सोलह साल की ही तो है और माँ से इस कदर झुंझला कर बात करना? क्या हो गया है इसे? एक माँ क्यों अपनी बेटी की जासूसी करेगी, वह तो केयर और परवाह है जो उसे बार-बार देखने पर मजबूर कर देती है कि बेटी कहीं गलत राह पर तो नहीं जा रही? नाजुक उम्र है, कहीं इस उम्र में बहक गई तो सब मुझे ही दोष देंगे। आज सुबोध होता तो इतनी चिंता न होती। अकेली माँ के लिए बच्चा पालना कितना कठिन होता है।

'ओह सुबोध! तुम क्यों चले गए? प्लीज कैसे भी आ जाओ। मुझे तुम्हारी बहुत जरूरत है।' सुपर्णा बिलख कर रो पड़ी। सामने दीवार पर एक फूलमाला के बीच फ्रेम में सब चिंताओं से बेखबर सुबोध की मुस्कुराती तस्वीर नजर आ रही थी। बहुत

देर सुपर्णा उदास बैठी रही। नाश्ता टेबल पर रखा ठंडा होता रहा। अचानक घड़ी पर नजर पड़ी तो देखा दस बजने वाले हैं। ठीक साढ़े दस बजे ऑफिस पहुंचना है। सुपर्णा फटाफट तैयार होकर ऑफिस के लिए निकल गई। ऑफिस में भी आज उसका मन नहीं लग रहा था। बार-बार आंसू उमड़ते थे। कैसे बताए लोरी को कि उसके मन में क्या-क्या चलता रहता है। आंसुओं और हताशा से जूझते हुए सुपर्णा अपनी फाइलें भी निपटाती जा रही थी। अचानक वाट्सएप पर लोरी का मेसेज आया- 'सॉरी मम्मा, लव यू। मैंने कैंटीन में खा लिया है। आप लंच जरूर करना। बाय।'

सुपर्णा की पलकों पर बहुत देर से ठहरा आंसू अचानक गालों पर लुढ़क चला। मन की दुनिया भी अजीब है। एक पल पहले जो आंसू हताशा और अवसाद में बह रहे थे, अब वही प्यार और निश्चिंतता के बन कर बह रहे थे।

शाम को सुपर्णा जब घर पहुँची तो भीतर लाइट जल रही थी। लोरी आ चुकी थी। रोज सुपर्णा ही पहले पहुँचती है। लोरी साढ़े सात बजे तक आती है हमेशा। घर के भीतर घुसते ही लेमनग्रास की भीनी खुशबू ने सुपर्णा का स्वागत किया। एक कॉर्नर में कैंडल लेमनग्रास एसेंस के साथ जल रही थी। टेबल पर रजनीगंधा के ताजे फूल कांच के वास में लगे हुए थे। सारी खिड़कियाँ खुली हुई थीं और नवंबर की गुलाबी सर्दीली हवा कमरे में भरी हुई थी और धीमी आवाज में मेंहदी हसन की गजलें बज रही थीं।

'गुलों में रंग भरे बादे नौ बहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले'

कमरे में घुसते ही सुपर्णा का मन एकदम तरोताजा हो गया। 'मम्मा को मनाने के लिए हैं ये सब तरकीबें। सच में मेरे जैसी प्यारी बेटी किसी के पास नहीं।' सुपर्णा का मन फिर से भीग उठा।

'मम्मा, हाथ-मुंह धोकर आओ जल्दी। चाय तैयार है।' लोरी की आवाज आई तो सुपर्णा जल्दी से वाशरूम की ओर भागी।

पांच मिनट बाद जब वापस लौटी तो टेबल पर चाय के साथ मैड एंगल्स और बिस्किट्स भी तैयार थे। चाय पीते-पीते लोरी अपने दिन भर का लेखा-जोखा सुपर्णा को सुनाने लगी मानों कुछ हुआ ही न हो। बच्चे सचमुच कितने सहज और निर्मल होते हैं। ये तो हम हैं जो एक बात को कलेजे से बिंधा कर रख लेते हैं और दिन-रात घुलते रहते हैं। सुपर्णा को खुद पर गुस्सा और शर्म आ रही थी। क्या जरूरत थी उसे लोरी की डायरी पढ़ने की। इतनी प्यारी बेटी पर क्यों उसे भरोसा नहीं होता।

'लोरी लुक, आय एम सॉरी बेटू।' सुपर्णा की आखें फिर छलछला आईं।

लोरी लपक कर आई और मम्मा के गले लग गई।

'प्लीज मम्मा, डोंट से सॉरी।' लोरी का स्वर भी रुआंसा हो चला था।

'लोरी, मेरी पुच्चू। मैं डर गई थी। कल मेरे ऑफिस में एक कर्मचारी की बेटी किसी लड़के के साथ चली गई। केवल पंद्रह साल की लड़की। अभी तक वापस नहीं आई। बस एक चार लाइन का खत लिखा और चली गई। सब बेहद परेशान हैं। मैं कभी-कभी बहुत डर जाती हूँ लोरी। बस इसलिए।'

'मम्मा, आपकी लोरी कहीं नहीं भागेगी। चिंता मत करो। अगर कभी भाग भी गई तो अगला बंदा खुद दो घंटे में घर छोड़ जाएगा। कोई नहीं झेल सकता मुझे सिवाय मेरी मम्मा के।' लोरी ठहाका मार कर हँस पड़ी।

सुपर्णा भी हँस पड़ी लोरी के साथ-साथ। माँ-बेटी की इस हँसी ने घर के मौसम को सुहाना बना दिया। माँ-बेटी के ठीक पीछे सुबोध मुस्कुरा रहा था। परिवार अभी पूरा था, खुश था।

रात को देर तक सुपर्णा लोरी के बारे में सोचती रही। लोरी पांच साल की थी जब सुबोध की एक एक्सिडेंट में डेथ हो गई थी। तब से लोरी को उसने अकेले बड़ा किया है। कभी कोई कमी नहीं रखी।

पल्लवी त्रिवेदी

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले की पल्लवी वर्तमान में अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के रूप में भोपाल में पदस्थ। एक व्यंग्य संग्रह 'अंजाम -ए-गुलिस्तां क्या होगा'।

वह खुद अच्छी सरकारी नौकरी में थी तो आर्थिक दिक्कत कभी नहीं हुई। लोरी बहुत खुशमिजाज बच्ची थी। पढ़ाई में अब एवरेज लेकिन गिटार में मास्टर। दस साल की उम्र से लोरी गिटार बजा रही है। जब रात की ठंडी हवा में छत पर लोरी सुपर्णा के फेवरिट पुराने गाने गिटार पर बजाती है तो वो सुपर्णा की जिंदगी के सबसे प्यारे पल होते हैं। 'लोरी की उंगलियों में जादू है सचमुच। लोरी शायद बड़ी होकर बहुत अच्छी गिटारिस्ट बने या शायद पेंटर।' सुपर्णा अक्सर सोचा करती।

सुपर्णा ने लोरी को कभी क्लास में फर्स्ट आने के लिए मजबूर नहीं किया। लोरी इस बात के लिए अपनी मम्मा की बहुत कायल है। अक्सर अपने दोस्तों को जब हाई परसेंटेज आने पर भी सर झुकाए डांट खाते देखती तो सुपर्णा को घर आकर थैंक-यू बोलती।

'मम्मा, पता है, आप सबसे प्यारी मम्मा हो। आपको पता है कि दिन-रात भी पढ़ूँ तो भी मैं क्लास में फर्स्ट नहीं आ सकती। आप मुझे नंबरों के लिए कभी ताने नहीं मारे, कभी बगल वाले पिंकू के मार्क्स से मेरा कम्पेरिजन नहीं किया। काश आप मेरे दोस्तों की भी मम्मा होतीं।'

'पगली, अब ज्यादा मस्का मत लगा। डांटती नहीं, इसका मतलब ये नहीं कि तू बिलकुल ही पढ़ाई न करे।' सुपर्णा नकली गुस्से से लोरी के गाल पर हल्की चपत लगाती। लोरी गुनगुनाते हुए अपने कमरे में चली जाती और सुपर्णा देर तक लाड़ में भरी बैठी रहती।

यही लोरी पिछले एक साल से अजीब सा व्यवहार करने लगी है। वाट्सएप पर चैट करते-करते अगर सुपर्णा पहुँच जाए तो हथेलियों से स्क्रीन छुपा लेती है। मम्मा के लिए अब उसके पास ज्यादा समय नहीं है। या तो दोस्तों से मोबाइल पर बात करती रहती है या कानों में इअरफोन लगाए म्युजिक सुनती रहती है। ज्यादा समय आईने के सामने बिताती है। तरह-तरह के फेसपैक, लिपस्टिक और जाने क्या-क्या। रोकने-टोकने पर एकदम गुस्सा हो जाती है। ये कोई उम्र है इन सब बातों में समय गंवाने की? अभी करियर बनाने का टाइम है। बाद में जो चाहे सो करे। जिंदगी भर थोड़े ही टोकेगी मम्मा। अक्सर ही दोनों के बीच तकरार हो जाया करती है। बहस बढ़ जाती तो लोरी अपने कमरे में जाकर बंद हो जाती। सुपर्णा अपने कमरे में परेशान बैठी रहती।

'शायद जनरेशन गैप है जो मैं उसकी उम्र के इस व्यवहार को समझ नहीं पा रही हूँ।' एक दिन सुपर्णा अपनी सहेली जाह्नवी से सारी बातें शेयर कर रही थी।

'क्या करूँ? कैसे उसके मन की बात समझूँ?'

'उसके मन की बात समझने के लिए तुझे कुछ नहीं करना है। बस अपने उस दौर को याद करना है जब तू सोलह की थी। याद कर, हम कैसे घर से भाग कर सारी दोपहर उस इमली के पेड़ के नीचे बैठे रहते थे। कितनी सारी बातें, कितने किस्से हुआ करते थे हमारे पास। कौन किसको ताकता है, कौन किसके पीछे साइकिल से स्कूल तक जाता है, किसकी स्कर्ट पर क्लास से उठते हुए ग्रहण का लाल चांद उग आया था, और याद है वो घुंघराले बालों वाला लड़का जो तेरे पीछे दीवाना था और तू भी कुछ कम दीवानी नहीं थी उसके

पीछे। तेरे घर के सामने से उसका स्कूटर से हॉर्न बजाते हुए निकलना और तेरा भाग कर बरामदे में आना। याद है? आंटी ने भांप लिया था और तुझे टोक दिया था। कितना चिढ़ी थी तू आंटी के ऊपर। बाजार से नई-नई चूड़ियाँ, बिंदी और हेयर क्लिप्स लाकर घर भर दिया करती थी। चोरी-चोरी माँ की लिपस्टिक लगाया करती थी।'

'क्या-क्या बातें याद दिला रही है तू आज। वे भी क्या अल्हड़ बेफिक्री के दिन थे। कैसे गुजर गए पलक झपकते।'

'यही अल्हड़ दिन लोरी के चल रहे हैं सुपर्णा। बस यही बता रही थी तुझे।' जाह्नवी के चेहरे पर एक नटखट मुस्कराहट थी।

'हाँ, इस तरह से तो मैंने सोचा ही नहीं। ये जनरेशन गैप नहीं है। उम्र के अलग-अलग पड़ावों की अलग-अलग जरूरतें हैं, अलग-अलग धड़कनें हैं जो अपनी रिदम में धड़क रही हैं। शुक्रिया यार जान्हवी।' सुपर्णा को जैसे एक नई राह नजर आने लगी थी।

अगली सुबह रविवार की एक बेहद सुंदर सुबह थी। सुपर्णा ने आज कुछ निश्चय किया था।

'लोरी, आज दोपहर को हम दोनों लंच करने कहीं बाहर चलते हैं। बहुत दिनों से कहीं नहीं गए।' नाश्ता करते हुए सुपर्णा ने बड़े प्यार से लोरी से कहा।

'नहीं मम्मा, आज नहीं। आज मुझे बहुत जरूरी प्रोजेक्ट कंप्लीट करना है। फिर किसी दिन चलते हैं।' लोरी ने आलू का पराठा खाते हुए जवाब दिया।

'ओके, एज यू विश।' सुपर्णा थोड़ी उदास हो गई थी।

'अरे हाँ... मम्मा। अभी आप वॉक के लिए गईं थीं तब मौसी का फोन आया था। आपको बुलाया है उन्होंने। बात कर लो उनसे' कह कर लोरी अपने कमरे में चली गई और दो मिनट बाद ही उसके गिटार पर कोई अंग्रेजी धुन का टुकड़ा बजने लगा।

सुपर्णा अपनी बहन को फोन लगाने लगी। बहन ने उसे बुलाया था अभी दस बजे। आर्किटेक्ट आया था और वह अपने मकान की डिजाइन फाइनल करने से पहले सुपर्णा से राय लेना चाहती थी।

'ओके... मैं आती हूँ दस बजे तक।' सुपर्णा तैयार होने चली गई। जब सुपर्णा तैयार होकर बाहर आई तो देखा मंगल काका खड़ा उसका इंतजार कर रहा था।

'मेमसाब... कल मैं जा रहा हूँ।'

'ओह हाँ! मैं तो बिलकुल ही भूल गई थी। आप जा रहे हो। कल मिल कर जाना काका।' कह कर सुपर्णा तेज-तेज कदमों से घर से बाहर निकल गई। रास्ते भर वह मंगल के बारे में सोचती रही। मंगल काका पिछले अठारह सालों से इस घर में काम कर रहा था। जब वह शादी होकर आई थी तब सुबोध के घर की देखभाल करना, खाना बनाना सारे काम मंगल ही करता था। शादी के बाद भी मंगल घर में ही बना रहा। घर के सदस्य की तरह ही था मंगल। दो महीने पहले ही मंगल का बेटा आया था। इंजीनियर हो गया है और अब पिता को अपने साथ रखना चाहता था। मंगल कल जा रहा है अपने बेटे के पास हमेशा के लिए। इधर-उधर की चिंताओं में याद ही न रहा कि कल से मंगल काका नहीं आएगा। सुपर्णा का जी एकदम उदास हो गया। मंगल काका के बिना घर सूना हो जाएगा। कोई और उनकी कमी को पूरा नहीं कर सकेगा कभी। लोरी को तो बचपन से काका ने ही संभाला है। उसे भी थोड़ा बुरा तो लगेगा ही। लेकिन आजकल के बच्चे इन सब बातों के लिए इतने भावुक नहीं होते। यह भी अच्छा ही है। अभी वह काका के लिए एक अच्छा सा पैंट-शर्ट लेकर आएगी लौटते हुए।

सुपर्णा जब बहन के घर से लौटी तो दोपहर का एक बज रहा था। घर का दरवाजा खुला था लेकिन घर में कोई नहीं था। उसने लोरी को आवाज लगाई लेकिन कोई जवाब नहीं आया। वह लोरी

को पुकारती हुई उसके कमरे में पहुंची लेकिन लोरी कमरे में भी नहीं थी। तभी पीछे से लोरी आई और सुपर्णा की आंखों पर अपनी हथेली रख दी।

'ये क्या कर रही है लोरी, छोड़ मुझे।' सुपर्णा हैरानी से उसकी हथेलियाँ हटाने की कोशिश करती हुई बोली।

'सरप्राइज है मम्मा आपके लिए।' लोरी चहक रही थी। आंखें बंद किए-किए ही लोरी सुपर्णा को गार्डेन में ले गई और आंखें खोल दीं।

आंखें खुलते ही सुपर्णा की हैरत का ठिकाना न था। एक छोटा सा स्टेज बना हुआ था लॉन में जिस पर तीन कुर्सियाँ लगी हुई थीं। एक कुर्सी पर नए कपड़ों में मंगल काका बैठे हुए थे। दूसरी कुर्सी पर काका का बेटा राहुल बैठा हुआ था। स्टेज के सामने कुछ कुर्सियाँ लगी थीं जिन पर मंगल काका के और लोरी के कॉलोनी के लोग बैठे हुए थे। लोरी ने सुपर्णा को स्टेज पर मंगल काका की बगल वाली कुर्सी पर बैठाया।

'आज हमारे प्यारे मंगल काका की फेयरवेल पार्टी है। आप सभी लोगों का स्वागत है।' लोरी ने माइक थामा हुआ था और स्पीच दे रही थी।

'मंगल काका! आप मेरे सबसे प्यारे काका हो। आपके साथ बिताया एक-एक पल मेरी मेमोरी में रहेगा। आप अपनी लोरी बिटिया को भूल तो नहीं जाओगे ना काका? वादा करो कि साल में एक बार मुझसे मिलने जरूर आओगे। राहुल भैया, आपको भी प्रॉमिस करना होगा कि आप काका को हर साल मुझसे मिलने भेजोगे।' कहते हुए लोरी रुआंसी हो उठी। मंगल काका भी भावुक होकर आंसू पोछने लगे और उठ कर लोरी को गले लगा कर बोले- 'आऊंगा बिटिया... जरूर आऊंगा।'

'आइ लव यू काका।' लोरी मंगल काका से चिपक कर बच्चों की तरह रो रही थी। सुपर्णा और राहुल की आंखें भी भीग आई थीं।

'अब मम्मा की बारी है।' लोरी ने सुपर्णा को माइक पर इनवाइट किया।

'काका... लोरी के पैदा होने से पहले से आप हमारे साथ हो। ऐसा लग रहा है जैसे कुछ छूट रहा हो इस घर से। लोरी और मैं आपको बहुत मिस करेंगे', कहते हुए सुपर्णा का गला भी भर आया था। वह इस तरह पहले कभी सबके सामने भावुक नहीं हुई थी लेकिन आज लोरी ने उसे भी अपने साथ-साथ इमोशनल कर दिया था। स्पीच के बाद लोरी ने सुपर्णा के हाथों काका को कई गिफ्ट्स दिलवाए। कुछ किताबें, नए कपड़े, एक फोटो का कोलाज जिसमें लोरी और सुपर्णा के साथ काका की हँसती हुई फोटो और लोरी के बचपन की कई फोटो थीं जो काका के साथ थीं। इसके बाद गार्डेन में ही बुफे का इंतजाम था। एक बहुत खूबसूरत फेयरवेल पार्टी लोरी ने अरेंज की थी। जाते-जाते राहुल सुपर्णा के पास आया था और बोला था- 'दीदी... आप कितनी लकी हो। लोरी बहुत प्यारी बच्ची है।'

पार्टी खत्म होने के बाद लोरी अपना प्रोजेक्ट वर्क करने अपनी सहेली के घर चली गई और सुपर्णा अपने कमरे में जाकर लेट गई। सुपर्णा लोरी के बारे में ही सोच रही थी, 'ये लड़की बिलकुल समझ ही नहीं आती। इतनी भावुक है ये भीतर से, मुझे ही पता नहीं। आज काका के लिए जो इसने किया, मैं भी नहीं करती। हे भगवान! इसका दिल इतना ही खूबसूरत बनाए रखना।' सुपर्णा को गर्व हो आया अपनी बेटी पर। मैं उसे ठीक ही बड़ा कर रही हूँ। सुबोध अगर कहीं से देख रहा होगा तो खुश होगा। सुबोध की तरह ही कोमल और नेक दिल पाया है लोरी ने। कैसे एक पिल्ले की तकलीफ पर भी परेशान हो उठती है, चिड़ियों के लिए साल भर बिना नागा दाना-पानी रखती है, गर्मी में आवाज लगाते सब्जी वालों को फ्रिज से ठंडा पानी लाकर पिलाती है। 'खुश रह मेरी प्यारी बच्ची' -सुपर्णा मन ही मन बुदबुदा उठी।

'लेकिन इसके पास इतने पैसे कहाँ से आए? लगभग दस हजार रुपए खर्च हुए होंगे इन सब में।

मुझसे तो मांगे नहीं। शायद पर्स से निकाल लिए होंगे।' सोचते-सोचते सुपर्णा की आंख लग गई। जब वह उठी तो शाम हो चुकी थी और लोरी घर आ चुकी थी।

लोरी आज अलग ही मूड में थी। सुपर्णा के उठने की आहट सुन कर उसके कमरे में आई और सुपर्णा की चादर में घुस कर उससे लिपट गई। आज लोरी एकदम नन्हीं लोरी की तरह बिहेव कर रही थी। जब वह बहुत लाड़ में आती है तो यूँ ही छोटी बच्ची बन कर मम्मा के बिस्तर में घुस कर उनसे चिपक कर लेट जाती है। सुपर्णा ने भी उसे बाहों में लपेट लिया।

'मेला मम्मा...' लोरी मस्ती में तुतला कर बोल रही थी, जैसे वह बचपन में बोला करती थी।

'मेरी लोली...' सुपर्णा ने भी तुतलाने की नकल की और दोनों बहुत जोर से हँस पड़ीं।

'चल उठ, चाय बनाती हूँ। तू हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदल।'

थोड़ी देर बाद चाय पीते हुए लोरी बोली, 'मम्मा, आज डिनर डेट पर चलोगी मेरे साथ?'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं। बड़ी खुशी से।' सुपर्णा खुश होकर बोली। वह खुद लोरी के साथ एक क्वालिटी टाइम बिताना चाह रही थी। ढेर सारी बातें थीं जो वह तसल्ली से लोरी के साथ करना चाह रही थी।

'मम्मा, आज तुम अपनी पिंक वाली स्कर्ट पहनना। तुम बहुत सेक्सी दिखती हो उसमें।' लोरी ने शरारत से कहा।

'यस मदाम, जो आज्ञा।' सुपर्णा झुककर सलाम की मुद्रा बनाते हुए खिलखिला उठी।

रात को दोनों एक ओपन एयर रेस्टोरेंट पहुंचे। सुपर्णा ने फूलों वाले सफेद टॉप के साथ पिंक लांग स्कर्ट पहनी थी और कानों में बड़े-बड़े ईयर रिंग्स और चेहरे पर हल्का मेकअप। सुपर्णा की रंगत एकदम खिल आई थी। कोई नहीं कह सकता था कि वह एक सत्रह साल की बच्ची की माँ है। सुपर्णा इस मार्च में 45 साल की हो जाएगी। लेकिन इस वक्त वह बमुश्किल तीस-बत्तीस की दिखाई दे रही थी। और लेमन यलो कलर के स्लीवलेस टॉप के साथ ब्लैक मिनी स्कर्ट पहने हुए, खुले लंबे घुंघराले बालों और कानों में छोटे-छोटे डायमंड स्टड डाले हुए स्लिम लोरी गजब की खूबसूरत लग रही थी। उसे देख एक पल सुपर्णा सोच बैठी 'इस पर तो इसके स्कूल के कितने लड़के फिदा हो जाते होंगे। क्या इसे भी कोई पसंद होगा?' सुपर्णा अपनी ही सोच पर मुस्कुरा उठी। माँ-बेटी हाथों में हाथ डाल रेस्तराँ में पहुँचीं। वेन्यू लोरी ने ही सिलेक्ट किया था। शहर के सबसे अच्छे एम्बियेंस वाला रेस्तराँ था यह। पूल साइड बुफे और लाइव गजलें। सुपर्णा और लोरी दोनों खाने के दौरान खूब गप्पें मारते रहे। जब बिल आया तो सुपर्णा ने अपना कार्ड निकाला लेकिन लोरी ने उसे तुरंत रोक दिया, 'ना मम्मा, ये मेरी डेट है। बिल मैं पे करूंगी।'

सुपर्णा मुस्कुरा दी। पैसे तो एक ही हैं, मैं करूँ चाहे ये करे क्या फर्क पड़ता है।

लोरी ने खाने का बिल पे किया और दोनों बाहर निकल आए। सुपर्णा कार स्टार्ट करते हुए बोली, 'कितना प्यारा मौसम है लोरी। अगर तुझे नींद न आ रही हो तो थोड़ी देर झील के किनारे वॉक करते हैं।'

लोरी मान गई और सुपर्णा ने कार झील के किनारे लाकर पार्क कर दी। रात के ग्यारह बजे थे और झील एकदम शांत थी। सिर्फ इक्का-दुक्का लोग टहल रहे थे। झील के किनारे पानी में ढेर सारी बत्तखें तैर रही थीं और तट से टकरातीं लहरों की आवाज कानों में एक सुकून घोल रही थी। लोरी और सुपर्णा धीमे-धीमे टहलने लगे।

'एक बात पूछूँ लोरी?'

'हाँ मम्मा, पूछो ना।'

'तुझे कोई लड़का पसंद है क्या... मतलब कोई खास दोस्त?' कहते हुए सुपर्णा खुद ही हिचक गई थी। अभी तक कभी इस बारे में उसने

लोरी से खुल कर बात नहीं की थी मगर अब वह अपने और लोरी के बीच के गैप को भरना चाहती थी।

'नहीं मम्मा, खास तो कोई नहीं। हाँ, दोस्त बहुत सारे हैं।' लोरी ने बड़ी सहजता से जवाब दिया।

'पता है, जब मैं बारहवीं में पढ़ती थी तब एक लड़का मुझे अच्छा लगा करता था।'

'वाओ मम्मा! फिर क्या हुआ बताओ ना?' लोरी ने एक सुखद आश्चर्य से पूछा।

'कुछ नहीं, वह स्कूटर से सामने से निकला करता था और उसके हॉर्न पर मैं बरामदे में दौड़ी चली आती थी। हम मिले कभी नहीं। तेरी नानी को कुछ महसूस हो गया और उन्होंने मेरा बरामदे में आना बंद करवा दिया। फिर कुछ दिन बाद उस लड़के ने भी आना बंद कर दिया। कुछ दिनों में मेरे मन से भी वह लड़का निकल गया। तब मैं समझी कि ये प्यार नहीं था, केवल आकर्षण था जो इस उम्र में हो जाया करता है।'

'आपको किसी से प्यार नहीं हुआ मम्मा?' लोरी अब बड़ों की तरह गंभीर नजर आ रही थी।

'हुआ था। तेरे पापा से। हम लोग चार साल मिलते रहे। फिर शादी कर ली।'

'मम्मा, आपको पापा की बहुत याद आती होगी ना?' लोरी के हाथ का दबाव सुपर्णा ने अपने हाथ पर महसूस किया।

'हाँ, बहुत आती है लेकिन अब उतनी परेशानी नहीं होती। वह तो हमेशा मन में हैं और अब तो तू जो है मेरे साथ।' सुपर्णा प्रेम-भीगे स्वर में बोली।

'मम्मा, क्या मैं अपने लड़के दोस्तों को घर लाकर उनके साथ टाइम बिता सकती हूँ, अभी हम लोग बाहर कैंटीन में या स्कूल में मिलते हैं। एक-दो बार वे घर आए तो मुझे लगा कि शायद आपको उनका आना पसंद नहीं इसलिए फिर कभी नहीं लाई उन्हें घर, लोरी भी अब खुल रही थी।

सुपर्णा को याद आया कि मानस और अंबर एक-दो बार आए थे और ज्यादा देर बैठ गए थे तो सुपर्णा भी उन लोगों के साथ जाकर बैठी रही थी।

'तो इसीलिए उसके बाद कभी दो-चार मिनट से ज्यादा के लिए लोरी के दोस्त नहीं आए घर।'

उसे झेंप हो आई अपने व्यवहार पर।

'हाँ जरूर, बिलकुल घर ला सकती हो तुम अपने दोस्तों को। उन्हें अपने कमरे में भी ले जा सकती हो, उनके साथ बैठ कर स्टडी कर सकती हो। दोस्त तो दोस्त होते हैं। लड़का या लड़की नहीं। बस इतना ध्यान रखना कि कोई तुम्हारे खुलेपन का गलत फायदा न उठाए। दोस्ती की सीमा कभी किसी को पार मत करने देना।'

'ये तो केवल दोस्त हैं, लेकिन अगर कभी कोई खास दोस्त हुआ तो भी क्या उसको मैं घर ला सकूंगी?'

'हाँ, क्यों नहीं। उस खास दोस्त को भी घर लेकर आना, लेकिन दो-तीन साल और रुक जाओ इस खास दोस्ती के लिए। बीस के बाद तुम जिसे चुनोगी वह सचमुच खास होगा। और अगर अभी कोई अच्छा लगने लगे, तो हमेशा ध्यान रखना कि ये दोस्ती तुम्हारा दिल नहीं तुम्हारी उम्र करवा रही है। इस फीलिंग को एन्जॉय करना, लेकिन किसी के साथ अभी इन्वॉल्व नहीं होना। मैं चाहती हूँ मेरी बेटी जिसे चुने वह उसका उम्र भर का साथी बने।' सुपर्णा लोरी का हाथ थामे बोल रही थी।

'जब कोई होगा मम्मा तो सबसे पहले तुमको बताऊंगी। असली वाले खास के बारे में भी और अभी बीस साल से पहले जो खास लगेंगे उनके बारे में भी, जेंटलगर्ल प्रॉमिस।' लोरी सुपर्णा के कंधों पर हाथ रखती हुई हँसती हुई बोली।

इस आधे घंटे की बातचीत से सुपर्णा के मन से एक भारी बोझ मानों हट गया। वह खामखाह परेशान हो रही थी। लोरी इतनी नादान भी नहीं है। बस उसे समझने और ठीक से समझाने की जरूरत थी। उसने लोरी पर नजर रख कर, उसकी जासूसी कर उसे नियंत्रित करना चाहा, लेकिन वह बड़ा खराब तरीका था। किशोर उम्र के बच्चों की एक

निजता होती है, उनका अपना सेल्फ रेस्पेक्ट होता है। अगर हम उसका सम्मान नहीं करेंगे तो वे अपनी जिंदगी में हमें घुसने भी नहीं देंगे। अब उसे यकीन हो गया था कि लोरी के मन तक वह उसकी दोस्त बन कर ही पहुँच सकती है; बल्कि लोरी जिस तरह से उसे हर बार हैरान कर देती है उससे साफ लगता है कि लोरी से उसे भी कितना कुछ सीखने की जरूरत है। आज मंगल काका के लिए पार्टी देकर तो लोरी ने उसे अभिभूत कर दिया। हम बड़े होकर यह सब क्यों नहीं सोच पाते? बच्चों का कोमल और निश्छल मन कितना परफेक्ट रिश्ता है ये। वह लोरी को बड़ा कर रही है और लोरी उसे बच्चा कर रही है।

'मम्मा... एक बात बताऊँ?' लोरी की आवाज से उसका ध्यान टूटा।

'हाँ... बोलो।'

'मम्मा, मैंने आपको बताया नहीं था। पिछले एक साल से मैं रोज शाम को मिहिका के घर गिटार ट्यूशन दे रही हूँ। पांच बच्चे सीखते हैं मुझसे। दस हजार रुपए हर महीने कमा रही हूँ। उन्हीं पैसों से आज काका की पार्टी का खर्चा किया और उन्हीं से होटल का बिल पे किया।'

सुपर्णा हतप्रभ थी। 'क्यों... आखिर ऐसी क्या जरूरत आ गई? क्या तुझे किसी चीज में कोई कमी महसूस हुई लोरी?' सुपर्णा आहत स्वर में बोली।

'ना मम्मा, कैसी बातें करती हो? दुखी न हो प्लीज। मेरे पास खाली समय था और मैं अपना जेबखर्च खुद कमाना चाहती थी। जैसे विदेशों में बच्चे छुट्टियों में और अपने खाली समय में काम करते हैं वैसे। आपके होते तो कोई कमी हो ही नहीं सकती मुझे। अगर नहीं कमाया होता तो आपको डेट पर ले जाने के लिए मुझे अभी न जाने कितने साल इंतजार करना पड़ता। मैं वैसे भी गिटार तो बजाती ही हूँ। वही तो किया मैंने बस।' लोरी ने सुपर्णा को झील किनारे बेंच पर बिठाते हुए कहा।

सुपर्णा ने लोरी का माथा चूम लिया, 'मेरी प्यारी बच्ची... बहुत खुश रह तू हमेशा।'

'मम्मा, एक और बात थी।'

'हाँ... बोल। आज तो तू मुझे हैरान ही कर रही है सुबह से। अब न जाने क्या आने वाला है।' सुपर्णा मुस्कुरा उठी बोलते-बोलते।

'वह... अगर आपका भी कोई खास दोस्त बने तो आप मुझे बताना।' लोरी के चेहरे पर शरारत झलक रही थी।

'कुछ भी पागलों जैसी बात करती है तू... चल अब घर चलें।' सुपर्णा एक झिड़की के साथ उठ खड़ी हुई।

'आइ एम सीरियस मम्मा... मैं चाहती हूँ कि आपका कोई एक खास दोस्त बने।' लोरी के चेहरे पर अब शरारत नहीं बल्कि एक परवाह थी।

सुपर्णा ने लोरी की बात अनसुनी करके कार स्टार्ट की और दोनों रेडियो सुनते हुए घर की ओर चल दिए। दो माँ-बेटी शाम को घर से निकली थीं और दो बेस्ट फ्रेंड्स रात को वापस घर लौट रही थीं।

एफ-6/17, चार इमली, भोपाल (मध्य प्रदेश) मो.09425077766

गुनाह

मंजुश्री

रामरती और चंद्रभान भरी दुपहरिया चिलचिलाती धूप में फसल काट रहे थे, तभी रामहरक का छोटा लड़का कन्हैया दौड़ता हुआ आया। बुरी तरह हांफते-हांफते बोला, 'कक्का, सहर से न जाने कौन-कौन आवा है, तुमका पूछत हैं। फोटूवाला आदमी भी हैं।'

'शहर से... फोटूवाला... हमका पूछत है। गांव मा त कोऊ फोटूवाला कबहुँ आवा नाहीं।'

रामरती और चंद्रभान काम छोड़ कर, फावड़ा-हँसिया लिए घर की ओर भागे।

अपने घर के बाहर जुटी भीड़ देख कर एक अनजानी आशंका से दोनों का दिल घबराने लगा। घर पर सुरसती और लक्षमी दोनों लड़कियाँ अकेली थीं। दौड़ते-हांफते जल्दी-जल्दी भीड़ को धकियाते हुए घर के दरवाजे पर पहुंचे। दरवाजा अंदर से बंद देख कर जान में जान आई। चंद्रभान ने सांकल खटखटाई। सुरसती ने रोते हुए दरवाजा खोला। इतनी भीड़ देखकर दोनों लड़कियाँ बेहद घबरा गई थीं। छोटा-सा हरे रंग से पुता, टूटा-फूटा घर, जिसमें बाहर के ओसारे में ही एक ओर चूल्हा बना हुआ था। छोटा-सा आंगन, जिसके एक कोने में अमरूद के पेड़ के नीचे एक हैंडपंप लगा था और दूसरे कोने में एक गाय बंधी थी जो उसने बरसों पाई-पाई जोड़ कर और कुछ पैसा उधार लेकर इसी साल खरीदी थी।

चंद्रभान के घर सहर से टीवी वाले लोग आए हैं यह खबर जंगल में आग की तरह आनन-फानन में पूरे गांव में फैल गई थी। छोटा-सा सत्तर-पचहत्तर घरों वाला गांव... सब लोग उधर ही लपके आ रहे थे। रामरती का तो घबराहट के मारे बुरा हाल था। ये सब क्या हो रहा है?

'ई का बबाल है, हमरे घर काहे भीड़ जुटी है?' वह सोच रही थी।

जल्दी से घर के अंदर घुस कर दोनों लड़कियों को दिलासा देकर बाहर चंद्रभान के पास आ खड़ी हुई।

'टीवी वाले हैं... टीवी वाले हैं...' सब कानाफूसी करने में जुटे थे।

लोग टीवी वालों को घेरे खड़े थे। कैमरामैन और लाइटमैन घूम-घूम कर घर के अंदर, बाहर और गांव भर के लोगों की तस्वीरें ले रहे थे। टीवी में दिखाई देने के लिए लोगों में होड़-सी लगी थी। उनके लिए ये सब अजूबा ही था। सब एक-दूसरे को धकिया रहे थे। बच्चों में अलग चिल्ल-पों मची हुई थी। भीड़ को हटाती हुई एक लड़की माइक लिए हुए चंद्रभान और रामरती की तरफ बढ़ी।

'आप बुधवा की माँ हैं?'

'हाँ... का हुआ हमार बुधवा का...?' डरते-डरते रामरती ने पूछा।

सुरसती से तीन साल बड़ा उसका इकलौता लड़का जो लगभग पांच साल पहले घर से भाग गया था तब से उसकी कोई खबर नहीं थी।

'आपको मालूम है बुधवा कहाँ है आजकल?' पूछा उस लड़की ने।

'कइसे मालूम रहेगा हमका... घर-द्वार छोड़ कै... गवा... पांच बरस हुइ गए मुंह नहीं देखा।' चंद्रभान बोला।

'कछु बतइहौ... का हुइ गवा हमरे बुधवा का... ठीक त हइ न?' रामरती घबराहट से पसीना-पसीना हुई जा रही थी। बुधवा घर से भाग जरूर गया था और कई सालों से कुछ पता भी नहीं था पर था तो उसका बेटा। न जाने कितनी बार उसने चंद्रभान से शहर जाकर उसे ढूंढ़ लाने की मिन्नत की है। तमाम शंकाओं-कुशंकाओं ने दोनों के मन में हलचल पैदा कर दी थी।

'आपने पता नहीं लगाया इतने बरस में?' चंद्रभान के मुंह पर माइक लगाते हुए वह बोली।

'पता लगाए रहे शुरुआत मा... बहुत जगह खोजे-कोऊ कहत है दिल्ली चला गवा तो कोऊ कहत है कलकत्ता... का करी कहाँ ढूंढ़ी... कहाँ जाई। निकर गवा दोस्तन संग - इक्कौ बार हमरी खबर नाहीं लई... आवारा ससुर... कौनो काम-काज का नाहीं। आ जइहै जब मन करी।' चंद्रभान बोला।

रामरती घबराते हुए बोली, 'बतावा तनी का हुई गवा, आप लोग सहर से हिंआ का करै खातिर आए हो, काहे इत्ती भीर है - ई फोटूवाला हमरी फोटू काहे खींचत हैं?'

'तो आप सच में नहीं जानतीं? टीवी नहीं देखे हैं? खबर नहीं सुने हैं?'

'हिआं गांव मा कौउन खबर देई।'

'अब बतइहौ कछु... का हुइ गवा...' चंद्रभान भी अधीर हो रहा था।

'आपका बुधवा दिल्ली की तिहाड़ जेल में बंद है।' जेल का नाम सुनते ही एकाएक सब तरफ सन्नाटा छा गया। लोगों के मुंह खुले के खुले रह गए।

'जेहल मा... नाहीं नाहीं... ई नाहीं हुइ सकत।' धड़ाम से रामरती जमीन पर गिर पड़ी। तुरंत सारी औरतों ने उसे घेर लिया और मंगरू की औरत उसे पानी पिला कर बिठाने की कोशिश करने लगी।

चंद्रभान का सिर घूमने लगा। मुंह बाए कभी उस लड़की को तो कभी गांववालों को देख रहा था।

कैमरेवाला लगातार फोटो लेने में लगा था।

'कक्का बैठ जाओ तनी हिआं।' खटिया खींचते हुए कामता ने चंद्रभान को सहारा देकर बैठाया।

इधर गांव की औरतों में भी खुसुर-फुसुर होने लगी थी। जेल की बात सुनते ही सुरसती और लक्षमी भी कोठरी के दरवाजे के पास आ खड़ी हुईं। दोनों लगातार रोए जा रही थीं।

'का जुरुम किहिस है ऊ?' आंखें फाड़े पूछ रहा था चंद्रभान।

'पिछले आठ दिनों से तो लगातार यह खबर टीवी पर और अखबारों में आ रही है। ताज्जुब है आपको कैसे नहीं मालूम। हम तो बुधवा के माता-पिता, परिवार और गांव के बारे में पता करने आए हैं।'

'हमारे गांव में किसी के घर में टीवी नहीं है। पंचायत के कमरे में है बस एक ठो। खेती-बारी का प्रोग्राम दिखाते हैं कभी-कभी, उसकी चाभी मुखी के पास रहती है। वो पास के गांव में अपने किसी रिश्तेदार की शादी में गए हैं। कल आएंगे।' कामता बोला।

'दिल्ली में बुधवा ने चार लड़कों के साथ मिल कर एक लड़की का रेप किया है।' वह माइकवाली लड़की बोली।

'रेप... रेप... का होत है रेप?' अचकचाया चंद्रभान।

'इज्जत लूटी है उसने एक लड़की की और उसके तीन दिनों बाद अस्पताल में उस लड़की की मौत हो गई है। अब तो बलात्कार के साथ-साथ मर्डर-मतलब हत्या का मुकदमा भी चलेगा बुधवा पर... लंबी सजा मिलेगी।'

रामरती का कलेजा धक्क से रह गया। मोहल्ले की औरतें मुंह में कपड़ा दबाए चुप्प लगा गईं। सुरसती बुक्का मारकर रोने लगी।

'ये दोनों आपकी लड़कियाँ हैं ना... इतनी ही बड़ी रही होगी वह लड़की।' सुरसती की तरफ इशारा करती हुई बोली वह माइकवाली लड़की और कैमरामैन का कैमरा सुरसती की ओर मुड़ गया। लाइटवाला लाइट डालने लगा उसके चेहरे पर। सबकी निगाहें सुरसती की ओर मुड़ गईं और सुरसती सिमट कर और अंदर दुबक गई। चंद्रभान को काटो तो खून नहीं। पैरों तले जमीन खिसकने लगी।

'नाहीं ई नाहीं हुइ सकत। जरूर कछु गड़बड़ है। गुस्सैल है। मरिबै-कटिबै का तैय्यार रहत है... चोरी-चकारी कर सकत है... पर इ नाहीं कर सकत हमार बुधवा। ई दुइ ठो बहिन है कइसे कर सकत है ऊ ई सब... मैडम जी। हमका बिसवास नाहीं होत है।' रामरती बदहवास-सी बड़बड़ा रही थी।

बुधवा - उसका बुधवा, कलेजा फटा जा रहा था।

'नहीं... नहीं। देखिए यह फोटो।' और अखबार निकाल कर फोटो और खबर दिखाने लगी वह लड़की। लोग फोटो देखने के लिए अखबार पर झुक आए। चंद्रभान तो पढ़-लिख नहीं सकता था। एकटक फोटो देख रहा था। कामता ने ही खबर पढ़ कर सुनाई और उसका कंधा दबा कर हौसला देने की कोशिश करने लगा। चंद्रभान को लग रहा था कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए।

वह लड़की गांव के कुछ और लोगों से बुधवा और उसके दोस्तों के बारे में पूछ रही थी और लगातार रिकॉर्डिंग किए जा रही थी। कुछ लोग नमक-मिर्च लगा कर उसकी आदतों का बखान कर रहे थे तो कई लोग कुछ नहीं जानने का बहाना बना रहे थे। इस गांव में चंद्रभान का परिवार कई पीढ़ियों से रहता चला आ रहा था। गांव के सभी लोग एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं। इस छोटे से गांव में अमीर तो कोई भी नहीं है, बस खाते-पीते लोग हैं। छोटा सा गांव जिस पर सरकार की नजर कभी पड़ी ही नहीं। लगभग सभी मूलभूत सुविधाओं से महरूम। खेत-खलिहान, छुटपुट दुकानें, एक कमरे का अस्पताल और दो कमरों का छोटा सा स्कूल।

मुखी सूरजभान भी अच्छा आदमी है। धीमी रफ्तार से जिंदगी जीने वाला गांव। इतनी गहमागहमी तो उसकी बिटिया के ब्याह में भी नहीं हुई थी। तब तो ढोल-ताशे भी बजे थे और कस्बे से नचनिया भी आई थी। इस बार तो पूरा हड़कंप मच गया। बुधवा ने तो इस सोते-से गांव को देश भर में सुर्खियों में ला दिया था।

मिनटों में चंद्रभान की इज्जत की धज्जियाँ उड़ गईं और था भी क्या उसके पास!! अकाल, भुखमरी तो लगे ही रहते हैं गांव में, पर यह आफत तो ऐसी आई जिसका कोई सानी नहीं। चंद्रभान और उसका परिवार किस पीड़ा से गुजर रहा है इस बात से बेफिक्र वह लड़की और कैमरामैन टीवी के लिए सुर्खियाँ बटोर रहे थे। उनके लिए तो यह रोज की बात है। कुछ दिनों के बाद कोई दूसरी घटना सुर्खियों में आ जाएगी। पर अब चंद्रभान और उसके परिवार के लिए पहले जैसा कुछ नहीं रह गया था। एक ऐसा सैलाब आया जो सब कुछ बहा कर ले गया और जाते-जाते पीछे तमाम कीचड़ छोड़ गया। जिसके गहरे दाग कभी धुल नहीं पाएंगे।

बुधवा के घर से भाग जाने का गम तो यह सोच कर नहीं करते थे कि जहाँ होगा सही सलामत होगा। कभी न कभी वापस आ जाएगा। पर यह क्या हो गया। बुधवा का गांव... बुधवा के माँ-बाप... बुधवा

की बहन... बुधवा के दोस्त... बुधवा-बुधवा... उनकी पहचान बुधवा के इस कांड से जुड़ गई।

धीरे-धीरे सब अपने घरों की ओर खिसकने लगे और टीवी वाले भी अपना झोला-टंटा समेट कर गाड़ी में बैठ कर फुर्र हो गए। रह गया चंद्रभान का परिवार - कामता, मटरू, विशंभर और रमाकांत, कामता विशंभर का लड़का था। जो रायबरेली के डॉ. राममनोहर लोहिया महाविद्यालय में बी. कॉम. कर रहा था। छुट्टियों में घर आया हुआ था।

'कामता... मुंह करिया कइ दिहिस बुधवा। इहै दिन देखे खातिर जिंदा हैं हम दूनो। कौउन मूं लैके सुरसती और लक्षमी का बियाह कराइब, ऊ लड़की सुरसती बराबर रही... जरौ खियाल नाहीं किहिस हम सबन का...' रामरती सुबक-सुबक कर रो रही थी, 'हमका अबहू बिसवास नाहीं होत है।'

दोनों लड़कियाँ एक-दूसरे से लिपटीं अलग रो रही थीं।

झुटपुटा होने लगा था। पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे। उदास अंधेरा दिलों में भी घिरने लगा। आंगन में लटकता लट्टू भी कितनी रोशनी देता। किसी के पास कहने-सुनने को कुछ बचा ही नहीं था। क्या दिलासा देते। सब अपने-अपने में सिमटे बैठे रहे कितनी देर तक।

रात गहराने लगी थी और दिन भर की कवायद ने सबकी कमर तोड़ दी थी। विशंभर ने सबको अपने-अपने घर जाकर आराम करने की सलाह दी और सुबह आने के लिए कह कर सब बाहर निकल गए। लक्षमी रोते-रोते सो गई थी पर उन तीनों की आंखों से नींद गायब थी। सोच-सोच कर दिमाग सुन्न हुआ जा रहा था। दिन भर की घटना सिनेमा की रील जैसी आंखों के सामने बार-बार घूम रही थी।

'अम्मा, ऊ लड़की हमरे बराबर रही। बोलो न अम्मा... का सच्ची भइय्या...' सुरसती रामरती से लिपटी थर-थर कांप रही थी।

क्या बोलती रामरती। बुधवा का चेहरा याद करने की कोशिश कर रही थी। अमरूद के पेड़ के चारों तरफ भागता छोटा सा बुधवा, तो कभी खेतों में

मंजुश्री
कथा लेखन में सक्रिय।
'कथाबिंब' का संपादन।
सेवानिवृत शिक्षिका।

लकड़ी लेकर दौड़ता बुधवा, कभी चंद्रभान से झगड़ता बुधवा तो कभी उस चीखती-चिल्लाती लड़की को घेरे वहशी बुधवा के गड्डमड्ड होते चेहरों में अपने बेटे का चेहरा ढूंढ़ने की कोशिश कर रही थी। बड़ी मुश्किल से सुरसती को सुलाकर दरवाजा भेढ़ कर बाहर ओसारे में चंद्रभान के पास आकर चुपचाप बैठ गई। दोनों के पास एक-दूसरे को दिलासा देने के लिए शब्द नहीं थे। खुले आसमान में टिमटिमाते तारे भी जीवन की इस काली रात के अंधेरे को दूर नहीं कर पा रहे थे। भूख, गरीबी, अकाल के अलावा भी ऐसी विपदा आएगी ऐसी तो कभी कल्पना भी न की थी।

'का हुइ गवा ई बुधवा के बापू... सब मिट्टी मा मिल गवा।'

'नाम न लेओ ऊ मरदूद का... समझो मर गवा...' बीड़ी सोंटते हुए बोला चंद्रभान।

'कौउन मुंह दिखइहौ गांव मा... कारिख पोत गवा हम सबन के मुंह मा... इहै दिन देखै खातिर मानता मानी रहेऊ, भोले बाबा केर।'

'कउनौ कुआँ बावड़ी मा कूद जाइ। भाग जाइ सब छोड़छाड़ कै। सब जंजाल से मुक्ति मिल जाइ।' चंद्रभान रामरती के कंधे पर सिर रख कर सुबकने लगा।

'ई का कहत हौ... हमरा कौउन ठिकाना है... हम सबन का मार डारौ... एकै साथ जहर दै देव।' चंद्रभान के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर रोते हुए रामरती बोली। दोनों की आंखों से नींद कोसों दूर थी। ओसारे में बैठे-बैठे ही पूरी रात गुजर गई। इस कभी न खत्म होने वाली रात की सुबह का किसी को इंतजार न था पर सुबह तो होनी ही थी। पूरब में

सूरज की लाली छाने लगी थी। चिड़ियों की चहचहाहट आज कुछ अधिक ही तीखी लग रही थी। रोज तड़के ही दोनों खेत पर निकल जाते थे जिससे चढ़ते सूरज तक काफी काम निपट जाए।

सुबह-सुबह रमाकांत ने दरवाजा खटखटाया। 'भौजी... ई। रोटी भेजिस है बिंदिया।' रोटी की पोटली थमाते हुए रमाकांत चंद्रभान की बगल में बैठ गया।

'काहू के गले न उतरी रोटी... भैया।'

'अरे भौजी, बिटिया लोगन का त कछु खवाय देओ। रो-रो के हलकान हुइ गई हैं कल से।'

'संभारा भइया, किस्मत का लेखा कौउन बदल सकत है। तुम ही टूट जइहौ त ई सब का करिहैं।'

तब तक विशंभर और कामता भी आ गए थे। सब वही लोग थे पर कितना असामान्य लग रहा था चंद्रभान को सब कुछ। किसी के पास कहने के लिए जैसे कुछ बचा ही न हो।

'आज शाम को मुखी भी आ जाएंगे तब बात करेंगे काका... आगे क्या करना है।'

'करै का का है, अब सब खतम हुइ गवा।'

'खेतवा पै न जइहौ...' विशंभर बोला।

'नाहीं... मन नाहीं है।'

'का करिहौ हिआँ... चला हमहूँ चलत हैं' और तमाम ना-नुकर के बाद चंद्रभान खेत की ओर चल दिया उसके साथ। घर पर भी क्या करता।

रामरती घर पर ही दोनों लड़कियों के साथ रुकी रही, पर किसी काम में मन नहीं लगता था। आज तो दोनों लड़कियाँ दिशा-मैदान के लिए भी अकेली नहीं निकली। सुरसती तो कोठरिया से बाहर ही निकलने के लिए तैयार नहीं थी, ऐसा डर समा गया था उसके मन में।

पूरा दिन कैसे निकल गया मालूम ही नहीं पड़ा। शाम को चंद्रभान विशंभर और कामता के साथ लौटा और निढाल होकर खाट पर पड़ रहा।

दूसरे दिन मुखी सूरजभान वापस लौटा तो टीवी वालों के आने की खबर मिली। हालांकि बुधवा और उसके दोस्तों द्वारा किए गए जघन्य कांड और उसके आरोप में बुधवा के जेल जाने की उड़ती-उड़ती खबर उसे लोहारा में मिल गई थी, पर उसके पीछे गांव में इतना कुछ घट गया उसे नहीं मालूम था।

तुरंत शाम को ही गांव वालों की बैठक बुला कर सलाह-मशविरा हुआ कि आगे क्या करना है।

'का हो चंद्रभान... का बिचार है... बुधवा से मिलै खातिर जइहौ का सहर?' पूछा बदलू बढ़ई ने।

'नाहीं... का करै का है?'

'काहे... का मालूम... झूठै फंसावा गवा हो। इक बार तो मिलै का चाही... कवन जाने कौउन हाल किए होय पुलिस वाले!! मार-मार हड्डी-पसरी तोड़ देहैं।' बोले लक्षमन काका।

'भला होइ, मार डारै ससुर का... हमरे लाने तो मरै गवा है।'

'का कहत हौ, एक्कै तो बिटवा है।'

'अइसन बेटवा का का फायदा... हम त ई गांव मा जिनगी गुजार दिए, अ ऊ मैडम दुइ घंटा मा हमरी जिनगी बरबाद कइ गई। उनका का बिगरा... बिगरा त हमार न... हमार सब कछु लुट गवा। ऊ भूल जइहै दुइ चार दिनन मा, पर हम कबहुँ न भूल पइबै। ई जिनगी भर का कलेस। मरै का गम त इक्कै बार का।'

'हम न जाइब अउर इत्ते बड़े सहर मा कहाँ ढूंढ़ब।' बुधवा को एक नजर देखने की इच्छा भी बलवती होती जा रही थी।

'काका, फिकिर न करो हमरे दोस्त का भाई किसना डिराइवर है हुआ... कुछ त हुइ जाई।' कामता बोला।

'हमहूँ चलब।' रामरती बोली।

'काकी... दिल्ली बहुतै बड़ा सहर है। कहाँ रहियो तुम सब? रहै का कौनो ठिकाना नाहीं... पैसऊ बहुत लागी।'

'अइसा है, हमार कहा मानो तो अबही कहूं जाए का जरूरत नाहीं है। कहाँ भटकियो, सड़क पर खोजिओ का? तिहाड़ जेहल बहुतै बड़ा जेहल है। मिलै न देहै। मिलै खातिर कोरट से आडर चाही।

टीवी मा खबर अइहै कि कब कोरट में पेशी है, हुइ सकत है ऊ बखत देखै का मिल जाए। मिलै न देहैं। कउनौ खबर मिलिहै त बताइब।' मुखी बोला।

सबने हाँ में 'हाँ' मिलाई और अपने-अपने घर आ गए।

फसल पक कर तैयार थी, कटाई के लिए खेत पर तो जाना ही था। रामरती और चंद्रभान फसल की कटाई में व्यस्त रहने की कोशिश करते पर मन न लगता। सब कुछ आंखों के सामने घूमता रहता। उस लड़की की बातें कानों में गूंजती रहतीं। कुछ ज्यादा ही थकान लगने लगी थी। दोनों कितनी-कितनी देर पेड़ के नीचे गुमसुम बैठ रहते। काम बस काम के लिए हो रहा था, करना था तो यंत्रचालित-सा कर रहे थे। इस बार पिछली बार के मुकाबले फसल अच्छी हुई थी, पर उसकी सारी खुशी इस सब में फीकी पड़ गई थी।

न ही किसी से मिलने का मन करता न ही कहीं जाने का। मुंह चुराने लगा था चंद्रभान सबसे हालांकि गांववाले समझदार थे और उसके दुख से वाकिफ थे। उसका मन इतना अशांत रहता था कि सब कुछ छोड़ कर कहीं भाग जाने का मन होता पर भाग कर जाए तो कहाँ जाए, बीवी-बच्चों का क्या होगा। रामरती का रोता चेहरा घूम जाता आंखों के सामने। सुरसती तो एकदम बीमार-सी रहने लगी थी। न जाने कौन सा डर समा गया था। बार-बार रामरती से एक ही बात करती, 'अम्मा ऊ लड़की हमरे बराबर रही।' और फफक-फफक कर रोने लगती।

महीने भर बाद एक दिन मुखी ने चंद्रभान को बताया कि उसने टीवी पर खबर देखी है कि अगले महीने की बीस तारीख को बुधवा और उसके सभी साथियों की कोर्ट में पेशी है। देख लो, तुम जाना चाहो तो चले जाओ पर है बड़ा कठिन काम।

रामरती रोते हुए चंद्रभान से बोली, 'कर तो कछु नाहीं सकत हम लोग, पर देखे का है एक बार बुधवा का... सही मा हमार बुधवा।' उसकी आंसू भरी आंखें देख कर चंद्रभान का मन पिघलने लगा। माँ का दिल।। उसे अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका बुधवा ऐसा काम कर सकता है। मन के किसी कोने में इस खबर के झूठी होने की क्षीण आस थी।

हफ्ते भर बाद चंद्रभान ने कटी हुई फसल मुखी के पास रख कर पैसे लिए, गाय विशंभर के घर बांध कर घर में ताला डाल कर चारों लोग बस से रायबरेली और वहाँ से ट्रेन से दिल्ली के लिए रवाना हो गए। नई दिल्ली स्टेशन पर किसना मिल गया था। उसने वहीं स्टेशन के दूसरी तरफ सीमापुरी के एक मोहल्ले में उनके रहने का इंतजाम कर दिया था। घर क्या था मुर्गी का दड़बा था जिसका एक महीने का किराया 1200 रु. और बिजली का 100 रु. अलग से था। पानी का नल और संडास गली के छोर पर, और कोई चारा भी नहीं था। कहीं तो ठिकाना चाहिए था रामरती और दोनों लड़कियाँ भी साथ थीं। सुरसती का तो बुरा हाल था। उसकी तबियत ठीक नहीं रहती थी। खाना-पीना भी ठीक से नहीं खाती थी। बहुत कमजोर हो गई थी। बात-बात में चौंक जाती थी। जोर की आवाज सुनते ही डर से कांपने लगती। हाथ फैला-फैला कर सिर झटकते हुए अपने को बचाने की कोशिश करने लगती, उसे लगता लोग उसकी तरफ बढ़ रहे हैं। लक्ष्मी हर समय उसके साथ रहती थी।

तीन दिन बाद सोमवार को सुबह 11 बजे कोर्ट में बुधवा की पेशी थी। चारों लोग ढूंढते-ढूंढते तीस हजारी कोर्ट पहुंचे। कोर्ट वैसे तो चालीस-पैंतालिस मिनट की दूरी पर था पर सुबह का समय था। सड़क पर काफी भीड़ थी और जगह-जगह ट्रैफिक जाम था। जगह भी नई थी। कोर्ट की बड़ी सी बिल्डिंग देख कर ही उनके होश उड़ गए। 'जिला न्यायालय तीस हजारी' चारों तरफ़ गाड़ियों और मोटर साइकिलों की भीड़!

किसी तरह वे चारों एक पेड़ के नीचे बैठ कर इंतजार करने लगे। बहुत देर तक इंतजार करने के बाद किसी से पूछने के बाद पता चला कि जज साहब छुट्टी पर हैं आज पेशी नहीं है। अगले महीने की 28 तारीख को है। निराश होकर वापस लौट

आए अब क्या करें। किराया तो एक महीने का दिया ही था। गांव वापस जाना और दोबारा फिर सबके साथ वापस आना बहुत कठिन था। चंद्रभान अकेला होता तो शायद संभव था। वहीं रुकना ठीक लगा पर अब इतने दिन खर्चा कैसे चलेगा? पैसा तो चाहिए और घर पर बैठ कर करे भी तो क्या करे। इसीलिए तीन-चार दिनों बाद से ही पड़ोसी बिसनू के साथ दिहाड़ी मजदूरी के लिए चंद्रभान चौराहे पर खड़ा होने लगा और रामरती ने दो-तीन घरों में काम पकड़ लिया था। गाड़ी तो चल पड़ी, पर काम में मन न लगता था। हर किसी से आंखें चुराते फिरते। कहीं किसी को उनके बारे में पता न चल जाए।

जैसे-तैसे 28 तारीख को फिर वे सब लोग कोर्ट पहुंचे तो मालूम पड़ा आज वकीलों की हड़ताल है और तारीख आगे बढ़ा दी गई है। अब डेढ़ महीने बाद पेशी होगी। दोनों ने सिर ठोंक लिया। यहाँ तो एक-एक दिन काटना भारी हो रहा है। जब गांव में थे तो लगता था गांव छोड़ कर शहर भाग जाएँ। यहाँ इतनी भीड़ में कहीं खो जाएंगे और अब जब यहाँ आ गए हैं तो दम घुटता है गांव वापस जाना है। बार-बार मन होता है बस अब और नहीं अपना गांव ही भला है। फिर यही सोचा कि इस बार यदि पेशी नहीं हुई तो गांव जरूर लौट जाएंगे।

डेढ़ महीने बाद फिर 12 तारीख को सुबह 11 बजे कोर्ट पहुंचे और एक तरफ एक बेंच पर बैठ गए। आज तो कोर्ट परिसर में बहुत गहमागहमी थी। बहुत से कैदी और उनके परिजन, पुलिसवाले, वकील और गाड़ियों की आवाजाही लगी हुई थी। एक तरफ बहुत सी लड़कियाँ और औरतें हाथ में काले झंडे और तख्तियाँ लिए हुए इसी केस के सिलसिले में बुधवा और उसके दोस्तों के खिलाफ नारे लगा रही थीं और उन्हें कड़ी से कड़ी सजा देने की मांग कर रही थीं। टीवी और अखबार वाले माइक और कैमरा लिए उनका इंटरव्यू ले रहे थे। उसी समय जेल की गाड़ी परिसर में घुसी और बहुत सारे पुलिसकर्मी बुधवा और उसके दोस्तों को घेरे हुए भीड़ हटाते हुए कोर्ट के भीतर ले जाने की कोशिश करने लगे। टीवी वालों और उन नारे लगातीं, चप्पलें लहरातीं महिलाओं को संभालना कठिन हो रहा था। पुलिसकर्मियों का इतना बड़ा जत्था उन कैदियों को घेरे न होता तो शायद वे औरतें चप्पलें मार-मार कर उन सबकी जान ले लेतीं।

चंद्रभान ने देखा एक तरफ उस लड़की के पिता रोती-बिलखती अपनी पत्नी को तसल्ली देने की कोशिश कर रहे थे। वे औरतें और टीवी वाले उन्हें आगे करके जोर-जोर से नारे लगा रहे थे और न्यायालय से न्याय की गुहार लगा रहे थे। लक्ष्मी, सुरसती का हाथ कस कर थामे थी। सुरसती इतने हो-हल्ले में आंखें बंद किए बड़बड़ाते हुए आगे-पीछे हिल-डुल रही थी। रामरती ने उसे छुआ तो उसके हाथ-पांव एकदम ठंडे हो रहे थे।

इतनी दूर से और इतनी भीड़ में चंद्रभान और रामरती को कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था पर इतना जरूर देखा कि बुधवा थोड़ा मोटा हो गया था। बाल बढ़े हुए थे और हाथों में हथकड़ी थी। पर चेहरे पर किसी प्रकार के पछतावे के भाव नहीं थे। रामरती उसे देखते ही अपनी आँखों पर धोती रख कर रोने लगी। चंद्रभान को लगा कहीं टीवी वालों की नजर उन पर न पड़ जाए। कहीं देख लिया तो सब चौपट हो जाएगा। अब उनका वहाँ और रुकना ठीक नहीं है। उसने नजर उठा कर देखा उस लड़की की माँ रोते-रोते बार-बार बेहोश हुई जा रही थी। सब लोग उसे तसल्ली दे रहे थे और देश की न्याय व्यवस्था पर विश्वास जता रहे थे कि उसे न्याय जरूर मिलेगा। चंद्रभान और रामरती की कहानी उस हलचल में खोती जा रही थी।

ए-10, बसेरा, ऑफ दिन-क्कारी रोड, देवनार, मुंबई-400088 मो.9819162949

आषाढ़ की एक रात

आशुतोष

वह आषाढ़ की एक रात थी। बादल और अंधेरे की गिरफ्त में इस कदर बेवस और उदास कि जैसे उसे फिर कोई सुबह मयस्सर ही न हो।

मैं नहर का दाहिना पाट पकड़ कर घर की ओर कुछ दूर ही चला था कि अचानक लगा कि मेरे पैरों के पास से कुछ बहुत तेजी से निकल कर झाड़ियों में गया है। नहर के पाटों पर रहने वाले अनेक विषधर नागों की कई कथाएँ मैंने सुन रखी थीं, जो बरसात के दिनों में पानी भर जाने के कारण अक्सर बाहर निकलते रहते थे। वैसे भी आषाढ़ के महीने में आस-पास के गांवों में आए दिन सांप के डसने की घटनाएँ सुनने में आती ही थीं। इन बातों से मुझे यकीन होने लगा था कि मेरे पैरों के पास से कोई सांप ही निकला हो। सांप के ख्याल से मेरे भीतर डर की एक लहर दौड़ गई। डंसने के अलावा सर्प और क्या करते हैं, इसके बारे में मुझे यकीनी तौर पर कुछ पता नहीं था। सर्पदंश के डर से आजाद होने के लिए मैंने अपने पंजे देखने की कोशिश की, पर उस अंधेरे में कीचड़ से लिथड़े पंजे में कुछ भी देख पाना संभव नहीं हो पाया। मैं नहर के पानी में पैर धो कर भी देख सकता था, लेकिन उस अंधेरे में नहर में उतरने की हिम्मत नहीं हुई। फिर तो बहुत चुपके से साँप के जहर से मर जाने का अहसास मुझे घेरने लगा।

अब मुझे अपने गांव के विषहरिया बन्हू बाबा बेतहाशा याद आ रहे थे, जिनको मैंने बहुत बार कान पर हाथ रख, पचरा गाते हुए सांप का जहर उतारते देखा था। गांवों में जब किसी को सांप काटता था तब चार लोग चारों दिशाओं की ओर मुंह कर जोर से पुकारते थे, 'सुनहू विषहरिया हो! डसहू कीरा बहु जोर, सुनहू विषहरिया हो!' मैं बचपन से उस रहस्यमयी पुकार को सुनते आया था। मैं किसी भी तरह दौड़ कर बन्हू बाबा के पास पहुँचना चाहता था। पर मैंने यह सुन रखा था कि दौड़ने से सांप का जहर जल्दी चढ़ जाता है। ऐसे में दौड़ने के विचार से भी मुझे डर लगने लगा। अब मैं भय और पीड़ा के उन कठिनतम क्षणों में बन्हू बाबा को पुकार रहा था। पर गांव वहाँ से इतना दूर था कि मेरी आवाज लौट कर मेरे ही पास आ जा रही थी। धीरे-धीरे मेरे हाथ-पांव ठंडे होने लगे थे। उस भयग्रस्त वीराने में बेबस मर जाने की सोच कर मुझे रोना आ रहा था। मेरे कानों में बिसहरिया बन्हू बाबा के पचरे की आवाज गूंज रही थी।

जबकि सच यह था कि मैं अपनी ही आहत पुकार में घिरता जा रहा था '...डसहू कीरा बहु जोर, सुनहू विषहरिया हो!'

मैंने याद करने की कोशिश की कि थोड़ी देर पहले ही तो मैं बस से नहर चौराहे पर उतरा था। तब आषाढ़ की उस रात के पौने बारह और मेरी उम्र के न जाने कितने बरस-महीने हुए थे। रात और मेरी उम्र के उस हिस्से में पल भर के लिए बस रुकी। अपने पीछे मुझे और बहुत सारा अंधेरा छोड़ चली गई। उस बियाबान अंधेरे में जहाँ मैं खड़ा था वहाँ से घर अभी साढ़े चार मील पैदल था।

गांव कस्बे से छत्तीस मील दूर था। उस कस्बे से जहाँ से मैंने आठ बजे की आखिरी बस पकड़ी थी। यह सोच कर कि कस्बे में बेबस होने से अच्छा है कि आखिरी ही सही बस तो पकड़ ही लें जो आम तौर पर सवा दो घंटे में मेरे गांव जाने वाली नहर पर उतार देती थी। लेकिन उस दिन कुछ और ही बदा था। बरसात के समय में आम तौर पर आखिरी बस के लिए बहुत ही कम सवारियाँ होती हैं। उस दिन भी बस में बहुत कम लोग थे। जो कुछ-कुछ दूरी पर उतरते जा रहे थे। स्टेशन से बस तो समय से निकली थी लेकिन सवारियों का दबाव कम होने के कारण कस्बे से बाहर आकर एक ढाबे पर रुक गई। ड्राइवर, कंडक्टर और खलासी ने वहाँ खाने-पीने में काफी वक्त लगाया। सवारी कम होने के बाद भी आखिरी बस कस्बे से सिर्फ इसलिए निकलती है कि दूसरे दिन सुबह पहली बस बन कर वापस आ सके। जाते समय सवारियों की कमी वापसी के समय पूरी हो जाती है। उस दिन भी वही सब हो रहा था। बस के ड्राइवर, कंडक्टर अपने हिसाब से बस चला रहे थे। रास्ते के प्रत्येक छोटे-बड़े चौराहे पर रुक रहे थे। कभी पान खाने उतरते तो कभी चाय पीने। बस में लोगों से ज्यादा सामान लदा था। आखिरी बस में अक्सर छोटे-छोटे व्यापारियों के सामान लदे होते थे।

उस दिन भी यही सब चल रहा था। जैसे-जैसे बस लेट हो रही थी, वैसे-वैसे मेरा दिल बैठता जा रहा था। मैं लगातार यही सोच रहा था कि यदि बहुत रात हो गई तो मैं नहर चौराहे से घर कैसे जाऊंगा? पर बस के चालक-परिचालक को इसकी चिंता कहाँ थी। वे तो पूरी मौज में चल रहे थे। धीरे-धीरे दूसरे लोग उतरते गए, आखिर में मैं अकेला बचा।

कंडक्टर ने पूछा, 'कहाँ उतरना है?' मैंने बताया, 'नहर चौराहे पर।' उसने बेपरवाही से कहा, 'जहाँ भी उतरना हो बता देना', और खलासी को लेकर ड्राइवर की केबिन में चला गया। खलासी ने एक कैसेट लिया, हथेली पर उलट-पुलट कर ठोका और ड्राइवर के सिर के ऊपर कसे हुए डेक में लगा दिया। अचानक बस के सारे स्पीकर खुशी में झूम उठे। जैसे वे भी दिन भर गाते रहने की थकान के बाद अब घर लौटने की खुशी मना रहे हों। आरजू बानो की चहकती हुई आवाज में गाना बज रहा था 'दिन भर चाहे जहाँ रहियो हमार पिया, सांझ के घरा चले अइयो हो हमार पिया।'

मैं केबिन के बाहर दरवाजे के पास वाली सीट पर बैठा यह सब देख रहा था। उन लोगों की खुशी देख कर मैंने अपने जीवन के सुखों को याद करने की कोशिश की, पर याद आए दु:ख। मैं सोच रहा था कि इस समय मेरी कक्षा के दूसरे बच्चे, जो नगर के धन्ना सेठों के लड़के थे, कितनी सुख भरी नींद में होंगे। क्या वे भी इस समय मेरे बारे में सोच रहे होंगे?

मुझे यह भी लग रहा था कि आज कोचिंग की आखिरी क्लास छोड़ देनी चाहिए थी। भौतिकी पढ़ाने वाले चौबे जी आज पूरे दो घंटे देरी से आए थे। कोचिंग की भारी-भरकम फीस का ख्याल आते ही कक्षा छोड़ने का मेरा इरादा बदल गया था। जिसके कारण मुझे उस आखिरी बस की शरण लेनी पड़ी। मौसम खराब था। दिन में भी कई बार बारिश हो चुकी थी। मैं रोज सुबह आठ बजे बस से कस्बे के एकमात्र इंटर कॉलेज में पढ़ने

आशुतोष
चर्चित युवा कथाकार। अद्यतन कहानी संग्रह 'उम्र पैंतालीस बतलाई गयी थी'।

जाता था। कोचिंग क्लास कॉलेज में ही तीन बजे से लगती थी। फिर तीन घंटे की कोचिंग के बाद मैं लगभग साढ़े छह की बस से वापस आता था। आठ-साढ़े आठ तक नहर चौराहे पर उतरता था और फिर पैदल घर।

लेकिन उस दिन मैं क्या करता? गणित विषय से बारहवीं की कक्षा पास करने के लिए उस कोचिंग में पढ़ना अनिवार्य था। अध्यापक भी ऐसे कि दिन की सरकारी कक्षा में अपने ससुराल और साढ़ुआइन की बात करते थे और कोचिंग में फिजिक्स, केमिस्ट्री और मैथ्स पढ़ाते थे। कोचिंग से ध्यान आया कि पिता ने इसी माह साढ़े चार सौ रुपए फीस के दिए थे। जबकि वे रुपए उन्होंने महाजन से धान में यूरिया डालने के लिए उधार मांगे थे। अबकी धान की फसल कुछ उजियार लग रही थी। पिता दिन में कई बार, फूटने को तैयार धान की फसल को देखने जाते थे। यदि उसी समय एक बार यूरिया पड़ जाए तो अबके बरसों बाद धान से घर भर जाता। इसी गरज से उन्होंने महाजन से रुपए उधार लिए थे। पर पिता भी क्या करते? मेरी पढ़ाई भी एक खेती ही थी। जिसमें यूरिया डालना जरूरी था। पड़ा भी। यूरिया के अभाव में धान की पीली फसल की याद के साथ ही मेरे मुंह का स्वाद कसैला हो गया। इधर कई दिनों से मैं खेतों की ओर जाने से बचता था। मैं और मेरी बारहवीं वाली फिजिक्स, केमिस्ट्री उस पिअराते धान के गुनहगार थे।

बस चली जा रही थी। मैं बाहर तेजी से गुजरते अंधेरे को देख रहा था। बीच-बीच में दूर किसी झोंपड़ी में जलता हुआ कुछ दिख जा रहा था। लोग सो गए थे, पर दीयों को जलने से तब भी फुरसत नहीं थी। न जाने क्यों अंधेरे में खामोश जलते हुए दीयों को देख कर मुझे अपने बाबू जी की याद आती थी।

अक्सर गाते रहने वाले बाबू जी बहुत चुप रहने लगे थे। आधी जमीन अम्मा के गठिया के असफल इलाज में रेहन पर थी। बची हुई जमीन पर गन्ने की खेती करते थे। चीनी मिल और सरकार गलबहियाँ डाले पिता जैसे लाखों किसानों के गन्ने के पैसे को पचा कर डकार ले चुकी थीं। अब उनसे कुछ पाने की उम्मीद किसी को नहीं थी। गाय का दूध बेच कर अम्मा ने कुछ पैसे जमा किये थे, जिसे गांव के ही धरीक्षण चौबे के बेरोजगार पीएच.डी. बेटे ओमप्रकाश ने, तीन साल में दूना करने का लोभ देकर एक निजी बैंक में जमा कराया था। तीन साल पूरे होने के पहले ही बैंक मालिक सबका पैसा लेकर भाग गया। लोगों ने लड़के को पकड़ा। सबने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार लड़के से वसूली की। कोई उसके दरवाजे से भैंस ले गया, कोई मोटरसाइकिल। गए तो बाबू जी भी थे, अपने मोतियाबिंद से लड़ते हुए, किंतु जब उनकी बारी आई तो वहाँ सिर्फ मातम और उदासी बची हुई थी। धरीक्षण चौबे बाबू जी को काफी देर तक पनीली आंखों से देखते रहे। उनके होंठों पर एक बेचैन चुप्पी थी, जिसके कारण उनके होंठ थरथरा रहे थे पर कुछ बोल नहीं पाए।

बाबू जी भी उनसे कुछ नहीं कह सके, थोड़ी देर तक उनके कंधे पर हाथ रखे रहे और फिर अपनी लाठी टेकते हुए धीरे-धीरे वापस चल दिए। पर वे सीधे घर नहीं आए। गांव के बाहर पोखरे पर चले गए और शाम तक वहीं चुपचाप बैठे रहे। उस घटना के बाद अम्मा ने पैसा जुटाना छोड़ दिया। चीनी मिल मालिक ने एक और बंद पड़ी सरकारी चीनी मिल खरीद ली, भागे हुए बैंक का मालिक विधायक बन गया, ओमप्रकाश चौबे ने कुछ दिन बाद ट्रेन से कट कर जान दे दी और पिता बहुत चुप रहने लगे थे। यह मैं बहुत बाद में समझ पाया था कि उस दिन बाबू जी अम्मा के पैसों के बदले धरीक्षण चौबे के घर से वसूली में चुप्पी लाए थे।

मैं यही सब सोच रहा था कि बस एक झटके के साथ रुकी। खलासी जोर से चिल्लाया, 'नहर चौराहा आ गया, उतर जइयो।' खलासी की आवाज से मुझे ख्याल आया कि 'दिन भर चाहे जहाँ रहियो' की तर्ज पर उसने 'उतर जइयो' कहा था। बाहर देखा, बस की हेडलाइट की अधूरी रोशनी में नहर की पुलिया ऊंघती हुई-सी चमक रही थी। मैं खलासी के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

बस जा चुकी थी। मैं अंधेरे में नहर के पाट पर अपनी किताबें लिए खड़ा था। नहर आषाढ़ के पानी से लबालब भरी हुई थी। नहर का दाहिना वाला पाट गांव से होकर जाता था। नहर का बाईं तरफ एक बुजुर्ग जंगल था जो बरसात के दिनों में पानी पाकर अपनी जवानी के दिनों-सा मचला जा रहा था। यह वही नहर थी जिस पर शाम को टहलते हुए गांव के बेचई चाचा जोर-जोर से गाते थे कि 'हमको ले चल यारा ठंडी-ठंडी नहर के किनारे।' तब मुझे नहर का पानी, चाचा और उनका गाना सभी बहुत अच्छे लगते थे।

पर आधी गीली और आधी चिपचिपी आषाढ़ की उस काली रात में नहर और उसके पानी को देख कर मैं एकदम से डर गया। कुछ देर पहले ही बारिश होकर गई थी। फिर भी बादल छाये हुए थे। घर जाने के लिए मुझे नहर की दाहिनी पटरी पकड़नी थी। बरसात के कारण उस पटरी के दोनों ओर उग आईं घनघोर झाड़ियों ने अच्छी-खासी सड़क को पतली-सी पगडंडी में बदल दिया था। कच्ची मिट्टी होने के कारण जगह-जगह पानी जमा था और जहाँ पानी नहीं था वहाँ भयानक फिसलन थी। उसकी बाईं ओर लबालब भरी हुई नहर और दाहिनी ओर आपस में गुत्थमगुत्था करती हुई बेशरम और नरकट की झाड़ियाँ थीं। मैं उस रास्ते पर या तो आगे जा सकता था, जिधर घर था या फिर पीछे जिधर घर नहीं था। मैं बहुत देर तक ठीक उस पगडंडी के सामने खड़ा रहा फिर हिम्मत जुटा कर सधे हुए कदमों से आगे बढ़ा था।

अब मुझे लग रहा था कि सांप का जहर धीरे-धीरे चढ़ रहा है। फिर भी चलते रहने के सिवा और कोई चारा नहीं था। इसी उधेड़बुन में मैं उस पगडंडी पर लगभग एक फर्लांग बढ़ आया था। जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था वैसे-वैसे मेरा डर भी बढ़ रहा था। मेढक और झिंगुर की आवाज सन्नाटे से होड़ लगा रही थी। थोड़ी देर में मुझे यह लगने लगा कि ये सब के सब हमला करने वाले हैं। फिसलन के कारण नाखून गड़ा कर चलने से नाखून सुन्न होने लगे थे। पांव कांपने लगे। शरीर में जैसे खून ही न हो। पर घर तो पहुँचना ही था।

उस दिन मुझे घर बहुत प्रिय लगने लगा था। वह घर जहाँ घोर अभाव और उदासी पसरी रहती। जहाँ से मैं रोज कहीं भाग जाने के बारे में सोचता था। पर कभी पिता की आंखों के मोतियाबिंद ने तो कभी माँ की गठिया ने मुझे भागने नहीं दिया। वैसे मुझे यह भी लगता था कि यदि मैं कभी घर छोड़ कर भागा तो मेरे पीछे लाचार माँ-बाप चाह कर भी कभी मुझे खोजने नहीं आ पाएंगे। वैसे भी भागना तभी भागना होता है, जब पीछे कोई खोजने वाला हो, यदि कोई खोजने वाला न हो तो वह भागना नहीं, जाना होता है।

बूंदा-बादी शुरू हो गई थी। मैंने किताबों को शर्ट के भीतर रख लिया। उन किताबों को मुझसे दो साल पहले गांव के ही मन्नू भइया पढ़ चुके थे।

उन किताबों को उनके घर से अम्मा मांग कर लाईं थीं। बदले में मन्नू भइया की माई ने अम्मा से पाव भर गाय का घी लिया और मेरे पास होने के बाद जस का तस किताब लौटाने का किरिया धराया था। खैर, घर पहुँचने की जल्दी में मेरे दोनों पांव एक साथ घर की ओर फिसले और मैं पीछे की ओर पीठ के बल धड़ाम से गिरा। नहर के पाट पर बैठे कुछ मेढकों ने पानी में छलांग लगाई और झिंगुरों ने थोड़ी देर के लिए विराम लिया; फिर पूरी ताकत से बोलना शुरू कर दिया। जैसे कि उन्हें गिरे हुए मनुष्यों के बारे में कुछ चिंता करने की जरूरत ही न हो। पर मैं बदहवास था। दर्द से ज्यादा भय व्याप गया। जैसे कमर टूट गई हो। कपड़े कीचड़ में सन गए थे। थोड़ी देर वैसे ही बैठा रहा। बारिश तेज हो गई थी। मैंने किसी तरह खुद को समेट कर खड़ा किया और पहले से थोड़ा तेज चलने लगा। अब मेरा सामना अषाढ़ की उस भयानक रात से था।

मेरे परिवार में अम्मा-बाबू जी के अलावा एक गाय लक्ष्मी, बछड़ा विनायक और एक कुत्ता भी था, जिसे हम लोग भूरा कहते थे। घर की गरीबी सब पर सवार थी। बाबू जी दुर्दिन से लड़ते हुए अब हारने लगे थे। अम्मा को सबसे अधिक उम्मीद मुझसे और लक्ष्मी से थी। मैं तो अभी बारहवीं में पढ़ रहा था और लक्ष्मी; उसके पास तो विनायक भर का दूध हो जाए, यही बहुत था। फिर भी अम्मा रोज लक्ष्मी के लिए एक टुकड़ा रोटी पहले ही निकालती थीं और उम्मीद करती थीं कि गौमाता की कृपा से एक दिन सब अच्छा हो जाएगा। भूरा के हिस्से में थाली का बचा-खुचा ही आता था। वैसे खाना भरपूर हो तभी थाली में बचता है। अक्सर बाबू जी अपनी थाली से एक-दो कौर बचा कर भूरा को दे देते थे। अपना भूरा उसी में मगन। बावजूद इसके घर का कोई बस पकड़ने के लिए कभी चौराहे तक जाता तो भूरा भी साथ आता। भूरा का यह प्रेम ही हम लोगों के जीवन का एकमात्र सुख था।

अपने घर-परिवार को याद करते हुए कुछ देर तक मैं तेज-तेज चलता रहा। थोड़ी देर में ही पेट में ऐंठन होने लगी। ऐंठन से ध्यान आया कि मुझे बहुत भूख लगी है। उस दिन मैं सिर्फ एक बासी रोटी और अचार खाकर स्कूल आया था। अम्मा-बाबू जी एकादशी के व्रत पर थे। कुछ इंतजाम हो जाने पर उस दिन वे सिर्फ फलाहार करते। इसलिए खाना नहीं बना और स्कूल के लिए निकलते समय अम्मा ने मुझे जोड़-जाड़ कर छब्बीस रुपए दिए थे, जिससे कि मैं स्कूल में ही कुछ खरीद कर खा लूंगा। प्राइवेट बस यूनियन वाले रोज-रोज की बकझक से बचने के लिए स्टुडेंट कन्सेशन में आधा किराया लेते थे। मैंने माँ के दिए हुए रुपए में से दस रुपए जाने-आने का किराया दिया था। आठ रुपए किताब वाले का उधार चुकाया, बाकी के आठ रुपए कुछ खाने के लिए बचा लिए थे। मैं समोसे के ठेले के सामने से दो-तीन बार गुजरा भी था, पर अम्मा-बाबू जी के चेहरे को याद कर कुछ खा नहीं पाया। मैं जानता था कि वे लोग एकादशी व्रत से अपेक्षित फल की उम्मीद में गुड़ के शर्बत पर पूरा दिन बिता दिए होंगे। दूसरे यह कि मैं पैसे बचा कर अम्मा को चौंका देना चाहता था। इसीलिए बचे हुए पांच, दो और एक के सिक्के को मैंने समोसे-चटनी की उस भरपूर खुशबू के बीच पूरी ताकत से मुट्ठी में दबा लिया।

सिक्कों का ख्याल आते ही मुझे उस अपार निरीहता में भी ताकत का अहसास हुआ। सांप के काटे का डर और भूख दोनों जाते रहे। मैंने ठहर कर अपने पैंट की जेब टटोली। सिक्के नहीं थे। फिर शर्ट, फिर एक बार पैंट के सारे जेब देखे। पर सिक्के कहीं नहीं थे। सिक्कों के होने के अहसास से आई ताकत उनके जाते ही चली गई। जेब तो मुकर चुके थे। मुझे लगा कि जहाँ मैं फिसल कर गिरा था; वहीं वे सिक्के भी गिर गए होंगे। मैंने भूख मार कर उन सिक्कों को बचाया था। मुझे लगा मैं यह नहीं होने दूंगा कि सांप भी काट ले, भूखा भी रहूँ और मेरे रुपए भी खो जाएँ। मुझे अब

मेरी बेचारगी पर क्रोध आने लगा था। मैं सिक्कों के उस छल को सहन नहीं कर पा रहा था। उन्हें फिर से पाने की भावना मन में भर गई, किंतु उसके लिए मुझे वापस उस गिरने वाली जगह पर जाना था। मेरे हिसाब से मैं उस जगह से एक तिहाई दूरी तय कर चुका था। बारिश भी रुकी हुई थी। थोड़ी-थोड़ी देर में बिजली चमक जा रही थी। मैं बिना कुछ सोचे-समझे पीछे मुड़ गया। वापस चलते हुए मुझे खुद के जुझारू होने पर थोड़ा गर्व भी हुआ। लेकिन जैसे-जैसे पीछे की ओर चलता जा रहा था वैसे-वैसे एक बार फिर वही पहले वाला डर मेरे भीतर बढ़ने लगा। फिर भी मैं बदहवास-सा चलता रहा।

पैरों में पड़े हवाई चप्पल बार-बार कीचड़ में धँस जा रहे थे। फीता टूटने के डर से उन्हें कीचड़ से जोर देकर नहीं निकाल सकता था। इसलिए रुक कर चप्पलों को हाथ से निकालता था, तब आगे बढ़ता था। चप्पल का एक फीता जो लाल रंग का था, अभी हाल में ही बदला गया था। चप्पल के साथ वाले फीते नीले रंग के थे, कुछ दिन पहले एक फीता टूट गया था। बाबू जी को मोतियाबिंद के कारण कम दिखता है, इसीलिए दुकानदार ने उन्हें लाल रंग के फीते को नीला बता कर दे दिया था। स्कूल में दो रंग के फीतों को लेकर सभी मेरा मजाक उड़ाते थे। किसी को जवाब क्या देता, खुद मुझे ही वे अच्छे नहीं लगते थे। बावजूद इसके मैं नहीं चाहता था कि मेरे चप्पल के फीते इतनी जल्दी टूटें। उस फिसलन और कीचड़ में चप्पल पहन कर चलने में खासी परेशानी भी हो रही थी, फिर भी उन्हें पैरों में डाले घसीट रहा था। चप्पल को हाथ में ले लेता पर कहीं कुछ काट न ले, यह डर भी सता रहा था।

अभी और कितनी दूर चलना है, यह अंदाजा लगा ही रहा था कि मुझे लगा कि कोई मेरी बगल से झप से गुजरा है। मैं सन्न रह गया। मुझे चूड़ी बजने की आवाज भी सुनाई देने लगी। मेरा पैर दाहिनी ओर फिसला और मैं पगडंडी के किनारे लगे बेशरम की झाड़ से टकरा गया। उस अंधेरे में भी मैंने महसूस किया कि मेरे सारे पस्त पड़े हुए रोएँ खड़े हो गए हैं। क्या था जो मेरी बगल से गुजरा था। अचानक लगा कि ठीक मेरे सामने कोई औरत जोर-जोर से हांफ रही है। वह आवाज इतनी स्पष्ट थी कि उसके बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता था। पर इतनी रात को इस समय यहाँ कोई औरत क्या कर रही है? हांफने की उस आवाज से मैं विचलित हो गया। न आगे बढ़ पा रहा था और न पीछे। मैं पत्थर की तरह खड़ा था। मैं कुछ भी सोचने-समझने की स्थिति में नहीं था। पर यह सवाल तो नगाड़े की तरह बज रहा था कि अंधेरे में मेरे सामने खड़ी हांफ रही वह औरत कौन है? मैं कुछ-कुछ अंदाजा तो लगा रहा था पर चाह यही रहा था मेरा अंदाजा गलत हो जाए। अंदाजा यह था कि वह औरत दद्दन तिवारी की पतोहू है। दद्दन तिवारी हमारे बगल के गांव के सम्मानित व्यक्ति थे। पत्नी का देहान्त काफी पहले हो गया था। तिवारी जी ने अपनी दो बेटियों का विवाह बहुत धूम-धाम से किया था। किंतु एकमात्र मंदबुद्धि पुत्र की शादी नहीं हो पा रही थी। तिवारी जी को अपना वंश डूबता हुआ नजर आने लगा था। इसलिए उन्होंने वंश के रक्षार्थ हाथ-पांव मारना शुरू कर दिया। फलस्वरूप उन्हें एक गरीब कन्या मिल गई जिससे उन्होंने अपने मंदबुद्धि बेटे का विवाह करा दिया पर गांव के लोगों ने कभी भी उनके मंदबुद्धि बेटे को घर के भीतर और तिवारी जी को घर के बाहर सोते नहीं देखा। धीरे-धीरे उस विवाह की सच्चाई पूरा गांव जान गया। लोग तिवारी जी के बेटे से मजाक करते 'का महराज, तोहार नवकी अम्मा कैसी हैं?' वह मुस्कुरा कर कहता, 'ठीक हैं।'

सब कुछ वैसे ही चल रहा था कि एक रात तिवारी जी की वही पतोहू आग की लपटों में लिपटी हुई पानी-पानी चिल्लाते हुए घर से बाहर निकली। लोग कुछ समझ पाते कि वह नहर में जाकर कूद गई। बहुत हाय-हाय हुआ। पर अंत में

यह कहा गया कि पतोहू ने आत्मदाह कर लिया। गांव में जितने लोग उतनी बातें। अधिकांश लोग यही मानते थे कि तिवारी जी की पतोहू ने आत्मदाह नहीं किया था बल्कि तिवारी जी ने उसे जला कर मारा था। कारण कि युवा पतोहू के तेज के आगे धीरे-धीरे तिवारी जी परास्त होने लगे थे। उन्हें कई बार पौरुष बढ़ाने का दावा करने वाले खानदानी हकीमों के डेरे पर भी देखा गया था। उन दवाओं से पौरुष बढ़ा कि नहीं पर उनके भीतर का संदेह जरूर बढ़ता गया। अब वे पतोहू पर बहुत अधिक नजर रखने लगे थे। गांव की किसी औरत से उसे मिलने नहीं देते थे। एक दिन दोपहरी के समय वे कहीं से आए। घर के भीतर से हँसने की आवाज आ रही थी। उन्हें कुछ अनुचित लगा। दबे पांव घर के भीतर गए। आंगन में उनकी पतोहू उनके ही ट्रैक्टर के ड्राइवर से बात करते हुए हँस-हँस कर लोट-पोट हुई जा रही थी। आंचल माथे से सरक कर गोद में पड़ा था। अचानक तिवारी को लगा कि ड्राइवर कौआ है जो उनकी पतोहू के सीने पर रखे स्वर्ण कलश पर चोंच मारने वाला है। उनको यह भी लगा कि ड्राइवर और पतोहू उन्हीं पर हँस रहे हैं। फिर क्या था उसी रात उनकी पतोहू आग के गोले में लिपटी हुई बाहर भागी थी।

लोग बताते हैं कि तिवारी जी की वही पतोहू अक्सर रात में नहर पर घूमती रहती है और आते-जाते लोगों से कहती है कि 'मुझे प्यास लगी है।' बचपन से अनेक बार सुनी हुई वह कथा उस रात मेरे सामने हकीकत बन कर खड़ी थी। अचानक मुझे लगा कि वह औरत अब हांफना बंद कर मुझसे कह रही है- 'मुझे प्यास लगी है।'

पानी मांगने की आवाज लगातार बढ़ती जा रही थी। उसकी हर आवाज के साथ ही मेरी देह का खून भी जमता जा रहा था। एकाएक वह आवाज पीछे की ओर से आने लगी। पता नहीं वह कौन सा आवेग था कि मैंने चप्पल हाथ में ली और उस आवाज से पीछा छुड़ा कर दम लगा आगे की तरफ दौड़ पड़ा। बदहवासी में कितनी बार फिसल कर गिरा-उठा कुछ पता नहीं। बस दौड़ रहा था। ऐसा लग रहा था कि तिवारी जी की पतोहू मेरे पीछे-पीछे पानी मांगते हुए दौड़ रही है। मैंने सुन रखा था कि प्रेतों के भी अपने इलाके होते हैं। इसलिए मैं दम लगा कर उस आवाज के इलाके से बाहर निकलने के लिए भाग रहा था। काफी दूर निकल आने के बाद मुझे ध्यान आया कि मैं तो अपने खोये हुए सिक्के खोजने आया था। सिक्के खो जाने का दु:ख दद्दन तिवारी की पतोहू के डर पर भारी पड़ने लगा। मैं रुका, पूरी ताकत लगा कर पीछे देखा। पीछे कोई नहीं था। न ही दद्दन तिवारी की पतोहू और न ही उसकी वह आवाज। थोड़ा सुकून मिला पर जैसे ही ध्यान आया कि वापस लौटते हुए फिर उसके इलाके से ही गुजरना पड़ेगा, मेरा डर और बढ़ गया।

मेरे दाहिने पांव में तेज दर्द उठा। भागते समय कोई सीसा चुभ गया था। हाथ से टटोल कर देखा। सीसे का एक कोना पकड़ में आया। पकड़ कर खींचने की कोशिश में वह और भीतर चला गया। साथ ही दर्द की एक लहर भी भीतर तक रेंग गई। मैंने सीसे को निकालने का प्रयास छोड़ दिया। हाथ में ली हुई चप्पल को नीचे रखा। नीचे कुछ दिख नहीं रहा था। बाएँ पैर से टटोला, थोड़ी ही देर में अंधेरे की सबसे निचली रैक में चप्पलें मिल गईं। कहीं से मेरे मन में यह ख्याल आया कि कीचड़ के दरमियाँ ही सही चप्पलों से मिल कर पैरों को थोड़ी खुशी मिली होगी और दाहिने पैर के घाव को देख कर चप्पलों को थोड़ा दुख अवश्य हुआ होगा। किंतु जल्दी ही मैं इस चप्पल-चिंतन से मुक्त हो यह अंदाजा लगाने लगा कि जाते समय मैं कहाँ फिसल कर गिरा था, जिससे कि वहाँ पर अपने सिक्कों को खोज सकूँ। पर दद्दन तिवारी की पतोहू से डर कर भागते समय इतनी बार गिर चुका था कि यह समझना मुश्किल हो गया कि जाते समय कहाँ और भागते समय कहाँ गिरा था। तो क्या मुझे मेरे सिक्के नहीं मिल पाएंगे? इस ख्याल से मेरे भीतर दु:ख की एक नई जिल्द

तैयार हो गई। मैं भय और वंचना से भर गया। फिर भी मैंने जिद्द में आकर तय किया कि अपने सिक्के तो खोजूंगा ही।

मैंने अपनी खोज शुरू की। मैं कभी दस-बीस कदम आगे तो कभी पीछे आ-जाकर सिक्के खोजने लगा। संभावित जगहों पर अंधेरे में बैठ कर कीचड़ को हाथ से मसल कर देखता रहा। बीच-बीच में बिजली चमकती तो ऐसा लगता कि कुछ जगहें पीछे छूट गईं हैं, फिर मैं पीछे जाकर उन जगहों पर देखता। यह सब करते हुए मैं पूरी तरह थक गया था। दर्सों दिशाओं से उतर कर अंधेरा और भय मुझे घेरे हुए बैठे थे। सिक्के खोजने में मैं और मेरे कपड़े कीचड़ में बुरी तरह से लिथड़ गए थे। इतने कि अब मुझे चलने में भी भारी मुश्किल आ रही थी। शर्ट के भीतर रखीं किताबें गीली होकर पेट की त्वचा से चिपक जा रही थीं। किंतु उनके बारे में सोचने का कोई मौका ही नहीं था। चलते समय पैर में धंसा हुआ सीसा थोड़ा और भीतर सरक जा रहा था। जितना सीसा भीतर सरकता उतनी ही चीख मेरे गले से बाहर निकलती। पांव का दर्द, सिक्के न मिल पाने का दुख, पेट की भूख, सांपों और प्रेतों का भय, अम्मा-बाबू जी की निरीहता, घर की गरीबी के बीच इतनी रात में इस हालत में कहीं न पहुँच पाने की बेबसी से मैं घिर चुका था। अंधेरे, भय और थकान के कारण मुझे दिशाभ्रम हो गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि मुझे किस ओर जाना है। आगे या पीछे। घबराहट में मुझे बिल्कुल पता नहीं चल पा रहा था कि जहाँ खड़ा हूँ, वहाँ से मेरा गांव किस तरफ है। दो-चार कदम किसी ओर चलता और फिर हताश हो जाता। सब कुछ अंधेरे में गुम हो चुका था। बहुत दूर कहीं कोई आल्हा गायक ढोल की थाप पर अपनी भूख को बजा रहा था...

'बाहर को भीतर जावे ना, ना भीतर को बाहर जाय।

ऐसौ समय परौ महुबै पै, बिपदा कछू कही न जाय।'

आषाढ़ की वह रात और लंबी होती जा रही थी। अब उस रात में कुछ भी काव्यात्मक नहीं बचा था। रुक-रुक कर हो रही बारिश में मैं तब तक कई बार भीग चुका था। जब तेज बारिश होती तो अंधेरा घुल-घुल कर नीचे आ जाता। ऐसा लग रहा था कि जैसे मैं कई वर्षों से इसी नहर पर फंसा हुआ हूँ। मुझे अब सुबह घर से स्कूल जाने से लेकर शाम के समय कस्बे में आखिरी बस पकड़ने तक की घटना बरसों पुरानी लग रही थी। आषाढ़ की उस रात में मैं खो गया था।

मैं नहर के पाट का सहारा लेकर बैठ गया। यही वह लम्हा था जब मुझे अपनी मृत्यु के बारे में ख्याल आया। मुझे विश्वास होने लगा कि यही मेरा अंतिम समय है। मैंने सोचने की कोशिश की यदि मैं यहीं इसी हालत में मर गया तो किस पर क्या फर्क पड़ेगा। मैंने अंदाजा लगाया कि मेरे मर जाने के बाद पिता और अधिक चुप रहने लगेंगे। गांव वाले दद्दन तिवारी की पतोहू के साथ मुझे भी रात में इस नहर पर घूमने वालों में गिनने लगेंगे। और अम्मा? अम्मा क्या करेंगी, इस बात का मैं ठीक-ठीक अंदाजा नहीं लगा पा रहा था, पर उस अंधेरे में भी मुझे इतना विश्वास था कि मेरे नहीं रहने के बाद अम्मा जब तक जिएंगी तब तक घुट-घुट कर बहुत मद्धिम आवाज में रोती रहेंगी। मैंने शर्ट के भीतर से किताबों को निकाला। किताबें गीली रोटी की तरह बेजान हो गईं थीं। अंधेरे में उन्हें सहलाता रहा, उनके लिजलिजेपन से मन ग्लानि से भर गया। वह रात तो मुझसे सब कुछ छीने जा रही थी। किताबें खराब हो गई थीं। किताबें मन्नन भइया की थीं। किताबें जिन्हें वापस लौटाने के लिए अम्मा ने किरिया खाया था, किताबें जिन्हें पढ़ कर मुझे अम्मा-बाबू जी के अनुसार बड़ा आदमी बनना था। किताबें जिनसे बारहवीं पास करने के बाद मन्नन भइया लुधियाना में गैस सिलेण्डर ढोते हैं। मन्नन भइया का ख्याल आते ही मेरे मन से किताबों का मोह जाता रहा। लुगदी हो गईं किताबों को मैंने धीरे से बाहर के अंधेरे में कहीं सरका दिया।

मेरा सिर धीरे-धीरे घूमने लगा था। मुझे नींद आ रही है, मैं बेहोश हो रहा हूँ या मर रहा हूँ; यह समझ नहीं पा रहा था। अब मैं केवल यही चाह रहा था कि किसी तरह एक बार अम्मा से मिल लूँ। पर संभव नहीं था। मैं असहाय हो गया था, बहुत ही नामालूम ढंग से अपनी पीठ को नहर के पाट से टिकने दिया। मैं सुन पा रहा था कहीं बहुत दूर किसी स्त्री के रोने की आवाज। बहुत देर तक उस आवाज को पहचानने की कोशिश करता रहा। स्त्री के रोने की आवाज और अंधेरा दोनों मिल कर उस रात और उस समय को और अधिक रहस्यमय बना रहे थे। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं यहाँ से कभी निकल नहीं पाऊंगा। सिक्के खो गए थे, किताबें खराब हो गईं थीं, ऐसे में मेरे पास बचाने के लिए सिर्फ दो रंग के फीतों वाली चप्पलें थीं। मैंने चप्पलों को पैरों से निकाल कर जैसे-तैसे किताबों वाली जगह पर रख लिया। बार-बार गिरने से मेरा एक घुटना और दोनों कुहनियां छिल गईं थीं। दाहिने पैर में धंसा सीसा लगातार टीस रहा था। कीचड़ की वजह से घुटने और कुहनियों के घाव जल रहे थे। सीधा खड़ा होकर चलना मुश्किल हो गया। बैठ जाने पर देह का दर्द जितना कम होता उससे कई गुना ज्यादा भय बढ़ जा रहा था। इसलिए जानवरों की तरह चौपाया होकर चलने लगा। मेरा ऐसा चलना, ऐसे चलने वालों की दुनिया में एक भद्दा और निरीह हस्तक्षेप था। शायद इसीलिए विचित्र प्रकार से चलते हुए एक चैपाए को देख कर अचानक नरकट की ओर से हुआँ-हुआँ करते सियारों का एक झुंड सामने आ गया। ऐसा लगा कि जैसे सियार मुझे काट लेंगे। मैं चिल्ला रहा था, मैं बड़बड़ा रहा था। पर सच यह था कि अब सियार चुप थे और मैं हुआँ-हुआँ कर रहा था। अजीब तरह की आवाज सुन सियार थोड़े पीछे हटे कि मैं एक झटके में खड़ा हुआ और जान ले कर भागा। पर किस ओर, पता नहीं। कुछ देर वैसे ही भागते रहने के बाद मैं परास्त होने लगा। भागना तो दूर अब खड़े रहने भर की सामर्थ्य मुझमें नही रह गई थी। लड़खड़ा कर कीचड़ में गिर गया।

फिर धीरे-धीरे बारिश होने लगी थी। अब मैं सिर्फ अम्मा के बारे में सोच रहा था। मेरी अंतिम इच्छा यही थी कि एक बार घर पहुँच जाता तो अम्मा से सब हाल कह सुनाता, फिर मर भी जाता तो कम से कम वे मेरा इंतजार तो नहीं करतीं। अचानक मुझे मेरे आस-पास किसी जानवर के होने का अहसास हुआ। घबराहट के कारण मेरे गले से आवाज नहीं निकल रही थी। मैं हनुमान चालीसा पढ़ने की कोशिश करने लगा। उस समय डर और घबराहट के कारण हनुमान चालीसा की भी एक-आध पंक्तियाँ ही याद आईं। गांव के बरहम बाबा को याद किया तो मुझे मिट्टी के एक अनगढ़ पिंडी के अलावा कुछ भी ध्यान नहीं आया। लक्ष्मी को याद किया तो मेरी निरीहता और बढ़ गई।

मैंने महसूस किया कि मेरे आखिरी समय में सबने मेरा साथ छोड़ दिया है। मैं खूब जोर से चिल्लाना चाहता था, इतनी जोर से कि मेरी आवाज मेरी अम्मा तक पहुँच जाए। मुझे पूरा विश्वास था कि इतनी रात को भी वे सिरहाने ढिबरी और पैताने बोरसी में आग जिलाए गांव के बाहर की ओर कान दिए जाग रही होंगी। पर मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा था। मैं रोना चाहता था किंतु आंसुओं को भय ने और रुलाई को उस अंधेरे ने बेदखल कर दिया था। मैं संज्ञा शून्य-सा खड़ा था। मैं उस जानवर को अपनी ओर बढ़ते हुए महसूस कर रहा था। बाहर कुछ भी नहीं दिख रहा था। घबरा कर मैंने आंखें बंद कर लीं जिससे अंदर और बाहर के अंधेरे आपस में मिलकर काले रंग के अथाह समुंदर में बदल गये। धड़कनों को धीरे-धीरे कम होते महसूस कर रहा था। मैं अपने बाहर-भीतर के अंधेरे में डूब रहा था। मेरी देह जवाब दे चुकी थी। मैं भरभरा कर वहीं कीचड़ में लेट गया। सब कुछ खत्म हो जाने के उस कठोर समय में मुझे ध्यान आया कि अखिरी समय में किसी की और कुछ

भी याद नहीं आती सिवाय थोड़ा और जी लेने के। थोड़ी देर पहले के सारे दु:ख, हताशा, पराजय ही नहीं अब तक के जीवन के पाप-पुण्य कुछ भी नहीं बचे थे।

मैं एक विचित्र प्रकार की बेहोशी में जा रहा था कि मेरे चेहरे पर गर्म सांसों की एक फुहार आ पड़ी, जैसे मैं कहीं जाते-जाते लौट आया। पर उसी के साथ लौट आया मेरा डर भी। वह जानवर अब बिल्कुल मेरे चेहरे के पास था। मुझे लगा कि अभी कुछ और बाकी है। मैं घिकुरा हुआ पड़ा था। चेतना तो वापस लौट आई थी पर शरीर साथ नहीं दे रहा था। मैं पानी, कीचड़ और बेबसी में चुपचाप पड़ा था। उसके नथुने से निकलने वाली गुनगुनी भाप से मेरा पूरा चेहरा भीग रहा था। वह कहीं से मुझे काट खाना शुरू करे क्या फर्क पड़ेगा। मेरी ओर से कुछ और हरकत होते न देख कर वह एक बार फिर आगे बढ़ा। अब वह अपनी खुरदरी जीभ से मेरा गर्दन चाटने लगा। पहले डरते हुए फिर तेज-तेज। मुझे उसके चाटने से घबराहट होने लगी। मैं एक झटके में उठ कर बैठ गया। मेरे उठते ही वह चप-चप की आवाज के साथ लगभग मेरे ऊपर ही चढ़ आया। उससे बचने की कोशिश में मैंने उसकी गरदन पकड़ ली। उसने जोर लगाया। मृत्यु को ठेलते हुए एक आवेग में मेरे मुंह से 'हट-हट' की आवाज निकली। प्रतिक्रिया में कूं-कूं करते हुए वह मेरे पैरों में लोट कर जहाँ सीसे का टुकड़ा धंसा था; उसको चाटने लगा। मैं अवाक था। मैं जैसे मर कर जिंदा हो गया था। वह मेरा भूरा था। मेरे घर में मेरी ही तरह घोर अभावों में पला मेरा अपना भूरा।

वह इतनी रात को इस समय यहाँ कैसे आया यह सब सोचने का मेरे पास समय ही नहीं था। मैं उसे अंकवार में लेकर थोड़ी देर तक घिघियाता रहा और फिर आखिर में फूट-फूट कर रोने लगा। मैं उसे पाकर इतना बदहवास था कि वहाँ से जिंदा लौटने के बाद जो कुछ अम्मा से कहना था वह सब मैं अपने भूरा से ही कहता रहा। वह भी बीच-बीच में कुछ गुर्रा कर तो कुछ कूं-कूं कर हुंकारी भरता रहा, कभी मेरा मुंह, कभी पैर, तो कभी मेरे हाथों को चाटता रहा। अभी तक मेरे दु:ख, अभाव, लाचारी और रुलाई, जिन्हें भय ने रोक रखा था, वह सब फूट पड़े। मैं रोता जा रहा था और उससे सब कहता जा रहा था। सुबह घर से निकलने से लेकर, दुकानदार का उधार चुकाने और बचे हुए सिक्कों के खोने की बात भी। सियारों के हमले वाली बात पर वह गुर्राया, सिक्कों के खोने वाली बात पर उसने मेरी पीठ सहला कर सांत्वना दी। दद्दन तिवारी की पतोहू वाली घटना पर उसने नाराजगी जताई। और सबसे आखिर में जब मैंने उसे यह बताया कि मैं सुबह से भूखा हूँ, तो वह अम्मा की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। भूख के बारे में गरीब घर में पले बच्चों और कुत्तों से ज्यादा कौन बतलाएगा।

यह सब कहते-सुनते पता नहीं कितना समय बीत गया। हम दोनों नहर के पाट का सिरहाना लगाए, थोड़ी देर के लिए सो भी गए। जब मेरी आंख खुली तो आसमान में भोर का तारा अकेले और जमीन पर हम दुकेले पड़े हुए थे। भूरा बेफिक्र सो रहा था। सामने गांव की ओर जाने वाला रास्ता थोड़ा-थोड़ा साफ होने लगा था। मैंने धुंधलके में देखा कि कीचड़ में लिथड़ कर चप्पल के लाल और नीले फीते एक रंग के सुंदर मटमैले हो गए हैं। मैंने भूरा को जगाया और उसे साथ लेकर अम्मा के पास चल दिया।

तब से बहुत दिन बीत गए। किंतु आज भी मुझे अपने जीवन के सबसे भयावह और डरावने क्षणों में किसी मनुष्य और किसी ईश्वर की नहीं सिर्फ और सिर्फ भूरा की याद आती है।

हिंदी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003 मो. 9479398591

तमिल कहानी

बकरी चोर

पेरुमल मुरुगन

अंग्रेजी अनुवाद : एन कल्याण रमण

हिंदी अनुवाद : अवधेश प्रसाद सिंह

भूपति की योजना में एक छोटी-सी चूक रह गई। बकरी मिमिया न सके इसके लिए उसके दांतों से बचाते हुए उसने अपनी अंगुलियों से उसकी जीभ को दबोच लिया। फिर भी उसकी पकड़ थोड़ी हल्की रह गई। अपनी पकड़ ठीक करते हुए उसने बकरी के गले को दबा कर रखने की कोशिश की। इसी बीच बकरी ने तड़पती हुई जीभ से थोड़ा-सा अपना मुंह खोला और हलके से मिमिया उठी।

आश्वस्त होकर कि उसकी यह धीमी आवाज न इस घोर अंधेरे को बेध पाएगी, न ही ओस से भीगे इस कठोर दरवाजे से टकरा कर बाहर निकलेगी और किसी सोए व्यक्ति को जगा पाएगी, भूपति ने बकरी को कस कर अपनी छाती से चिपटाया और ऊपर उठा लिया। वह कुछ भारी थी। वह बकरी की अगली चाल से अच्छी तरह वाकिफ था कि वह उछलेगी और लात मार कर अपने पैरों को छुड़ाने की कोशिश करेगी। लेकिन जिस तरीके से उसने बकरी को पकड़ रखा था, उसे दाव-पेंच के लिए कोई अवकाश नहीं था। उसने एक हाथ उसके मुंह में घुसा दिया था, और दूसरे हाथ से बकरी को कस कर अपनी देह से चिपका रखा था। अब सब कुछ उसकी योजना के अनुसार होगा। वह तेजी से जमीन पर धीरे-धीरे पैर रखता हुआ पगडंडी पर बढ़ गया।

'कौन है?' वह मुश्किल से बीस फीट गया होगा कि एक कड़कदार आवाज आई। पीछे से ताड़ के पत्ते की सरसराहट सुनाई पड़ी। उसने बोलने वाले की आवाज पहचान ली, यह भी जान लिया कि उसके साथ और भी लोग शामिल हो रहे हैं। भूपति यह तय नहीं कर सका कि उसे बकरी को पटक कर भाग जाना चाहिए या अपने कंधे पर बकरी लादे हुए दौड़ते रहना चाहिए। वह थमथमा गया। उसका पीछा करने वाले लोगों की आंखें अंधेरे में देखने की अभ्यस्त हो जाएँ और वे उसका पीछा करने लगें, इसके पहले ही वह गंदे रास्ते को पार कर सड़क पर पहुँच सकता है। वहाँ मोपेड पर इंतजार कर रहा मुरुगेशन इतना तेज मोपेड चला सकता है कि जितने में एक आदमी उसके पीछे की सीट पर बैठने की कोशिश भर करेगा उतनी देर में तो वह एक किलोमीटर आगे चला जाएगा, किंतु यदि भूपति अपने कंधे पर बकरी को लादे हुए दौड़े तो उससे होने वाली आवाज उसका पीछा कर रहे लोगों के लिए उसे पकड़ना

आसान बना देगी। आज के पहले वह कभी इतनी खराब स्थिति में नहीं पड़ा था।

'एप्पोव... हमारी बकरी गायब है!'

यह व्यथित चीख सुनते ही भूपति कांप उठा। वह मारा जाएगा यदि उनलोगों ने उसे पकड़ लिया। उसने तुरंत बकरी को पटक दिया। जीभ छूटते ही बकरी जोर से चीखी। यह जमीन पर पत्थर की तरह फेंक दिए गए एक मासूम जानवर की मौलिक चीख थी। किंतु उसकी चीख उसके कानों में पहुँची, तब तक भूपति काफी दूर भाग चुका था। आसपास दौड़ रहे लोगों की हलचल और कुत्ते के भौंकने की आवाज एक साथ भिन्न-भिन्न तरफ से आने लगी। वह इस तरह से उछला मानो किसी लड़के द्वारा उसके शरीर को एक पत्थर की तरह निशाना लगा कर इमली की छीमी पर फेंका गया हो। धरती पर पड़ते हुए उसके पैर की आवाज उसके कानों में धमक रही थी। उसने यह भी महसूस किया कि कोई दौड़ता हुआ उसके काफी पास आ गया है। पीछे मुड़ कर देखना उसकी गति को धीमा कर सकता था।

पड़ोस के कुत्ते एक सुर में भौंक रहे थे। भूपति के कान की लोलकी भय के मारे झनझना उठी। 'चोर, चोर!' 'पकड़ो उसे!' उनकी चिल्लाहट इतनी दूर से सुनाई पड़ी मानों वे कुएँ के भीतर से आ रही हों। उसे केवल इतना करना है कि किसी तरह मुरुगेशन के पास पहुँच जाए, जो पुलिया के पास अपने बिना आवाज वाली मोपेड के इंजन को चालू रखे हुए बिलकुल तैयार खड़ा है। भूपति एक ही तरफ मन साधे हुए पुलिया की ओर तेज गति से भागा। उसका पैर तारकोल की सड़क के गड्ढे पर पड़ा तो टप्पा खाया और जाड़े से उछला। वह परिचित अंधेरे में जो देख सका उससे उसने अंदाजा लगा लिया कि अगले चार या पांच छलांग में ही वह मुरुगेशन के पास होगा।

लक्ष्य इतना निकट देख कर उसने अपने पैरों को तैयार किया कि थोड़ा और तेज दौड़े। जिस समय उसे लगा कि बस अब एक छलांग में मुरुगेशन की पिछली सीट पर होगा, उसी समय एक हाथ उसके गर्दन की गुद्दी पर पड़ा। वह पीछे की ओर खींचा गया और एक धक्का मिला। भूपति के पैर लड़खड़ाए और वह गिरने-गिरने को हो गया। तब तक मुरुगेशन की मोपेड इतनी दूर जा चुकी थी कि कोई उसके पीछे भाग नहीं सका। मुरुगेशन की गाड़ी का असफल पीछा करने वाले लोग लौट कर आएँ, उसके पहले ही भूपति संभल चुका था और अपनी परिस्थिति को भांप चुका था। सड़क के दोनों किनारे घिरे हुए थे। लोग और उनके कुत्तों ने सड़क को जीवंत बना दिया था। केवल पुलिया के दोनों किनारे अभी भी खुले थे।

वह मलवाही नाले के पानी की तेज धार में कूद गया जो घूर्णी खाता हुआ नीचे गटर में गिर रहा था। उसके पैर घुटने तक पंक में डूब गए मानों कदवा किए गए धान के खेत में धंस गए हों। पैर को जल्दी से खींचते हुए उसने दूसरा कदम उठाया और आगे पानी में हेलने लगा। नाला चौड़ा और बड़ा था। उसके चारों तरफ कांटेदार बबूल के पेड़ और लंबे-लंबे घने नरकट के गाछ उगे हुए थे। वह पुलिया में गिरते हुए घूर्णीदार पानी की आवाज सुन सकता था। भूपति नरकट गाछ के सबसे घने भाग में घुस गया और आगे बढ़ने लगा। यह संभव नहीं था कि उस घने अंधेरे में दूर से गाछों के बीच कोई हलचल दिखाई दे।

जैसे ही भूपति पानी में कूदा, उसके पीछे दौड़ने वाला आदमी भौंचक हो वहीं रुक गया। 'वहाँ है वह, वहाँ है' चिल्लाता हुआ वह पुलिया पर चढ़ गया। भूपति ने सुना, वह दूसरों को बुला रहा था, 'आओ, दादा! जल्दी आओ'। भूपति नरकटों के चंदोवे में काफी भीतर घुस चुका था। शोर मचाते हुए लोग और उनके कुत्तों ने नाले को घेर लिया। भूपति ने सोचा कि और आगे नहीं बढ़ने में ही बुद्धिमानी है। आदमी की ऊंचाई वाले नरकटों के बीच उसे एक नुकीला पत्थर मिला जो पानी के बाहर निकला हुआ था। वह उस पर चढ़ गया। उसके पैर कांप रहे थे। कीचड़ और पानी से उसका

पेरुमल मुरुगन

चर्चित तमिल कथाकार। 'वन पार्ट वूमेन' को लेकर विवाद का धैर्य से सामना किया। विद्वान और साहित्यिक इतिहासकार हैं। नामकल में सरकारी आर्ट्स कालेंज में तमिल के प्रोफेसर।

शरीर कमर तक भीग गया था। दूसरी ओर सिर से टपकता हुआ पसीना पूरी देह को भिगा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था मानों अभी नहा कर निकला है।

इस बीच उसका पीछा करने वाला आदमी वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति को पूरी घटना का विवरण दे रहा था। नरकट के चंदोवे के भीतर रह-रह कर टार्च की रोशनी चमक रही थी। लोगों की एक बड़ी भीड़ पुलिया के पास इकट्ठी हो गई थी। भीड़ में तीस-चालीस लोग तो पक्का होंगे। कुछ के हाथों में लाठियाँ भी थीं।

उसे विश्वास था कि नरकटों के भीतर थोड़ी हलचल होती भी है तो वहाँ फैला अंधेरा उसे बचाए रखेगा। यदि वह उस चंदोवे में भीतर घुसता है तो झील के उस फाटक के पास पहुँच सकता है, जहाँ से पानी निकल रहा है। यदि वह किनारे की ओर बढ़ता है तो वह नारियल के बगीचे में पहुँच जाएगा, जो एक ओर मिट्टी की भीत से घिरा है और दूसरी ओर बलुआ रास्ता है जो झील की ओर जाता है। भूपति ने सोचा कि जैसे ही वे नरकटों में कोई हलचल देखेंगे तो उनमें से कोई इस नाले में उतर आएगा और इस जगह पहुँच सकता है। हालांकि वह इस छोटे से पत्थर पर बहुत देर तक बैठ नहीं पाएगा। उसके पैर के तलवे जलने लगे थे।

नरकट के घने पेड़ों के बीच उसने एक ऊंचा स्थान देखा जो उसे बालू का टीला जैसा लगा। वह पत्थर से उतर कर उसकी ओर बढ़ा। वह सचमुच बालू का टीला ही था। एक कांटेदार झाड़ी ने टीले के अधिकांश भाग को ढक रखा था। उसके पैर एक नुकीली, खुरदरी चीज से उलझ गए। उसने अपनी कमर में रखे हुए चाकू को निकाला और धीरे-धीरे कंटीली शाखाओं को काट डाला जो जमीन तक फैले थे। इस तरह सफाई करने के बाद उसके जमीन पर बैठने के लिए पर्याप्त जगह निकल आई। वह करवट लेकर लेट गया। यदि वह चित सोता है तो डर है कि कांटें आंख में लग सकते हैं। यदि वह अपने पैर फैलाता है तो वे पानी में चले जाएंगे। फिर वह गुडीमुडी होकर किसी तरह उस छोटी-सी जगह में पड़ा रहा। कहीं कुछ भी खड़कने की आवाज नहीं आई।

अब वह नाले से दूर के लोगों की आवाजें सुन रहा था। अंधेरे की वजह से आवाज साफ-साफ आ रही थी। रोशनी की एक किरण भी इधर आ जाती तो भय के मारे उसके कान की लोलकी सिहर उठती।

'वह बहुत दूर नहीं भाग सकता। वह कहीं न कहीं इस गटर के भीतर ही छिपा हुआ है।'

'वह इतना तेज दौड़ रहा था कि अब तक वह झील के पास चला गया होगा और वहाँ से हाथ-पैर मारते हुए किनारे पहुँच कर भाग गया होगा।'

'यदि कोई आदमी इस गटर में ढुकेगा तो उसे अपनी जान गंवानी पड़ेगी।'

लोग नाले के तीनों तरफ खड़े थे। टार्च की रोशनी लगातार इधर-उधर फैल रही थी। भूपति को पक्का भरोसा था कि कोई उसे देख नहीं पाएगा। वह नाले के बीचोंबीच था, जिसे चारों ओर से लंबे घने नरकट पेड़ घेरे हुए थे। दूर से किसी भी

प्रकार से उसके छुपने की जगह इस रोशनी में दिखाई नहीं पड़ सकती। वहाँ जो अंधेरा पसरा था वह उसे ऐसा बना रहा था मानों वह जगह भी नरकट पेड़ से भरी हुई है। पर उस समय वह क्या करेगा यदि उसकी तरह के हट्टे-कट्टे चार-पांच लोग उसे पकड़ने हेतु गटर में कूद पड़ें? उसकी कल्पनाएँ भयानक होती जा रही थीं।

जिस समय उसके पसीने सूखने लगे थे, ठीक तभी इन चिंताओं से पसीने की बूंदें फिर से उभर आईं। उसने अपने कबीले की देवी को गुहराया, 'अम्मा... कारियाकली... बचाओ मुझे, माँ!' वह मन ही मन फुसफुसाया। वह नहीं जानता था कि और क्या प्रार्थना करनी चाहिए। अपनी आंखें बंद कर वह एक मंत्र की तरह गोहराता रहा, 'कालीम्मा, कालीम्मा'।

लोगों की बातचीत की आवाज तेज होती जा रही थी। आधी रात से अधिक समय बीत चुका था, जिस समय एक अद्‌भुत अंधेरा और ओस होता है। किंतु हर आदमी वहाँ रुक कर मजा लेना चाहता था। अगर यह घटना मात्र एक बकरी की चोरी की होती तो शायद एक छोटी-मोटी खबर की तरह अब तक समाप्त हो चुकी होती। परंतु इस समय यह एक ऐसे विषय के रूप में उभर आया है जिस पर कई दिनों तक गपशप चलती रहेगी। अब वह कई प्रकार की आवाजें सुनने लगा, जिनमें औरतों एवं बच्चों की आवाजें भी शामिल थीं। कुत्ते की तरह भूपति के कान खड़े हो गए। पहले उसने नरकट पेड़ों पर पत्थरों के गिरने की आवाजें सुनीं, जो इस प्रकार गिर रहे थे मानों वर्षा हो रही हो। उसके बाद सारी मर्यादाओं को ताक पर रख कर गालियाँ आने लगीं : 'निकलो, मादर...!' यह सोचते हुए कि कोई पत्थर उसे न लग जाए, भूपति ने अपने शरीर को फिर से सिकोड़ कर एक गेंद जैसा बना लिया। हालांकि कोई भी पत्थर उसके आसपास नहीं गिरा था। जैसे ताड़ के पेड़ से फल गिरते हैं, वे कीचड़ में गिरते रहे और जोर-जोर की आवाज करते रहे। वह इतना दूर था कि वहाँ कोई व्यक्ति या पत्थर आसानी से नहीं पहुँच सकता था।

यदि वह इसी प्रकार यहाँ पड़ा रहा तो भोर हो जाने और चारों ओर दिन का प्रकाश फैल जाने के बाद भी कोई उसे खोज नहीं पाएगा। भूपति ने फिर से अपने को दृढ़ और आश्वस्त महसूस किया। पत्थरों के गिरने की आवाजें धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं। भीड़ में खड़े लोगों को समझ में नहीं आ रहा था कि अब आगे क्या करें। लोगों ने तरह-तरह के सुझाव देने प्रारंभ किए। बकरी का मालिक लगातार अनेक लोगों से अपने साहसिक कारनामे का बखान कर रहा था। वह अपने बखान का अंत एक ही विलाप से करता था :

'मैं बहुत थोड़े से चूक गया। मैंने उसे खींच लिया था और जमीन पर पटक दिया था। यदि मैं तत्काल उसके गले को पकड़ लेता तो वह भाग नहीं पाता। उल्टा मैं उस आदमी के पीछे भागा जो अपनी गाड़ी लेकर खड़ा था... तब तक यह आदमी उठ बैठा। मैं कैसे जान पाता कि यह आदमी इस पैखाने के बदबूदार नाले में कूद पड़ेगा और इतनी जल्दी भाग जाएगा।'

टार्च की रोशनी नरकट गाछ को लगातार छानती रही।

'धत्त, तुममें से कोई मेरे बाल भी नहीं उखाड़ सकता। दुः, आओ यहाँ, यदि तुममें से किसी के पास दम है।' जैसे ही उसे लगा कि उसके मुंह से यह चुनौती भरी आवाज निकल रही है, भूपति ने अपनी हँसी को दाब लिया।

एक औरत थकी हुई आवाज में बोली, 'चलो ठीक है, बकरी तो बच गई? अब तुम सब इस ठंड में यहाँ क्यों फिजूल रुके हो? जो आदमी इस गंदगी में घुस सकता है, तुम्हें लगता है कि वह अभी तक उसमें पड़ा होगा? हम कैसे जान सकते हैं कि वह किस तरफ निकल गया और किधर से भागा। यहाँ इतना ज्यादा अंधेरा जमा है कि तुम उसे खंड-खंड काट सकते हो। जाओ और अपने काम में लगो।'

'तुम क्यों नहीं घर जाती, यदि तुम्हें खीझ हो रही है? कैसे एक चोर किसी दरवाजे से बकरी चुराने का साहस कर सकता है? कैसे हम चुप बैठ सकते हैं, जब तक हम यह नहीं जान लेते कि उसका चेहरा कैसा है? हमें सूरज के उगने तक यहाँ बैठना पड़े तो हम बैठेंगे। हम उसे पकड़े बिना घर नहीं जाएंगे।' एक उत्साही आवाज ने घोषणा की। 'कोई जाओ और आग की लुकाठी ले आओ', दूसरे ने आदेश दिया। उसने कुछ लोगों के जाने की हलचल सुनी। 'हमें सुबह काम पर जाना है। अब बहुत नींद आ रही है।' कुछ औरतें और लड़कियाँ भी अपने घर की ओर जाती हुई प्रतीत हुईं। वह नहीं समझ सका कि उन्हें आग की लुकाठी क्यों चाहिए। कुछ क्षण के लिए वह डर गया कि कहीं टार्च लेकर कोई उसके नजदीक न आ जाए। 'आने दो उन्हें। मैं देखता हूँ वे क्या कर सकते हैं', उसने निडरतापूर्वक सोचा और अपने पैर फैला दिए। अब तक वह जगह पैर फैलाने के लिए आरामदेह हो चुकी थी। कांटों के बीच से आकाश में कुछ तारे दिखाई पड़ रहे थे।

'ऐइ, मरप्पा ... उस तरफ निगरानी रखो। वह शायद उस तरफ से झील के किनारे पर चढ़ कर भाग जाए। लड़के आग का गोला लाने गए हैं। हम उनका इंतजार करेंगे।'

नाले के किनारे बलुआ रास्ते से नारियल के बगीचे की ओर जाने का एक रास्ता था, जिधर बहुत कम लोग खड़े थे। उन्हें पुकार कर चेतावनी दी गई। बगीचे की ओर केवल एक पगडंडी थी, जिसे ग्रामीणों ने निकटवर्ती खेतों में पैखाना करने जाने के लिए बना दिया था। वहाँ कोई भी ज्यादा देर तक रुक नहीं सकता था। भूपति ने सोचा कि वह वहाँ जाकर खड़ा हो सकता है। फिर उसने सोचना बंद कर दिया कि आगे क्या होगा और उसके लिए स्वयं को तैयार करने लगा। कहीं से अब गुस्से की आवाज सुनाई नहीं पड़ रही थी। वे अब अधिकांशत: उन चोरी हो गए जानवरों की बातें कर रहे थे, जिन्हें उस इलाके में चोरों ने इसके पहले चुराया था। भूपति को याद आया कि वे जिनकी बात कर रहे हैं उनमें से कुछ को तो उसी ने चुराया था।

बकरी चुराने की कला में उसे उसके पिता ने पारंगत किया था। भूपति प्राय: महसूस करता था कि उसका अपना कारनामा उसके पिता की तुलना में कुछ भी नहीं था। उसके पिता उस तरह कभी नहीं फंसे थे जैसे आज वह फंसा है। कोई भी आदमी गाड़ी लेकर उसके पिता के भागने के लिए खड़ा नहीं रहता था। उनके कंधों पर लदी हुई बकरी कभी छोटी-सी भी आवाज नहीं कर पाती थी, भले ही उसे कितनी भी दूर तक ले जाया जाता। उसके पिता ने बकरी चुराने के लिए रात के सबसे अच्छे समय के बारे में बताया था- वह समय जब मृत्यु के देवता यमराज सभी प्राणियों को डंस लेते थे और वे सो जाते थे और वह निडर होकर आधी रात से लेकर सुबह तक अपना काम करता था। यहाँ तक कि बूढ़े लोग और गंभीर रूप से बीमार रोगी की आंखें भी इस समय नींद से बंद हो जाती हैं। भूपति के पिता उसे प्राय: कहा करते थे कि ईश्वर द्वारा यह समय हमें वरदान के रूप में मिला है। उसके पिता की प्रमुख शिक्षा थी कि हमारे कार्य हमेशा बिना चिंता के होने चाहिए। उन्होंने भूपति को बकरी की जीभ पकड़ने की तकनीक भी सिखाई थी और यह भी बताया था कि बकरी को किस प्रकार कंधे पर लादा जाता है।

भूपति ने अपने जीवन में चोरी की शुरुआत एक कमजोर बूढ़ी औरत के घर से की थी। वह एक खेत में फूस का छप्पर डाल कर उसमें दो बकरियों के साथ अकेली रहती थी। उसमें एक सफेद खसी था, जिसे सही उम्र में बधिया कर दिया गया था और दूसरी काली छोटी बकरी थी। खसी के सफेद चमड़े के काफी रुपए मिलते थे। यदि एक जगह पर दो लक्ष्य हों तो उसे वह चुनना था जिससे उसे अधिक आमदनी हो सकती थी। यह भी एक पाठ था जिसे उसने अपने पिता से सीखा था। उसने बकरे को चुराने का लक्ष्य बनाया।

लेकिन उसके मन में एक तड़प पैदा हुई। क्या उसे एक बूढ़ी अकेली औरत की मेहनत की कमाई लूटनी चाहिए?

'प्रत्येक आदमी के जीवन में कठिनाई होती है। यदि हम उसके बारे में चिंता करने लगें तो हम अपना कारबार कभी नहीं कर पाएंगे। बेहतर है हम अपनी कठिनाई को सोचें', उसके पिता ने कहा था। भूपति ने उस खसी को चुराने में अपनी कोई बड़ी बहादुरी नहीं मानी थी। उसकी पकड़ सही थी। बूढ़ी औरत ने उसपर शक भी नहीं किया। फिर भी उसके पैर कांप रहे थे। उसका कांपना तब तक नहीं रुका जब तक वह बकरी के बच्चे को लेकर घर नहीं आ गया। फिर भी उसने महसूस किया कि उसका मन कड़ा है। ऐसा लगा मानों उसका भय उसके पैरों में उतर गया था। उस प्रथम चोरी के बाद सब कुछ बहुत आसान और नियमित हो गया।

बकरी की जीभ को पकड़ना और अपने कंधे पर उठाना कोई खास बात नहीं थी। उससे कहीं ज्यादा कठिन था चोरी करने के पहले निशाना बनाए गए घर पर नियमित निगरानी रखना। विभिन्न पहलुओं की जानकारी रखना कि बकरी को रात में किस झोपड़े में बांधा जाता है, वहाँ पहुँचने का आसान रास्ता क्या है, घर और झोंपड़े के बीच की दूरी क्या है, घर में रहने वाले लोगों की संख्या कितनी है, घर के हर निवासी रोज जहाँ सोते हैं वह जगह कौन सी है, वह आदमी कौन है जिसे रात में सोते समय कठिनाई होती है और नींद नहीं आती है– इन सबके लिए काफी प्रयास और जानकारी की जरूरत होती है। अनेक स्वांग रचने पड़ते हैं, जैसे स्थानीय ताड़ी की दुकान में ग्राहक बन कर जाना या व्यापारी बन कर जाना जो भैंस और गाय के बछड़ों को खरीदते–बेचते हैं। यदि सब कुछ का हिसाब पहले से अच्छी तरह कर लिया जाए तो रात में चोरी करना आसान हो जाता है। बकरी का मालिक जब तक यह जान पाता कि उसकी बकरी गायब है उसके पहले ही उसका मांस उस इलाके के अनेक घरों में पक रहा होता।

भूपति ने जब मुरुगेशन के साथ गिरोह बना लिया तब उसका काम और भी आसान हो गया। मुरुगेशन अपनी बिना बत्ती की मोपेड पर घने अंधेरे में इंतजार करता रहता। जैसे ही भूपति कंधे पर बकरी लिए पीछे की सीट पर बैठ जाता, उसका पीछा करने वाला आदमी किसी भी रूप में उसे पकड़ नहीं पाता। मुरुगेशन प्राय: कहता कि हर चीज में आधुनिकीकरण को शामिल करना बेहतर है। जब एक बार कोई बकरी उठा कर घर लाया जाता, उसके बाद एक सप्ताह का अंतराल रखा जाता तभी दूसरा काम हाथ में लिया जाता। एक चोरी के बाद दूसरी चोरी के स्थान में भी कम से कम दस किलोमीटर की दूरी रखी जाती।

कभी–कभी मुरुगेशन में उत्साह छलांग लगाने लगता और उसके मन में साहसी विचारों का अंबार उठने लगता। एक बार जब उन्होंने चोरी की हुई बकरी को बाजार में मांस बेचने वाले को बेचा और उससे पैसा लिया तो उस कसाई ने कहा : 'आज मैं एक बकरी नहीं खरीदूंगा। आज के दिन यहाँ के अधिकांश गांवों में त्योहार है। यदि मुझे एक बकरी और मिल जाए तो मजा आ जाए। उसके लिए मैं पचास या सौ रुपए अधिक देने को तैयार हूँ।' अब वे क्या करें, अब तो सुबह के चार बज चुके हैं? चोरी की गई बकरी के लिए कसाई मोलभाव किए बिना हमेशा अच्छी कीमत देते हैं। वह लंबे समय से खरीददार है। यदि वे उसके लिए बकरी लाते हैं तो वह उसे तत्काल काट कर उसकी छाल निकाल लेता है, भले ही उसके बाड़े में कितनी भी बकरियाँ हों। मुरुगेशन ने भूपति से कहा, 'पा, यह हमारा अपना आदमी है, हमें इसकी किसी भी तरह से मदद करनी चाहिए।' उसने उस कसाई से एक गाड़ी उधार मांगी। हालांकि वह एक घड़घड़ाने वाली गाड़ी थी, जिसमें बत्ती भी लगी हुई थी। 'मैं अपनी ओर से पूरी कोशिश करूंगा। उसके बाद तुम्हारा भाग्य जाने।' मुरुगेशन ने कसाई से कहा।

उसने गांव के बाहरी इलाके में गाड़ी को एक

घर के सामने खड़ा किया। एक औरत बकरियों के बाड़े में उन्हें दुह रही थी। मुरुगेशन ने अंधेरे में उसका चेहरा नहीं देखा। वह सीधे उसके पास गया और बोला, 'एम्मो, मैं बकरी लेने आया हूँ।' उसने बकरी को खोला और उसके पास ले आया। वह औरत चूंकि दूध दुह रही थी, इसलिए उसने कहा, 'जाने के पहले पगहा और खूंटी को देहरी पर रख देना।' बकरी जिस खूंटी में बंधी थी उसने उखाड़ लिया और उधर रख कर बोला, 'मैंने रख दिया है, अम्मो'। यह माना जाता था कि यदि बकरी को पगहा और खूंटी सहित बेच दिया गया तो उसका वंश नहीं बचेगा।

'मैं दस बजे आऊंगी। नेत्रायन को बोल देना कि उस समय पैसा दे दे।' औरत चिल्लाई। बकरी उठाते हुए मुरुगेशन भी चिल्ला कर बोला, 'तुम ठीक दस बजे रुपए पा जाओगी, अम्मो'। उसने बकरी को अपने दोनों पैरों के बीच रखा और अपनी गाड़ी पर बैठ गया।

वह बकरी पहले ही नेत्रायन को बेची जा चुकी थी, जिसने कहा था कि सुबह में आकर बकरी ले जाएगा। जब भूपति और मुरुगेशन उस घर में गए तो उस औरत ने समझा कि वह नेत्रायन का नौकर है। चोरी की बात तब समझ में आई जब नेत्रायन का आदमी सूरज उगने के बाद बकरी लाने उसके घर गया।

'तुम्हें उस हर एक बात को ध्यान से सुननी चाहिए जो तुम्हारे कान में आ रही हो। अरे, नीम तेल की कटोरी भी किसी न किसी काम आ सकती है।' मुरुगेशन ने भूपति से कहा।

किंतु अब तक भूपति ने कभी ऐसी स्थिति का सामना नहीं किया था, जिसमें आज वह पड़ा है। यदि यह भीड़ किसी तरह चोर को पकड़ लेती तो उसके हर अंग को अलग-अलग छिटका देती। उसके शरीर का ऐसा हाल हो जाता कि उसे जीने के लिए भीग मांगने के सिवा और कोई उपाय नहीं बचता। यही कारण था कि भूपति हमेशा अपनी लुंगी की गांठ में एक छुरी रखता था। वह कम से कम अपने दुश्मन को छुरी घोंप कर भाग तो सकता है।

वह जहाँ छुपा था वहाँ से उसे दो या तीन टार्चों की रोशनी दिखाई पड़ रही थी। वे लोग टार्च को ऊपर उठाए हुए गटर में घास की झाड़ी में घुस सकते हैं। यदि उन्होंने ऐसा किया तो उसे बाध्य होकर दूसरी जगह जाना पड़ेगा। उसे छुपने के लिए बेंगची की तरह कोई कोना या छेद ढूंढ़ना पड़ेगा। यदि वह धीरे-धीरे रेंगते हुए नाले के पास चला जाए तो वह दूसरे किनारे पहुँच सकता है और वहाँ से भाग सकता है। किंतु कोई भी नाले में नहीं घुसा। आग के गोले से उन्होंने कुछ सूखे हुए घासों में आग लगा दी। किंतु आग आसानी से पकड़ने वाली नहीं थी। ओस से भीगे हुए वे नरकट जल्दी ही बुझ गए। उसके बाद उन लोगों ने उसका पीछा करने का सारा उत्साह खो दिया।

'दादा, हमें अब लौट जाना चाहिए। उस आदमी को सांप ने पक्का काट लिया होगा।'

'कोई आदमी जो जीने के लिए इस तरह की चोरी करता है उसे इसी तरह मरना चाहिए।'

'वह रात भर वहीं कांटों से चुभते हुए पड़ा रहेगा और सांप के जहर से मर जाएगा। हमलोग सुबह में आएंगे और उसकी लाश निकाल कर ले जाएंगे।'

'भगवान जाने वहाँ गंदे नाले के पानी में कांच के टुकड़े कहाँ-कहाँ पड़े होंगे। निश्चित है कि उससे उसके पांव कट गए होंगे। नाली के कुत्ते, जीने के लिए बकरी चुराने से तो अच्छा था अपनी माँ की दलाली करता।'

कान पिघलाने वाली इन गंदी गालियों के बाद भीड़ कम होने लगी। उसके प्रति व्यक्त की गई घृणा और असहनीय क्रोध हवा में घुल गया। चोरी के लिए इतने सारे अभिशापों का कारण वह समझ नहीं सका। वह दबी हुई आवाज में हँसा। उसने अपनी आंखें बंद कर लीं। भीड़ की बातचीत क्रमशः कमने लगी और फिर ऐसा लगा कि सड़क पर मात्र फुसफुसाहट की आवाज आ रही है।

उनकी आवाज से उसने समझ लिया कि थोड़े से लोग, जो नारियल के बगीचे में खड़े थे, वे भी अब जा रहे हैं।

पर उसने सोचा उसके साथ चाल खेलते हुए कुछ लोग वहाँ अभी भी छुपे होंगे। जैसे ही वह दिखाई पड़ने लगेगा वे उस पर झपट्टा मारेंगे और उसे पकड़ लेंगे। बकरी का मालिक कुछ ज्यादा ही साहसी है। उसने भूपति का पीछा किया था, इस बात की परवाह किए बिना कि उसके पास चाकू भी होगा। मालिक द्वारा पकड़े गए और खींचे गए दबाव को भूपति अभी भी अपने शरीर पर महसूस कर रहा था। उसने तय किया कि अपनी जगह से अभी नहीं उठना है। सारी चीजों के पूरी तरह शांत हो जाने के पहले इंतजार के सिवा उसके पास कोई रास्ता नहीं था। नींद के मारे उसकी पलकें बुरी तरह भारी हो रही थीं और उसे तार-तार कर रही थीं। यद्यपि उसने अपनी नींद को चेता दिया था कि उसे हार नहीं माननी है, परंतु वह उसका कहना मानने को तैयार नहीं थी। हालांकि वह रात में हल्की नींद में ही सोता था। यदि नींद से उसका सिर झुक भी जाता तो भी वह तत्काल उठ बैठता था।

अंतत: जब वह जगा तो उसने अपने पूरे चेहरे को ओस की बूंदों से भीगा हुआ महसूस किया। पर वह तत्काल नहीं उठा। कांटेदार शाखाओं ने उसके शरीर को कंबल की तरह लपेट रखा था। उसके पैर पर लगा हुआ कीचड़ सूख चुका था और उसके चमड़े को खींच रहा था। उसके लिए अपने पैरों को खींचना भी कठिन लग रहा था। उसने आकाश की ओर देखा। लुब्धक तारा जो प्रभात तारे की तरह उसकी आंखों को धोखा दे रहा था, आकाश में नीचे की ओर लटका चमक रहा था। उसने अंदाजा लगाया कि लगभग चार बज रहा होगा। वह जमीन पर लेटे हुए घिसटता हुआ कांटों से बाहर निकला। पहले की तरह ही अभी भी चारों ओर घना अंधेरा था।

उसके कानों में अनजान कीड़े-मकोड़ों की आवाजें आ रही थीं। ऐसा लग रहा था मानों उसके कान अब तक बंद थे और अब अचानक खुल गए हैं। उसने तालबद्ध, भारी गले की गड़गड़ाहट सुनी, जो मेढक की आवाज या कुछ और हो सकती है। उसे लगा कि यह सांप की रहस्यमयी आवाज भी हो सकती है। जहाँ तक आंखें देख सकती थीं, नाला नरकट के गाछ से ढका था। नरकट का पेड़ एक आदमी की ऊंचाई से भी बड़ा था। कौन जानता था कि उन घने पेड़ों के भीतर कैसा खतरा फैला हुआ था? वह बालू के टीले से नीचे कूदा और पत्थर पर चढ़ गया। उसे उधर नहीं जाना चाहिए जिस तरफ से वह आया है। उसे कोई और रास्ता ढूंढना पड़ेगा। उसने चारों ओर देखा। नरकट के पेड़ के ऊपर बबूल की कांटेदार डालियाँ नरकंकाल की तरह दिख रही थीं। उसकी आंखों ने सभी ओर ऐसे ही नजारे देखे।

नारियल के बगीचे की ओर जाने का निर्णय करके उसने पहला कदम उठाया। उसके पैर पेड़ों की जड़ों में उलझ गए और घुटने तक दलदल में धंस गए। वह भयभीत हो उठा। उसके आसपास कीड़े-मकोड़ों की आवाजें मानों बढ़ती जा रही थीं। उसने पैरों को खींचने का प्रयास किया। उसे लगा कि हर पैर निकलता है फिर धंस जाता है। वह किसी तरह पत्थर के पास पहुँचा और उसे पकड़ लिया। फिर उसने पत्थर पर दोनों हाथों को रख कर जोर लगाया और किसी प्रकार पैरों को दलदल से बाहर निकाला। जब वह फिर से पत्थर पर बैठा तब जाकर उसे राहत महसूस हुई। यद्यपि ओस की बूंदों से उसका शरीर भीग रहा था और उसे ठंड लग रही थी पर वह पसीने से तरबतर था।

उसके आसपास बलुआ पांक वाली जमीन थी, जिसके बीच वह फंस चुका था। वहाँ से निकलना मुश्किल था। लोगों द्वारा जो अभिशाप उसे दिए गए थे वे नरकट गाछ, कांटे और दलदल के रूप में उसके सामने खड़े थे। क्या यह वही रास्ता नहीं था जहाँ से वह आया था? जिन गाछों ने उसके लिए रास्ता खोला था, वे ही अब उसके

निकलने के रास्ते बंद कर रहे हैं! उसके पैर बेवश होकर कांपने लगे। यह वही कंपकंपी थी जिसे उसने तब महसूस की थी, जब पहली बार बूढ़ी औरत के घर से बकरी चुराई थी। उसने कंपकंपी को ऐसे झटका मानों वे पैर पर जमे कीचड़ हों और फिर साहस बटोरा।

उसने आकाश की ओर देखा। भोर का तारा आकाश में पीले नीलमणि की तरह टिमटिमा रहा था। उसका समय आ गया था। अब लोगों की दौड़धूप शुरू होने वाली थी। उसने काफी दूर से आती हुई आवाज सुनी। उसके आसपास के झाड़ मानवाकृति में बदल गए थे जो उसपर चीख रहे थे। कांटेदार पेड़ों ने मनुष्य का रूप ले लिया था, जो उसे पकड़ने हेतु हाथ फैलाए उसके सामने खड़े थे। विभिन्न तरह की अनेक आवाजें एक भयंकर चीख में तब्दील हो गई थीं : 'चोर! चोर!' उसने चिंता की एक लहर महसूस की। उसके पैर आगे की ओर छलांग लगाने लगे।

158 लेनिन सरणी, बेसमेंट, रूम नं.54ए, कोलकाता-700013 मो.09903213630

लघुकथा

अनपेक्षित उत्तर

संतोष सुपेकर

एक पाले हुए नियम के तहत मगनलाल हर शनिवार शहर के प्रसिद्ध मंदिर के बाहर बैठे भिखारियों को खाना बांटते थे।

एक जिज्ञासा उन्हें बरसों से बेचैन किए थी। खाना बांटते हुए एक पुराने परिचित भिखारी से उन्होंने आज पूछ ही लिया- 'एक बात बता, तुम सब इस मंदिर के बाहर बरसों से भीख मांग रहे हो। मैंने तुम्हें क्या, किसी भी भिखारी को मंदिर के अंदर जाते नहीं देखा। यहाँ क्या, कहीं भी किसी भिखारी को मंदिर में दर्शन करते नहीं देखा। क्या तुम लोगों की इच्छा नहीं होती, अंदर जाकर भगवान के दर्शन करने की?'

सवाल सुन कर भिखारी सकपका गया। भोजन लेते हुए उसके हाथ एकाएक रुक गए, फिर कुछ सोच कर बोला, 'सेठ जी आप भी एक बात बताओ, बरसों से आप यहाँ, हमें इस मंदिर के बाहर खाना खिला रहे हो, क्या आपकी कभी इच्छा नहीं होती, हम जैसों को अपने आलीशान बंगले में बैठा कर खिलाने की।'

सकपकाने की बारी अब मगनलाल की थी। भिखारी हँस कर बोला, 'सेठ जी, हम बाहर के प्राणी हैं। हम न आपके घर में घुस सकते हैं, न भगवान के घर में। हमें बाहर ही रहने दो, भगवान भला करे आपका!'

मो.9424816096

बांग्ला कहानी

एक्सपायरी डेट

शीर्षेंदु मुखोपाध्याय

अनुवाद : सुशील कान्ति

'काटू मस्तान का नाम सुना है आपने?'

'काटू मस्तान! हाँ, हाँ सुना है। मगर क्यों?'

'मेरा बेटा है काटू मस्तान! हें हें हें।'

'इसका मतलब आप काटू मस्तान के पिता हैं?'

'मतलब तो यही ठहरता है। काटू मस्तान अगर मेरा बेटा है तो मुझे उसका बाप बने बिना कोई चारा भी नहीं है! हें हें हें।'

'सो तो है, मगर आपको देख कर...'

'...पता नहीं चलता न। दरअसल मैं उस लाइन का आदमी हूँ नहीं। डाक घर का साधारण किरानी हूँ। बस साल भर और नौकरी बची है। गरीब आदमी हूँ। संतोष की बात यह है कि मेरे रिटायर होने के पहले बेटे ने अपने को स्थापित कर लिया है। है न?'

'जी हाँ, विख्यात पुत्र का पिता होना मामूली बात है नहीं! तो... काटू मस्तान की आमदनी अच्छी ही होगी, क्या कहते हैं आप?'

'हाँ, बहुत बुरी नहीं है शायद। पिछली पूजा में माँ को गारद की साड़ी दे गया था। बहन को एक कीमती मोबाइल और कांजीवरम।'

'और आपको?'

'मुझे पांच हजार रुपए देकर कहा कि जो मर्जी खरीद लीजिएगा। तो महाराज, मैं दिल खोल कर खरीदारी नहीं कर पाता। रुपए मैंने बैंक में रख दिए हैं।'

'अच्छा किया आपने। तो... काटू की प्रसिद्धि बढ़ रही होगी आजकल?'

'हाँ, बढ़ तो रही है। बेलेघाटा ब्लैकमेल, हरिणघाटा हत्याकांड, हावड़ा का हवाला आदि कई केसों में उसका नाम अखबारों में आ चुका है। डांगाखेला डकैती कांड में तो उसका ही नाम पहला था।'

'वाह, वाह! इस तरह उसका नाम और भी फैल जाएगा। वैसे आपके साथ बेटे का संबंध कैसा है?'

'खराब नहीं है साहब, खराब नहीं है। बस उसके पास समय का बड़ा अभाव है। काम का दबाव बहुत ज्यादा है न। साँस लेने की फुर्सत नहीं है। महीनों घर से बाहर रहता है।

मेरे साथ या परिवार के साथ उसकी भेंट ही दुर्लभ है। नमाही-छमाही कभी आंधी की तरह आता है, दस से पंद्रह मिनट नहीं बीतता कि किसी मिनिस्टर या उद्योगपति या फिर किसी वीआईपी का फोन आ जाता है और तूफान की गति से निकल जाता है। काम का दायित्व बहुत है उस पर।'

'सो तो है। लिख-पढ़ कर उन्नति करने में बहुत समय लग जाता है। उसके बाद भी इतनी घपलेबाजी है कि ठीक-ठाक प्रमोशन नहीं मिलता। कंपनी का शटर गिर जाता है या छंटनी शुरू कर देती है। उससे बढ़िया यह लाइन है, धड़ाधड़ आगे बढ़ते जाओ।'

'एक मोटरसाइकिल खरीद चुका है। सुनने में आया है गाड़ी भी बस खरीदने ही वाला है। कसबा की ओर एक फ्लैट भी बुक किया है।'

'काटू की उम्र क्या होगी, बताइए जरा?'

'बस छब्बीस में कदम रखा है।'

'वाह! छब्बीस की उम्र में ही कितनी उन्नति कर चुका है!'

'कहना नहीं चाहिए कि बचपन से ही उसका टैलेंट झलकने लगा था। तब से ही इसकी माँ कहती, अजी सुनते हो, यह लड़का बाकी से अलग है। जन्मजात प्रतिभाशाली है।'

'कैसे समझा आपने?'

'एक तो उसे स्कूल के लिए कभी टिफिन नहीं देना पड़ता। कारण यह था कि काटू हमेशा दूसरों की टिफिन झपट कर खा लेता था। परीक्षा में जब चोथा निकाल कर नकल मारता तब किस टीचर की मजाल कि उसे पकड़ ले। जैसे मेरा मकान मालिक हमेशा हमें मकान छोड़ देने की धमकी देता, पानी बंद कर देता, काटू ने केवल सोलह की उम्र में लोहे का रॉड लेकर मकान मालिक को दौड़-दौड़ा कर छत पर ले जाकर पटका था। लोग कहते हैं कि काटू ने ही उसे धक्का दिया था, मगर सच यह है कि मकान मालिक स्वयं जान बचाने के लिए रेलिंग टपक कर कूद गया था।'

'क्या वे मारे गए?'

'नहीं, चलने-फिरने में नाकाम हैं। बिस्तर पकड़ चुके हैं। अब हमलोगों के बीच काफी घनिष्ठता है।'

'समझा। आपके पुत्र की प्रतिभा बचपन में ही फूट पड़ी थी।'

'टैलेंट चीज ही अमाशय रोग की तरह है, रोके नहीं रखा जा सकता। किसी न किसी तरह उसकी लीकेज होनी ही है।'

'सही कहा आपने।'

'हमारे समाज में दुराचार फैल गया है, आपने जरूर गौर किया होगा?'

'किया है जी! जिधर देखो उधर ही दुराचार है।'

'वही तो कहता हूँ। आदमी आदमी का सम्मान नहीं करता। औरतों की मर्यादा खत्म हो गई है।'

'बिलकुल सही।'

'अब मुझे ही देख लीजिए। डाकघर का साधारण किरानी हूँ, नून-तेल का अभाव लगा ही रहता है। खास परिचय भी नहीं है, तो क्या आत्मसम्मान का हक नहीं बनता? इस मुहल्ले में जब नया-नया किराएदार बन कर आया था तब लोगों के व्यवहार से काफी दुखी होता था साहब! मुहल्ले के इज्जतदार लोग मुझे अपमानित करते, मुहल्ले के छोकरे मेरे सामने ही सिगरेट फूंकते। बाजार में सब्जीवाले, मछलीवाले मुझे महत्व नहीं देते, मुहल्ले की स्टेशनरी या पंसारी की दुकान पर जा कर पता चलता कि ये लोग मुझे बड़ा खरीदार नहीं समझते हैं। मुहल्ले में होने वाली दुर्गापूजा का चंदा मांगने आए थे महाराज, पांच हजार का चंदा सुन कर मैं विनम्रता से गिड़गिड़ाने लगा तो एक छोकरे ने आंखें चढ़ा कर धमकाया, झमेला किया तो मुहल्ले से निकाल दूंगा।'

'अरे! काटू मस्तान के पिता से ऐसा दुर्व्यवहार?'

'आहा! तब मैं काटू मस्तान का पिता बना कहाँ था। काटू तब बच्चा था। कुछ बड़ा हो कर काटू जब लायक बना, तब देखिए न, मुझे मुहल्ले में कितनी इज्जत मिलने लगी! मुहल्ले के लड़के चाचा-ताऊ बुलाते हैं, पर्व-त्यौहारों पर पैर छूते हैं। दुकानदार दूसरे खरीदारों को हटा कर मुझे सौदा देते हैं।'

'जाहिर है।'

'केवल इतना ही नहीं; मुहल्ले में नजरूल या

शीर्षेंदु मुखोपाध्याय
साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत बांग्ला के विख्यात साहित्यकार।

रवींद्र जयंती हो, तो मैं तय सभापति हूँ। मुहल्ले का घोष डाक्टर विजिट नहीं लेता। मुहल्ले के भद्र मानुष दिखते ही नमस्कार करते हैं। आफिस कुलिग भी आजकल इज्जत करने लगे हैं।'

'वाह! वाह! यह तो क्रांति हो गई!'

'हाँ, एक प्रकार की क्रांति कह सकते हैं। किसी महापुरुष ने कहा है, बंदूक की नली से ही क्रांति आती है। बड़े मार्के की बात है साहब! लाख टके की बात है।'

'आं... काटू मस्तान के पास बंदूक होगा ही?'

'नहीं महाशय, बंदूक-वंदूक उसके पास नहीं है, पहले था। दो-चार लाश जब तक गिर न जाए तब तक इस लाइन में इज्जत नहीं मिलती। समझे?'

'हाँ, सो तो है!'

'आपने हथौड़ा हारू का नाम सुना होगा? सत्ताईस खून कर चुका था साहब। सारे के सारे खून हथौड़े से किया था। बंदूक या ट्रिगर किसी चीज का प्रयोग नहीं करता था। हथौड़ा ही था हारू का पैशन और फैशन। कलकत्ते का पूर्वांचल इलाका उसके डर से कांपता था। अफसोस की बात क्या है, जानते हैं? इन सारे गुंडे-बदमाशों का एक एक्सपायरी डेट होता है, जिसे ये लोग समझ नहीं पाते। बढ़ते-बढ़ते एक समय कुछ ज्यादा ही बढ़ जाता है। और तभी... जो होता है।'

'अचानक काटू की बात करते-करते हारू का प्रसंग क्यों?'

'क्यों नहीं आएगा? विष्णु बाबू ने एक दिन काटू को बुलाया।'

'विष्णु बाबू कौन हैं?'

'आ हा! मान लीजिए एक दबंग किस्म के आदमी हैं।'

'चलिए मान लिया। '

'विष्णु बाबू ने काटू को बुला कर कहा, अरे भाई, हथौड़ा कुछ अधिक गर्म हो गया है, जरा ठंडा होने के लिए भेज दो बाबा।'

'तो काटू ने...'

'जी हाँ। हथौड़ा हारू ही काटू की पहली बोहनी थी। हथौड़ा हारू के हत्यारे के रूप में रातोंरात काटू की मर्यादा कहाँ से कहाँ पहुँच गई, बताइए! अंडरग्राउंड में रातोंरात काटू का नाम विख्यात हो गया। सबने एक स्वर से कहा, हाँ, बाघ का बच्चा है!'

'सही बात है।'

'नहीं-नहीं, इसका मतलब यह मत सोच लीजिएगा कि मैं अपने को बाघ समझता हूँ।'

'आप विनम्र इन्सान हैं, मैं समझ पा रहा हूँ, मगर ऐसे बहुत इन्सान हैं जो अपने भीतर सोए हुए बाघ के अस्तित्व से अनजान होते हैं।'

'नहीं महाशय, मेरे भीतर जो सोया है वह एक पिद्दी-सा चूहा है। इसका भान मुझे हमेशा होता है।'

'तो फिर हथौड़ा हारू से ही काटू की जययात्रा शुरू हुई?'

'जी। इसके बाद पत्ती परान।'

'यह कौन है?'

'जोका इलाके का डॉन था। जुआ का बहुत बड़ा अड्डा चलाता था। इसलिए उसका नामकरण पत्ती परान हो गया था। वह जोका को स्वाधीन राज्य घोषित करने के ताल में था। विष्णु बाबू का नजराना भी देना बंद कर दिया था। तो एक बार फिर विष्णु बाबू ने काटू को बुला कर कहा, एकमात्र तुझ पर ही मेरा भरोसा है। जा, मेरा पापमोचन कर के आ। पाप का मतलब समझ ही गए होंगे? पत्ती परान का संक्षिप्त रूप।'

'समझ गया। मतलब पत्ती परान भी खल्लास?'

'कहा न आपसे, इस लाइन में कब किसका एक्सपायरी डेट आ जाए कोई नहीं बता सकता। कब कौन मनबढ़ू होकर लक्ष्मण-रेखा लांघ जाए, इसका

कोई ठिकाना नहीं। पर पत्ती परान को कूटने के बाद काटू का नाम जितना फैला इसकी कल्पना नहीं कर सकते आप। चारों तरफ वाहवाही होने लगी।'

'पुलिस ने पकड़ी नहीं?'

'पकड़ेगी क्यों नहीं? कानूनन धरपकड़ होनी ही थी। कानून-अदालत-पुलिस की जरूरत ही क्यों है? पत्ती परान के मामले में जेल भी हुआ था काटू को। मगर प्रमाणित न हो सकने के कारण छह महीने में छूट गया था। गहरे तौर पर देखें तो यह एक तरह की समाज सेवा ही है न। समाज से कूड़ा साफ करना किसी अपराध की सीमा में नहीं पड़ता क्या? आप क्या कहते हैं?'

'एक तरह से देखें तो यह सच है।'

'लोगों ने कुछ सड़ी-गली धारणाएँ बना रखी हैं, जिस वजह से बहुत सी घटनाओं का सटीक मूल्यांकन नहीं हो पाता। युद्ध में लोगों की हत्या करना अपराध नहीं है तो फिर सामाजिक कल्याण के लिए हत्या करना अपराध कैसे हो गया? एक योद्धा कहला सकता है तो दूसरे को खूनी कहना क्या अन्याय नहीं है? आप ही कहिए?'

'आपकी बातें उड़ा देने लायक नहीं है।'

'आप विवेकशील इन्सान हैं।'

'तो... काटू की विक्टिम्ज़ की संख्या कहाँ तक पहुँची?'

'अधिक नहीं है महाराज, अधिक नहीं है। आजकल ये सब काम उसने छोड़ दिया है। बंदूक-पिस्तौल छूता नहीं अब।'

'अच्छा?'

'पिस्तौल अब पोल्टू के पास रहता है।'

'पोल्टू कौन है?'

'काटू का दाहिना हाथ कह सकते हैं, नई प्रतिभा। आजकल ज्यादातर ऑपरेशन को अंजाम पोल्टू ही देता है। काटू ने अपना मन फिलहाल पब्लिक रिलेशन में लगाया है। वीआईपी लोगों का बुलावा लगा ही रहता है।'

'सो तो है।'

'पर एक मुश्किल आ खड़ी हुई है साहब! भगवान तो सबको निरंकुश सुख देता नहीं, एक-आध कांटा भी देता है।'

'कांटा! इसमें कांटा कहाँ से आ गया?'

'है महाराज, है। हमारा सुखमय जीवन निष्कंटक नहीं है। और वह कांटा है मेरी बेटी पुँटू।'

'अच्छा? कैसा कांटा?'

'जब वह छोटी थी तब काटू भैया ही उसका हीरो हुआ करता था। अब 19 साल की उम्र में वह अपने भैया का यह काम, इतना यश, इतनी प्रतिष्ठा बिलकुल सहन नहीं कर पा रही है। उसने साफ तौर पर कह दिया है कि भैया ने अगर अपना यह कारोबार बंद नहीं किया तो इस परिवार में नहीं रहेगी। एक बार उसने आत्महत्या करने के लिए नींद की दवा खा ली थी। तुरंत पकड़ में आने के कारण पेट में पंप करके जहर को निकाल कर बचाया गया था।'

'वह मान क्यों नहीं रही है?'

'आजकल दिमागी धुलाई करने वाले लोगों की कमी है क्या? न जाने किसने ऐसी कुबुद्धि डाल दी है उसके दिमाग में, ऐसी मुकर गई है कि मनाना मुश्किल है। कहना नहीं चाहता, मगर काटू भी बहुत चिढ़ा हुआ है। वह अपनी छोटी बहन को बहुत प्यार करता है, बहन का उतरा चेहरा देख कर परेशान हो जाता है। किंतु पुँटू ने साफ कह दिया है कि भैया को यह पाप का रास्ता छोड़ना पड़ेगा। कैसी मुश्किल है, कहिए तो?'

'हाँ, ठीक कहते हैं।'

'इतना बड़ा कारोबार, इतनी बड़ी जिम्मेदारी, इतनी ख्याति किसी के कहने पर छोड़ दे? हमें कौन पूछता था! जरूरी काम से किसी के पास जाता, तो वह भद्रतावश बैठने को भी नहीं कहता था। आजकल काटू के प्रताप से ही हमारी पहचान है, सम्मान है, लोग थोड़ा-बहुत डरते भी हैं। यह क्या कम बड़ी बात है? बिटिया एक ही जिद पर अड़ी है। वह किसी सूरत में यह असामाजिक काम सहन करने को तैयार नहीं है। अच्छा आप ही बताइए, काटू को समाज विरोधी कहना उचित है? वह तो अपने अनुसार समाज का भला ही कर रहा है। बदमाशों

को सबक सिखा रहा है, दगाबाजों को घर-बाहर कर रहा है, समाज की गंदगी साफ कर रहा है। गांधी जी हैं तो नेता जी भी हैं न?'

'आपने बिलकुल सही कहा है।'

'मगर बिटिया किसी तर्क को मान ही नहीं रही है।'

'तब तो आप काफी मुश्किल में पड़ गए हैं!'

'मुश्किल भी कोई ऐसी-वैसी! महामुश्किल में पड़ गया हूँ। इस मुश्किल से निजात पाने के लिए काटू ने बहन की शादी कर देने की सोची, ताकि मुश्किल का समाधान हो जाए। कहना नहीं चाहिए, मेरी बेटी देखने में सुंदर है। अच्छे-अच्छे लड़कों की खबर आने लगी। पर संकट यहाँ भी आ गया।'

'अब कैसा संकट साहब?'

'पुँटू को भैया की चालाकी का पता चल गया। उसने साफ कह दिया कि वह शादी करने को राजी नहीं है। वह किसी होम या होटल में रह लेगी। कैसी मुश्किल!'

'सही बात है।'

'मुश्किल इतनी बढ़ गई कि काटू भी द्वंद्व में पड़ गया। एक दिन उसने कह दिया कि पुँटू ठीक कह रही है। मैं भी सोच रहा हूँ, यह लाइन छोड़ दूँ। इतना सुन कर हम पति-पत्नी के सिर पर वज्राघात हुआ। सर्वनाश! क्या कह रहा है? काटू लाइन छोड़ दे तो हम फिर उसी अंधेरे में गुम हो जाएंगे, जिस अंधेरे से निकल आए थे। पत्नी ने काटू के सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया, मेरे लाल, ऐसी अशुभ बातें क्यों करता है? पुँटू निर्बोध है, बच्चों की तरह बात करती है, भैया के प्रेम में जिदिया गई है। उसकी बातों पर ध्यान दोगे तो कैसे चलेगा बेटा?'

'इससे कुछ काम बना?'

'कुछ-कुछ हुआ। काटू गंभीर चेहरा लेकर उठ गया था। समझ गया था मैं कि काटू ने माँ का प्रस्ताव अच्छे मन से स्वीकार नहीं किया है। ऐसे ही धर्म संकट में हम फंसे हुए थे कि एक दिन पुँटू की एक सहेली नीलांजना ने आकर बताया कि पुँटू को वो हो गया है।'

'वो मतलब?'

'वही, आजकल जिसे रिलेशनशिप या न जाने क्या-क्या कहते हैं। हमारे जमाने में जिसे प्रेम, प्यार, प्रीति कहते थे। आजकल प्रेम नहीं कहा जाता। नीलांजना ने कहा कि छोकरे ने पेंटिंग-वेंटिंग करके कुछ नाम कमाया है। मेरी पुँटू को भी पेंटिंग बनाने का खूब शौक है। समय मिलते ही स्केच बनाती है या पेंटिंग। किसी एक्जीविशन में दोनों की मुलाकात हुई थी। अब शायद संबंध में प्रगाढ़ता आ गई है। लगता है उसी छोकरे ने उसके दिमाग में यह कीड़ा घुसाया है। हमलोगों ने सोचा कि काटू से कह कर उस छोकरे को थोड़ा धमकाया जाए। चित्रकार है न, गुंडा-बदमाश देखते ही दुबक जाएगा।'

'धमकाया था उसे?'

'नहीं महाशय, काटू तैयार ही नहीं हुआ। कहा, पुँटू ने अगर किसी से प्यार किया है तो उसे धमकाना अधर्म होगा।'

'तो अब मामला कहाँ पहुँचा है?'

'वही जानने आपके पास आया हूँ।'

'समझा, तो मुझे क्या करना होगा?'

'आप भी कम नासमझ नहीं हैं। आप तो धनुष भंग करने का प्रण लेकर बैठे हुए हैं कि जब तक काटू लाइन नहीं छोड़े, तब तक पुँटू से शादी नहीं करेंगे! मैं यही कहने आया हूँ कि काटू लाइन छोड़ने को तैयार है, लेकिन आपने क्या यह सही शर्त रखी? बुढ़ापे में अभी थोड़ा सुख भोगना शुरू ही किया था..!'

'सही है। पर एक्सपायरी डेट वाली बात तो आप भी जानते हैं!'

'हाँ, सो तो है!'

रेलवे क्वार्टर नं. 185, 4 नं. रास्ता, फोरमैन कॉलोनी, पो-काँचरापाड़ा, जिला- (उत्तर) 24 परगना, पिन-743145 (प.बंगाल) मो.9748891717

Kusumanjali
Foundation

अंसल ए.पी.आई. द्वारा समर्थित एवं लेखिका डॉ. (श्रीमती) कुसुम अंसल द्वारा स्थापित कुसुमांजलि फाउंडेशन, हिन्दी और असमी लेखकों से वर्ष 2018 में दिये जाने वाले सातवें "कुसुमांजलि साहित्य सम्मान" हेतु नामांकन आमंत्रित करती है। साहित्यिक संस्थान, संगठन, विश्वविद्यालय, अन्य विद्वान तथा लेखक स्वयं भी अपना नाम प्रस्तावित कर सकते है। सन् 2013–2017 (दोनों वर्षों को सम्मिलित करके) के दौरान प्रकाशित साहित्यिक कृतियां ही पुरस्कार के लिये विचारार्थ होंगी। प्रत्येक पुरस्कार 2,50,000 का है जिसके साथ स्मृति चिन्ह एवं प्रशस्ति पत्र भेंट किया जायेगा।

पूर्ण विवरण एवं आवेदन पत्र हमारी वेबसाइट **www.kusumanjali.org** पर उपलब्ध है।

प्रस्ताव फार्म को पूर्ण रूप से भर कर और अपनी कृति संलग्न कर निम्न पते पर भेजें:
सदस्य सचिव, शासी मंडल, कुसुमांजलि फाउंडेशन
115, अंसल भवन, 16 कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली–110001
ई–मेल: **www.kusumanjalifoundation@gmail.com**
दूरभाष नम्बर: **09891016667/09711760128**

कुसुमांजलि सम्मान के लिए नामांकन प्राप्ति की अंतिम तिथि 31 मार्च 2018 है।

कविताएँ

जसिंता केरकेट्टा

कवि, स्वतंत्र पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्त्ता।
कविता संग्रह 'अंगोर' प्रकाशित।
गांवों में आदिवासी लड़कियों के बीच सामाजिक कार्य।

इस समय की कला

माँ ने नहीं देखी
कोई विशाल चित्रकारी कभी
पर उन्हें देख कर
किसी विशाल चित्र में
चौंक जाती हूँ मैं
कभी किसी कलाकृति में
टुकड़ों में बिखरी होती हैं वह
सारे टुकड़े जोड़ कर भी
नहीं समझ पाती मैं जिसका अर्थ

गांव की स्त्रियाँ जीवंत रहती हैं हमेशा
जीवन के कैनवास में
सच्चे रंगों को भरने की
कोशिश करतीं
मगर हजारों आंखें देखती हैं
उन्हें किसी खूबसूरत चित्र में
चकित होती हैं, सराहती हैं
मगर उन स्त्रियों को नहीं
जो जीती हैं तस्वीर के बाहर

बोलती हुई स्त्रियाँ चित्र से
निकल आती हैं बाहर
मगर चुप रहने वाली
स्त्रियों की चित्रकारी ही
बताई जाती है बेहतरीन
होती है कीमत
उनकी चुप्पी की
चित्र के भीतर और बाहर
दोनों तरफ

घास की कटाई करतीं मशीनें
सुबह काट जाती हैं चुपचाप
खेतों में बैठ गई स्त्रियों की आवाज
दिन भर अपने खेतों को बचाने के लिए
वे स्त्रियाँ कर रही थीं संघर्ष
दीवार पर
उस आवाज के खून के छींटों को
उनकी चीख और अस्त-व्यस्त देह को
चुनते रहते हैं बाकी लोग
किसी कलाकृति के भीतर

माँ, गांव, गांव की स्त्रियाँ
नदी, पहाड़, जंगल
सबकुछ एक दिन टंग जाएंगे
किसी बड़ी दीवार के
बड़े से कैनवास पर
खरीद ले जाएगा कोई करोड़ों में
कोई जंगल कोई पहाड़
कोई स्त्री कोई माँ
वे बेचे जाते रहेंगे
यह समय समझाता है
कुछ भी बेच लेना ही
आज की सबसे बड़ी कला है।

नई कोंपलों का वक्त

इन दिनों अचानक
बढ़ गया है उनका प्रेम
जानवरों के लिए
चिंतित हैं वे सबसे ज्यादा
जानवरों की खाल बचा लेने को
इसलिए उधेड़ देना चाहते हैं
वक्त की सख्त खाल
जो बजती है उनके खिलाफ
वे करना चाहते हैं
गीदड़, सियार और
जंगली सूअर के हवाले सारा जंगल

तब कट कर धरती पर
गिरते वक्त के हाथ
बजाने लगते हैं
धरती को मांदर की तरह
और गूंजने लगता है
आसमान नगाड़े-सा
यह देख कर करते हैं वे
किसी उत्सव का आयोजन
बताते हुए कि
यह उत्सवों का देश है
जहाँ घोषित करता है मंच
प्रतिरोध एक नाटक है
और शोषण एक वहम

जिनकी खत्म हो चुकी है लड़ाई
वे मना रहे हैं उत्सव
बात करते हुए मांदर और आदिम गीत की
खड़े हैं उस भीड़ में वे भी
जिन्होंने खो दी है ताकत
किसी के पक्ष में खड़ा होने की
इसलिए बदल रहा है उनका चेहरा
धीरे से किसी उत्सवी मुखौटे में

और मांदर बजाते हाथ
चले आ रहे हैं पास
उनके लिए एक उत्सव है लड़ाई
वे लड़ते हुए नाचते हैं
और नाचते हुए लड़ते हैं
हरे पेड़ों से सूखी पत्तियों के
अलग होने का मौसम आ गया है
जंगल बुहारने का समय है
सूखी पत्तियों पर लगा कर आग
करना होगा जंगल साफ
यह नई कोंपलों के आने का वक्त है।

कौन करेगा इसकी पड़ताल

कौन करेगा इसकी पड़ताल
कि किसने बना लिया है
धरती को किसी गुमनाम जगह पर बंदी
और रोज करता है उस पर क्रूर परीक्षण

कौन करेगा इसकी पड़ताल
कि शहर की दीवारों के नीचे
क्यों दबा है कब्र किसी तालाब का
क्यों दबा है वहाँ कोई खलिहान
जहाँ पसरा है शहर का कब्रिस्तान

दब गई है क्यों झींगुरों की आवाज
पक्के मकानों की नींव में
सड़कों ने छीन लिए हैं क्यों
नदियों की शक्ल उनकी देह से

कौन करेगा इसकी पड़ताल
किसने किया है बारिश को विस्थापित
कौन खदेड़ना चाहता है इन्सानों को
जंगलों से बाहर जानवरों की तरह।

किस चीज से वह करता है प्यार

कोई पेड़ गिरता है कट कर
थरथराती है धरती
कलेजे पर रख लेती है पत्थर
बंधता है कोई बांध

पहाड़ कांपता है
निशक्त हो चुकी नदी का
उठाता है सारा भार
और पूछता है आदमी से
किस चीज से वह करता है प्यार?

आदमी बांधता है नदी, गिराता है पेड़
काटता है आदमी
बोता है जहर
उखाड़ता है सांसें
बिगाड़ता है चेहरा मौसम का
फिर अपने खुर तले
करता है पूरी धरती की दौंरी
यही पूछता है बार-बार
आदमी किस चीज से करता है प्यार?

उसकी नस्ल को नहीं पता
कि रातों रात निकल आया है
कोई सींग उसके सिर पर
उसका चेहरा बदल रहा है
किसी खूंखार जानवर की शक्ल में
दांत अब नहीं रह गए हैं उसके मुंह में
निकल आए हैं बाहर
धंसे हुए हैं कल रात से
किसी दूसरी नस्ल की गर्दन पर
सिर झुका है सदियों से
विलुप्त होती प्रजातियों की लाश पर
जानवर पहचानते हैं उन्हें बेहतर
कि आदमखोर हो रहा है वह पूरी तरह

यह जानते हुए भी
कि एक दिन हो जाएगा सबकुछ विदा
प्रकृति जतन से रखती है ताउम्र
थोड़ी सी जमीन, थोड़ी सी पहचान
थोड़ा अपने जिंदा रहने का हक
थोड़ा सा जंगल, थोड़ा पहाड़, थोड़ी सी नदी

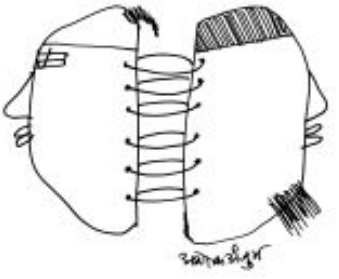

मुट्ठी में बांध लेती है अपनी भाषा
अपने सीने के किसी कोने में
छिपा लेती है हर उस शख्स को
जिससे किसी मोड़ पर
मुलाकात रही थी अच्छी

गोद में समेट लेती है
दरवाजे पर खड़े
टुकुड़-टुकुड़ ताकते पालतू कुत्ते को
समेट लेती है
बिस्तर पर सोती हुई बिल्ली को
कोई चिड़िया पेड़ से उतार लेती है
कुछ कबूतर भी
रख लेती है सिर पर
घर के पिछवाड़े खुदा पुरखा तालाब
बेतरा लेती है पीठ पर धरती
और एक दिन बहुत प्यार करते हुए
उन सबको बचाने के लिए
क्रूर समय से लड़ते हुए
लहूलुहान हो जाती है

लड़ती हुई, कुछ बचाती हुई
पूछती है हर बार
कुछ बचा सकने में असमर्थ आदमी
आखिर किस चीज से करता है प्यार?

(दौंरी : बैलों का धान रौंदना ताकि पुवाल से धान अलग हो जाए।)

सी/ओ - मनोज प्रवीण लकड़ा, म्युनिसिपल स्कूल की बगल में, ओल्ड एच.बी रोड, खोरहटोली, कोकर, रांची, झारखंड- 834001 मो.7250960618

जहीर कुरेशी

सुप्रसिद्ध गजलकार। नौ गजल संग्रह प्रकाशित।
अद्यतन संग्रह 'रास्तों से रास्ते निकले'।

एक

चुप लगाए हैं वो असमंजस बढ़ाने के लिए
सोचना पड़ता है उनको मुस्कुराने के लिए!
उसके मन में झांक कर देखा तो अंधियारा मिला
'शो' में उतरी है जो खुल कर जगमगाने के लिए।
छोड़ कर माँ-बाप, परिजन, दोस्त और अपना वतन
उड़ गए पंछी विदेशों में कमाने के लिए।
आ गया जिसको दबंगों की भी इज्जत लूटना
उसने कोशिश ही न की अस्मत बचाने के लिए!
इसलिए संगीत बनता जा रहा है शोर-गुल
शोर में ही लोग हैं अभिशप्त गाने के लिए।
पहला रिश्ता ही निभाने में जो असफल हो गया
मिल गया उसको नया रिश्ता निभाने के लिए।
लूट लेने का चलन ही चल पड़ा है आजकल
चाबियाँ बनती नहीं हैं अब 'खजाने' के लिए!

दो

नींद नहीं आई तो लंबी रात लगी
बिस्तर पर ही यादों की बारात लगी!
सच्चाई और नैतिकता के पाठ लिए
शहरी बच्चों को अम्माँ 'देहात' लगी।
चिकने घड़े पर उस दिन ही पानी ठहरा
देवर जू को जब भाभी की बात 'लगी'!
ताजीराते - हिंद से कातिल छूट गया
जीत गया वो, लेकिन, उसको मात लगी।
बूढ़ी काकी को छप्पर के छेद दिखे
जेठ खत्म होते ही ज्यों बरसात लगी!
उसने भी तब प्रश्नों पर प्रतिप्रश्न जड़े,
बातों में जब उसको तहकीकात लगी।
सागर से मिल कर खारा होने के बाद-
मीठी नदिया को दिन में भी रात लगी!

108, त्रिलोचन टॉवर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल-462001 (म.प्र.) मो. 09425790565

बुद्धिनाथ मिश्र

नवगीत के प्रमुख स्तंभ।

वक्त मिले तो

वक्त मिले तो खूब लगाना
सुरमा आंखों में
पहले नाड़ा ठीक करो
खुलते पाजामे का

कितना था उत्साह
कि तुम जब रथ पर आओगे
सूरज जैसे अग-जग को
रोशन कर जाओगे
जैसे-जैसे कलई खुलती
जाती है फन की
घटता जाता है लोगों में
शौक डरामे का

उन सबने तो मिल कर बस
जागीरें ही बांटीं
तुमने पढ़ कर मंत्र
जेब से गर्दन तक काटी
वादा था, काला धन
जन के नाम जमा होगा
खोल दिया घर-घर में
तुमने खाता नामे का

सुबह-सुबह ही पांव
लगे उठने बहके-बहके
राजधर्म के घर में
वेश्या राजनीति चहके
सोचा तुमने, क्या होंगे
वे सांचे सपनीले
लोकतंत्र खुद शक्ल ले रहा
जब हंगामे का।

मो.9412992244

मनोज कुमार झा

युवा कवि। 'तथपि जीवन' कविता संग्रह प्रकाशित।

लालसा-हरण

घर बनाने की शक्ति
घर सजाने की लालसा
चुप रहने का सलीका
बोलने का हुनर
अपमान सहने का धैर्य
सब मैंने प्रेम के लिए बचा रखा था
कब बाजार चुरा के ले गया
पता भी नहीं चला।

शायद विफल

जो सबसे निकट हैं
वे भी कोशिशें नहीं देखेंगे
देखेंगे फल
जैसे सेमल के पेड़ पर आए
सुग्गे देखते हैं

नहीं देख पाएंगे
कि साल भर सेमल के मन में
सुस्वादु फल बसता है
जो अंत में बचता है
कपास बन कर।

मो.9973410548

तरसेम

युवा कवि एवं अनुवादक।
पंजाबी एवं हिंदी में लेखन।

कितना अकेला

कितना अकेला
वह पंछी
जो अभी-अभी
शाख से उड़ा है
सोचता हूँ
वह शाख को तन्हाई दे कर या
या शाख की तन्हाई ले कर या

कितनी अकेली है
वह चिड़िया
जो रोजाना मेरे कमरे में आती
इधर-उधर बैठती
उड़ जाती
क्यों नहीं आती अब वह चिड़िया

सब कुछ है
छत, दीवारें, शीशा, तन्हाई

हाँ, शीशे से याद आया
कितनी देर तक
शीशे के सामने बैठी रहती
खुद ही के बिखेरे तिनकों का प्रतिबिंब
दर्पण में निहारती
शीशे से पार जाना चाहती
अब दर्पण नहीं
कैसे आई वह चिड़िया

कितना अकेला है
वह कैदी
जो अपने जिस्म को
रात की चादर से ढक तो लेता
पर सोते हुए भी जागता
ऊंची दीवारों की खामोशी से डरता
दिन से
ज्यादा तन्हा
ज्यादा अकेला

कितनी अकेली है
वह किश्ती
जो भंवर में फँस कर
पानी के थपेड़े खाती
किनारों को ढूंढती...

अकेले-अकेले ही तो हैं
सूर्य, चाँद, धरती, कविता
तुम और मैं

अकेले होना
समाधि में उतरना है
खुद को ढूँढना
एकल से कैसा भय
सुनो
अकेला होना फख्र भी है!

बी-IV/814, दश्मेश गली, समीप गांधी आर्य हाई स्कूल, बरनाला-148101, पंजाब
मो.9815976485

जयप्रकाश मानस

लेखन में निरंतर सक्रिय।
अद्यतन कविता संग्रह 'होना ही चाहिए आँगन तथा अबोले के विरुद्ध'।

अकेला नहीं था मैं

धरती से आकाश, आकाश से धरती
जड़ें थीं साथ-साथ
साथ थे हमशक्ल जड़ों के आसपास छांव
धूप के भीतर तक पसरी
धूप जैसे छांव के बाहर तक निखरी

अकेली नहीं थी मेरी प्यास

घर से पड़ोस, पड़ोस से गलियों तक
पानी था साथ-साथ
पानी के आसपास हमशक्ल बेटियाँ
मटकियाँ जैसे साथ थीं पानी के आसपास
मटकियाँ जैसे पोखरी को भीतर तक थहतीं
पोखरी जैसे मटकियों के बाहर तक बहती

अकेली नहीं थी मेरी आस

भीतर से बाहर, बाहर से भीतर
कोई झमेला नहीं था
सच अकेला नहीं था
मैं पानी और प्यास के बीच।

जगह-जगह

जगह-जगह बहती है नदी
जगह-जगह घाट, जगह-जगह नाव
जगह-जगह कुम्हार, चाक, घड़े
माटी के करीब बेटे बड़े

जगह-जगह बनपाखी, जगह-जगह पहाड़
जगह-जगह पेड़, जगह-जगह छांव
जगह-जगह होने चाहिए लोग
जो चलें बिन डरे
अकेला एक कवि करे तो क्या करे

जगह-जगह लड़े
जगह-जगह मरे?

आदतन

चींटियाँ
प्रधानमंत्री को करेंगी नहीं
भोर से दंडवत प्रणाम
वे चुपचाप चली जाएंगीं
खेत की ओर आदतन
धाने के बचे-खुचे दाने बटोरने
नए साल की पहली सुबह

गाएँ
जानने के बाद भी
पार्टी दफ्तरों के बाजू बहुत है चारा
रात के चौथे पहर ही निकल पड़ेंगीं
आदतन
दूर मेड़ पर अकारज उगी घास तलाशने
नए साल की पहली सुबह

तितलियाँ
अपनी बेकली की परवाह किए बगैर
खादीधारी कार्यकर्ता के सम्मोहन को नकार
यूँ ही लपक कर जा बिलमेंगी
आदतन
पड़ोस वाले आंगन में फूले गेंदे पर।

एफ-3, छ.ग. माध्यमिक शिक्षा मंडल, आवासीय परिसर, पेंशनबाड़ा, रायपुर, छत्तीसगढ़-492001
मो. 9424182664

अंबिका दत्त

हिंदी एवं राजस्थानी में लेखन।
अद्यतन कविता संग्रह 'कुछ भी स्थगित नहीं'।

दिन कोई अकेला नहीं होता

समुद्र में लहर अकाश में बादल
या जमीन का कोई टुकड़ा
अकेला नहीं होता
आज का दिन भी अकेला नहीं है
यह एक दरख्त है
जिसकी शाखाएँ
ऊपर दूर तक चली गई हैं आसमान में
जड़ें गहरे अंधेरे में
जमीन के अंदर कसमसाती हैं
सुबह के उजाले में
पेड़ की डाल पर लटकी लाश
उसके चेहरे पर ठहरी है
मृत्यु से पहले की पीड़ा की छाया
यह दिन आग का पेड़ है
कई पूर्णिमाओं से लदा हुआ
एक वृक्ष एक साथ आग, अंधकार
रोशनी और चंद्रमा का है
आज का दिन फांसी, पुण्य स्मरण
और पूर्णिमा का है।

घर के बाहर खड़े होंगे बच्चे

झांकती होंगी झरोखों से स्त्रियाँ
बैठे होंगे बूढ़े- गोखड़ों-हथाइयों पर
उस समय गुजरेगा गली से जुलूस
आहत क्लांत योद्धाओं का
वे अभी हारे नहीं हैं
संसार की सभी माताओं ने निचोड़ा है
संघर्ष के समय को उनके लिए
बची है अभी उन्माद से भरी मादक गंध कोई
टहनियों में फूटतीं कोपलों की स्मृति सरीखी पुनर्नवा
उनकी लड़खड़ाती टांगों की पदचाप् में छिपा है
आशा के अंतिम स्वर जैसा जय घोष
सिर्फ तुम उसे सुन लेना।

नींद की नदी में

वे रात को सोए या जागे यह प्रश्न व्यर्थ है
सुबह ताजा दम मिलेंगे
फिर भी देखना
फिर से गांव के बाहर क्षेत्रपालों के थानक पर
जलते पेड़ो की ज्वालाओं के ऊपर
तैर रही होगी धूमायित गंध
पांडुलिपियों से भरे बड़े-बड़े जहाजों के
डूब जाने का अफसोस मत करना
कई जन्मों से रच रहा हूँ मैं
नींद की नदी में
छोटी नावों सरीखे स्वप्न।

2 बी 11, न्यू कोलोनी, गुमानपुरा, कोटा-324007 राजस्थान मो.9799110599

कृष्ण समिद्ध

फिल्म निर्देशन और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

तुम्हें पता है

तुम्हें पता है
तुम्हारी कविता के बिना
ये दुनिया कैसी हो जाती

एक साँस
कम हो जाती हवा की

एक किरण
कम हो जाती सूरज की

एक फूल
थोड़ा कम लगता फूल

बिना इसके
दुनिया कम रह जाती दुनिया

मेरी आत्मा की चुप्पी
है तेरी कविता

मेरी दुनिया को
तेरी कविता ने ही उठा रखा है।

शायद

मैं माँ को उतना प्यार नहीं कर पाता
जितना वह करती है मुझसे
मुझको ऐसा लगता रहता
यह लगना
सबसे बड़े दुखों में है मेरे

क्यों हम प्यार नहीं कर पाते
जब जरूरी होता है ऐसा करना

शायद मेरे रक्त के डीएनए- में
सभ्यता ने बैठा रखा है एक शिकारी

शिकारी कब तक जिएगा
मरेगा एक दिन

तब शायद कर सकूँ प्यार
जब जरूरी हो
कर सकूँ प्यार
दूसरों से भी अपनों जैसा।

मछली बाजार

टब के
हाथ भर पानी में
मुंह निकाल मछलियाँ
कह रही थीं कहानियाँ नदी की

और कोई
जश्न में मुंह में अंगुली ठूंस
सितुही से
खरोंच रहा था उनके पंख

मरते-मरते क्या कहा होगा
मछलियों ने
नदी नदी नदी...!

द्वारा प्रदीप कुमार, एडवोकेट, घघा घाट रोड, मलेरिया आफिस, महेन्द्रु, पटना-800006, बिहार
मो.9934687527

भक्ति साहित्य की अर्थवत्ता

प्रस्तुति : **पूजा गुप्ता**

धर्म और भक्ति का क्या संबंध है, यह आज का एक बड़ा प्रश्न है। धर्म मनुष्य के जीवन का अंग बनकर अच्छा कर्म बन सकता है और अंधविश्वास भी। धर्म में कर्मकांड शामिल हो जाता है, भक्ति में नहीं। भक्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता है जिसे अर्जित करना पड़ता है। भक्ति और ज्ञान में गहरा संबंध है, जबकि भक्ति और अंधविश्वास में कोई संबंध नहीं है। भक्ति और बाह्याडंबर में भी कोई संबंध नहीं है। ऐसे मुद्दों पर चर्चा आज जरूरी हो गई है।

आधुनिक युग में गांधी का मानना था कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। पहले धर्म के कड़े नियम हुआ करते थे, जिनके नीचे मानव मूल्य दब जाते थे। वर्तमान समय में धर्म कट्टरता के रास्ते से और कई बार केवल मनोरंजन के रूप में परोसा जाता है। फिल्मी धुन पर धार्मिक गानों की मस्ती और राजनीतिक शोर में उच्च मूल्य स्वाहा हो जाते हैं। इस हश्र को भी समझना होगा।

आमतौर पर भक्तिकाल को सगुण और निर्गुण की धाराओं में विभाजित करके देखा जाता रहा है। यह भेद है या नहीं, यह भी अब नए संदर्भ में समझना जरूरी है। शुरुआती समय में सूरदास ने निर्गुण पर लिखा था, बल्कि उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान देते हैं। निर्गुण काव्य धारा को पुनः ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी धाराओं में बांटा गया। कबीर ने स्वयं को स्त्री रूप देकर खूब सारी प्रेम विषयक कविताएँ लिखीं। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में ज्ञानपरक बातें भी रखीं। यह भी देखा जाता है कि ज्ञान की कठिन साधना कर मनुष्य भक्त बनता है, लेकिन प्रेम वह मार्ग है, जिस पर चल कर भक्त अपना लक्ष्य सहज ढंग से पा जाता है। क्या दोनों में लक्ष्यगत भिन्नता है?

भक्तिकाल ही वह युग है जिसमें कबीर, गुरु और गोविंद का अंतर मिटाते हैं। वे अपने ईश्वर को पिया कहते हैं। तुलसी खुद को राम का सैनिक नहीं सेवक मानते हैं। सूर कृष्ण को बालक, सखा के रूप में देखते हैं। मीरा कृष्ण को अपना प्रेमी मानती हैं। रैदास चमड़े

पूजा गुप्ता
युवा लेखिका।
कलकत्ता विश्वविद्यालय में शोध छात्रा।

वाली अपनी कठौती में ही गंगा की पवित्रता का अनुभव करते हैं। भक्त कवि महाग्रंथों में जकड़े ईश्वरीय अवतारों को मानवीय संबंधों से जोड़ कर लोकपरक बनाते हैं। कबीर, तुलसी, रैदास, धन्ना, पीपा आदि सभी भक्त कवि श्रम की महत्ता समझते हुए वैराग्य का विरोध करते हैं। वे लोकोपयोगी धर्म की प्रस्तावना करते हैं। भक्त और संत को अलग करना भी अब प्रश्न के घेरे में है।

भक्तिकाल को मध्यकाल के फ्रेम से निकाल कर नए संदर्भों और बिंदुओं पर देखना जरूरी है। जातिवाद का विरोध और मानव की सर्वोपरिता यदि आधुनिकता है, तो इसका उद्घोष सभी भक्त कवियों ने किया था, अर्थात- सामंती रूढ़ियों का विरोध हर कवि ने किया था। इसलिए सवाल उठता है, भक्त कवियों को प्राचीन माना जाए या आधुनिक?

प्रस्तुत परिचर्चा में धर्म और भक्ति साहित्य को नए संदर्भ में देखने की कोशिशें हैं। इसमें वरिष्ठ, साथ ही नए उभरे आलोचकों का मत भक्ति साहित्य को नए कैनवास पर व्याख्यायित करता है। इक्कीसवीं सदी में जो बड़े परिवर्तन घटित हो रहे हैं और जैसा एक वैचारिक कुहासा है, भक्ति साहित्य की वर्तमान अर्थवत्ता का उद्घाटन हमारे विवेक में बहुत कुछ जोड़ सकता है।

gupta.puja788@gmail.com

प्रश्न

(1) भक्तिकालीन कवियों की चेतना और आज की धार्मिक भावना में आप क्या संबंध या फर्क देखते हैं?

(2) क्या आज भक्त कवियों को सगुण और निर्गुण में विभाजित करके देखने की सार्थकता है? भारतीय राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करने में भक्त कवियों की क्या भूमिका है?

(3) दक्षिण भारत के भक्त कवि, मराठी भक्त या संत और हिंदी के भक्त-संत कवियों में क्या वैचारिक संबंध है?

(4) भक्त कवियों को 'प्राक-आधुनिक', 'अर्ली माडर्न' और 'आधुनिक' में से क्या कहा जाए और क्यों? क्या वे सामंतवाद के पोषक थे?

(5) क्या आज के युग में लोग भक्त कवियों को भूल गए हैं? उनकी किन चीजों का प्रभाव आज बचा है और किन चीजों को लोग भूल गए हैं?

(6) जिन हिंदी आलोचकों ने भक्त कवियों पर महत्वपूर्ण ढंग से लिखा, उनकी अपनी विशिष्ट मान्यता क्या थी और आज उनसे भिन्न क्या कहा जा सकता है?

(7) आजकल विश्वविद्यालयों में भक्ति साहित्य के शिक्षण की क्या दशा है?

निर्गुण–सगुण का भेद आज अधिक महत्वपूर्ण नहीं है

नंदकिशोर आचार्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक भक्ति काव्य पर विचार करते हुए उसे 'अपने पौरुष से हताश (हिंदू) जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने का मार्ग बताते हैं और यह मत दूर तक भक्ति काव्य पर हमारी विचार प्रक्रिया को प्रभावित करता रहा है। लेकिन, क्या सूफी भक्ति को भी इस संदर्भ में समझ सकते हैं? इसी तरह कबीर द्वारा प्रवर्तित 'निर्गुण संतमत' की स्वीकार्यता के पीछे भी वे यह मानते प्रतीत होते हैं कि शास्त्रों के पठन–पाठन के क्षीण हो जाने से धर्म और उपासना के गूढ़ तत्वों को समझने की शक्ति का अभाव हो गया था। दूसरी ओर, वह न केवल निर्गुण मत बल्कि वैष्णव काव्य की पृष्ठभूमि में भी गूढ़ और जटिल दार्शनिक संप्रदायों की सक्रिय प्रेरणा का जिक्र करते हैं। इसी कारण, हम सामान्यत: मध्यकालीन भक्ति काव्य को ज्ञानमार्गी–प्रेममार्गी, निर्गुण धाराओं और रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाओं वाली सगुण धारा की तरह देखते हैं। लेकिन काव्य या कला इतिहास या शास्त्र की अनुकर्ता मात्र नहीं होती। एक विशेष समय में रचे गए काव्य का असल महत्व समयबद्ध होने में नहीं, बल्कि समय का अतिक्रमण कर सनातन हो जाने में होता है। वह 'कालसंवादी' होने पर भी 'कालबाधित' नहीं होता। उसके काव्यत्व की परख भी 'शास्त्रबाधित' होने में नहीं, 'शास्त्रमुक्त' होने में होती है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार 'निर्गुणपंथ के संतों के संबंध में यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि उनमें कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है।' यह बात सगुण भक्त कवियों– बल्कि सच कहें तो– काव्य मात्र पर लागू होती है। इसी कारण, शुक्ल जी स्वयं कबीर जैसे निर्गुण ज्ञानमार्गी कवियों पर वैष्णव अहिंसा तथा प्रपत्ति की अवधारणाओं का प्रभाव देख पाते हैं। दरअस्ल, कविता किसी संप्रदाय या विचारधारा को छंदोबद्ध कर देने या उसे काव्यगुणों की चाशनी में लपेट कर गले उतार देने का काम नहीं करती। वह अपने में सत्य की अनुभूत्यात्मक तलाश या अन्वेषण होती है। जाहिर है इस तलाश में वह अपने समय में प्रचलित सभी परंपराओं से संवेदनात्मक अंत:क्रिया भी करती है और उसके माध्यम से अपना वह सत्य बरामद करती है जो केवल उसकी अपनी तलाश के माध्यम से ही संभव है। उसे इतिहास या शास्त्र की सीमाओं के भीतर बांध कर नहीं पाया जा सकता।

भक्ति-आंदोलन का जिक्र करते हुए हमें अक्सर यह स्मरण नहीं रहता कि यह आंदोलन मूलत: किसी दर्शन से प्रेरित न होकर काव्य प्रक्रिया की देन है। जब द्रविड़ देश में भक्ति 'ऊपजी' तो वह रामानुजाचार्य के दर्शन से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि आलवार और नायनार संत कवियों के अनुभूतिमय पदों से उपजी थी। उसका आरंभ पाँचवीं शताब्दी से होता है, जब इस्लाम का जन्म भी नहीं हुआ था। यह विकास प्रक्रिया नौवीं शताब्दी तक चली मानी जाती है, जबकि शंकराचार्य आठवीं शताब्दी के अंतिम और नौवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में होते हैं। उनके ज्ञानमार्ग की प्रतिक्रिया में रामानुजाचार्य ग्यारहवीं शताब्दी में अपना प्रपत्ति दर्शन विकसित करते हैं। वल्लभाचार्य तो और भी बाद में पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में आते हैं। रामानंद का समय भी पंद्रहवीं सदी से पहले नहीं ठहरता। पांचवीं से ग्यारहवीं सदी के दौर में दक्षिण का राजनीतिक इतिहास पल्लव, चोल और चाणक्य जैसे प्रतापी वंशों के साम्राज्य निर्माण का काल है, जिसमें मुस्लिम आक्रमणकारियों से पराजय और उससे उत्पन्न हताशा की मन:स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। वैसे भी भागवत धर्म का विकास तो महाभारत काल से ही माना जाता है। स्पष्ट है कि भक्ति-आंदोलन मूलत: काव्य प्रसूत है तथा उसी के माध्यम से विस्तार पाता है। यदि दर्शन की कोई भूमिका है भी तो उस काव्यानुभूति को एक दार्शनिक व्याख्या देने तक सीमित है। इतना स्पष्ट है कि आलवार संतों के पदों के माध्यम से ही वैष्णव भक्ति उपजी और प्रतिष्ठित हुई। नायनार शैव थे, इसलिए शिव-भक्ति काव्य की एक परंपरा भी दक्षिण में विकसित हुई, जिसमें अनंतर बसवेश्वर आदि हुए।

वैष्णव काव्य की विशेषता यह है कि उसमें स्वयं ईश्वर, जिसे 'परम आत्म' माना जाता है, एक आलंबन, एक वस्तु में रूपांतरित होकर आत्मानुभूति का माध्यम होता है- न केवल भक्त कवि के लिए, बल्कि उस कविता के श्रोता या पाठक के लिए भी। प्रत्येक अनुभूति गोविंद चंद्र पांडे के शब्दों में कहें तो मूलत: 'आत्मानुभूति' ही होती है। दरअसल, वस्तु या आलंबन की अनुभूति तभी संभव है, जब वह आत्मस्वरूप हो जाए। दर्शन की भाषा में इसे विषयी और विषय का अभेद, ज्ञाता और ज्ञेय का एकत्व अथवा वस्तु और आत्म का संयोग कहा जा सकता है। कविता या कला इस अर्थ में सदैव एक आध्यात्मिक प्रक्रिया कही जा सकती है। लेकिन वैष्णव काव्य में वस्तु अपने प्रचलित अर्थ में वस्तु नहीं बल्कि परम आत्म है। उस परम आत्म की अनुभूति मानवीय आत्म से एकत्व होने पर ही हो सकती है।

वैष्णव काव्य ही नहीं, बल्कि बड़ी हद तक निर्गुण काव्य भी हमारे लौकिक जीवन के पवित्रीकरण की प्रक्रिया हो जाता है। जीवन की इस पावनता का आविष्कार वैष्णव काव्य का केंद्रीय सरोकार है, जिसे हमारे युग में विजयदेव नारायण साही जैसे विचारकों ने 'पावनताजनित विवेक' कहा है। मैं इसे पावनताजनित संवेदना कहना चाहूंगा।

यही वह बात है जो निर्गुण साधक कबीर और सगुणोपासक सूरदास जैसे कवियों को अपनी प्रक्रिया में एक स्थल पर मिला देती है। कबीर को भली लगने वाली 'सहज समाधि' में प्रत्येक लौकिक कार्य 'सहज समाधि' की प्रक्रिया बन जाता है। वह जान पाते हैं कि 'जहँ तहँ डोलो सो परिकरमा, जो कुछ करो सो सेवा/जब सोवों तब करो दंडवत, पूजा और न देवा/कहों सो नाम, सुनों सो सुमिरन, खाँव-पियो सो पूजा/ गिरह उजाड़ एक सम लेखों, भाव न राखों दूजा।।'

सूरदास जैसे सगुणोपासक के लिए भी सारे लौकिक कार्य- जो अन्यथा बंधनकारी माने जाते रहे हैं- आध्यात्मिक अनुभूति में रूपांतरित हो जाते हैं। उनका काव्य लौकिकता की मिट्टी और उसी के खाद-पानी से आध्यात्मिकता या पावनता का वह बीज अंकुरित करता है जिसमें हम हर बालक में बालगोपाल तथा हर माँ में यशोदा का

दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। यहाँ स्मरणीय है कि तमिल में भक्त कवि सुंदर की रचनाओं में अपने इष्ट शिव के प्रति सखा-भाव की वैसी ही अपूर्व व्यंजना मिलती है, जैसी कृष्ण के प्रति सूरदास में। कृष्ण भक्त पेरियाडवार के काव्य में यशोदा के वात्सल्य का उतना ही प्रभावी अंकन है, जितना सूर के पदों में। लौकिकता की पावनता का यह अन्वेषण, यह बोध भारतीय वैष्णव काव्य की अपनी विशेषता है, क्योंकि काव्यानुभूति में लौकिकता और आध्यात्मिकता को विलगाया नहीं जा सकता।

यहाँ यह बात समझ में आती है कि भक्त-कवि मुक्ति पर भी भक्ति को वरीयता क्यों देते हैं और क्यों सूरदास की गोपियाँ अद्वैत और ज्ञानमार्ग का मखौल-सा उड़ाती दिखती हैं। जहाँ राधा स्वयं माधव हो जाती हो, वहाँ द्वैत कहाँ और कथित द्वैत के बिना अद्वैत की अनुभूति ही कैसे संभव होगी? और अनुभूति संभव ही कैसे होगी, यदि आलंबन आत्म में रूपांतरित न हो और यह रूपांतरण तभी संभव है, जब आत्मालंबन में अंतर्निहित आत्म का बोध हो सके। इसलिए गोपियों का प्रत्युत्तर अद्वैत का नकार नहीं है; वह जीवन की प्रक्रिया के, मानवीय भावनाओं के, लौकिकता के नकार का निषेध है।

जब भर्तृहरि ने करुण को एकमेव रस कहा था तो, वह इसी एकात्म बोध की संभाव्यता की ओर इशारा कर रहे थे, क्योंकि एकात्म भाव के बिना करुणा की वास्तविक अनुभूति संभव नहीं हो सकती। शृंगार में भी एकात्म बोध संभव है, पर वह दैहिक संबंध के माध्यम से संभव होता है, जबकि करुण में वह गहरे भावात्मक स्तर पर संभव होता है। लेकिन, यह करुणा केवल विगलित होने मात्र से संभव नहीं है। इसका सकर्मक होना अनिवार्य है। जब तुलसीदास 'परहित सरिस धरम नहीं भाई/परपीड़ा सम नहीं अधमाई' कहते हैं तो उनका वैष्णव संवेदन परहित में सक्रिय होने में ही करुणा देख रहा होता है। जब वह 'कतबिधि सृजी

नंदकिशोर आचार्य

सुप्रसिद्ध साहित्यकार। अद्यतन पुस्तक 'साम्य योग के आयाम : विनोवा दृष्टि पुनर्पाठ'।

नारि जग मांही/पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' कहते हैं तो मानों आधुनिक नारीवाद को ही जीवित कर रहे होते हैं। तुलसी की वैष्णव संवेदना या कहें करुणा, इसीलिए पीड़ित की पक्षधरता और अन्याय के विरुद्ध नैतिक संघर्ष के रूप में प्रकट होती है। 'रामचरितमानस' का संघर्ष अंततः 'रथी रावन' और उस 'विरथ रघुवीरा' के बीच का संघर्ष है, जिसकी वास्तविक शक्ति सत्य, शील, विवेक, परोपकार, क्षमा, दया, समता आदि नैतिक गुणों में है। इसी को निराला ने 'आराधन का दृढ़ आराधन से उत्तर' कहा है।

हमारे समय में इस दृढ़ आराधन के प्रतीक महात्मा गांधी हैं, जिनकी 'सत्याग्रह' की अवधारणा में वे सब गुण समाहित हैं, जिनका जिक्र तुलसीदास राम की शक्ति के रूप में करते हैं। सत्याग्रह इसीलिए, प्रतिपक्षी में भी आत्म को पहचानना है। यह करुणा ही तुलसी से कहलवाती है कि 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी/सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' पता नहीं हमारे राजनीतिज्ञों को तुलसी का यह कथन कभी स्मरण आता है या नहीं।

निर्गुण-सगुण का भेद आज मेरे लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि जिसे हम वैष्णव संवेदन कहते हैं, वह एक काव्यगत प्रक्रिया है, जो हमें एकात्म भाव में ले जाती है। इस प्रक्रिया में सकारात्मक प्रेम और सकर्मक करुणा के उन भावों की अनुभूति संभव होती है, जो काल को भेद कर एक सनातन आयाम ग्रहण कर लेने के कारण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं- चाहे संदर्भ बदल भी गए हों। मैं तो आधुनिक

काव्य में भी न केवल उसी संवेदन की व्याप्ति पाता हूँ, बल्कि अतिव्याप्ति दोष के आरोप का खतरा उठा कर यह भी कहूंगा कि अन्याय के विरोध में मुखरित संघर्षधर्मी कविता भी रावण के अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की ही समकालीन अभिव्यक्ति जैसी है- चाहे वह किसी भी विचारधारा से प्रभावित हो। वह कितना और कहाँ काव्य हो पाती है, यह अलग विचार का विषय है।

सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर- 334005 मो. 09413381045

भक्त कवि सामंतवाद विरोधी थे

मैनेजर पांडेय

(1) भक्तिकालीन कवियों की चेतना और आज की धार्मिक भावना में परस्पर विरोधी और विपरीत संबंध है। भक्तिकाल के कवियों की धार्मिक चेतना सच्ची, वास्तविक, उदार और उन्नयनकारी थी, जबकि आज की धार्मिक भावना में छल, छद्म, द्वेष की भरमार है। कबीर, सूर, तुलसी, नरसी मेहता और मीराबाई की धार्मिक चेतना से आज के तथाकथित संतों और भक्तों की धार्मिक भावना का कोई संबंध नहीं है।

(2) भक्त कवि भारत में दो तरह के थे। कुछ निर्गुण कवि थे जिन्हें संत कहा जाता था और कुछ सगुण थे, जिन्हें भक्त कहा जाता था, इसलिए संत और भक्त कवियों को निर्गुण और सगुण काव्यधारा में विभाजित करके देखने में सार्थकता है क्योंकि कबीर जैसे संत और तुलसी जैसे भक्त मध्यकाल के भक्तिकाल की वास्तविकता हैं कोई कल्पना नहीं।

भारतीय राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करने में संत और भक्त कवियों की महती भूमिका रही है। कबीर, तुलसी, नरसी मेहता जैसे संत-भक्त कवि अपने समय और समाज में उन्नायक थे और प्रेरक भी। इनका प्रभाव रवींद्रनाथ टैगोर पर है और महात्मा गांधी पर भी, इसलिए भारतीय राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करने में इनकी बड़ी भूमिका है। राष्ट्रीय जागरण काल में कबीर का चरखा गांधी का चरखा बनता है। तुलसी का रामराज गांधी का 'सुराज' बनता है। कबीर के 100 पदों का रवींद्रनाथ ने 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर' शीर्षक से अनुवाद किया। कबीर के पदों से बंगाल के बाऊल भक्त प्रभावित हुए। लालन फकीर (19वीं सदी के बाऊल फकीर) ने कबीर की परंपरा को आगे बढ़ाया। गांधी की प्रार्थना सभा में 'वैष्णव जन तो तेने कहिए...' गाया जाता था। गांधी मीरा को पहला सत्याग्रही कहते थे।

(3) दक्षिण भारत के भक्त कवियों, मराठी भक्तों या संतों में और हिंदी के संत-भक्त कवियों में गहरा और आत्मीय वैचारिक संबंध है। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, बहिणाबाई आदि मराठी के संत-भक्त कवियों से हिंदी के संत कवियों का संबंध जग जाहिर है। ये मराठी के संत-भक्त कवि परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। मराठी के संत कवि हिंदी के संत कवि से जुड़े थे। संत ज्ञानेश्वर 13वीं-14वीं सदी की भक्तिपरक कविताओं

को नागपुर के विनय मोहन शर्मा ने हिंदी में 'मराठी भक्तों की हिंदी सेवा' शीर्षक से संकलित किया है।

(4) यह कम लोगों को मालूम है कि मराठी के संत-भक्त कवि हिंदी में भी कविता लिखते थे। भक्त कवियों को प्राक्-आधुनिक, अर्ली मॉडर्न और आधुनिक में से प्राक्-आधुनिक और अर्ली मॉडर्न कहना ज्यादा उचित है। देश भर के संत और भक्त कवि सामंतवाद विरोधी थे। वे चाहे हिंदी के कबीर हों या मराठी के ज्ञानेश्वर और तुकाराम हों या कश्मीरी की ललदद्य।

(5) आज के युग में भक्त कवियों की धार्मिक भावना और वास्तविक चेतना तथा चिंता को अधिकांश लोग भूल गए हैं , तुलसीदास ने कलिकाल के संतों, भक्तों आदि की कठोर आलोचना की है।

(6) हिंदी के जिन आलाचकों ने भक्त कवियों पर महत्वपूर्ण ढंग से लिखा है उनमें रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख हैं। आचार्य शुक्ल भक्ति काव्य को प्रेम काव्य भी मानते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी की भी लगभग यही मान्यता है। आज के समय में संत-भक्त कवियों पर नए ढंग से लिखने के लिए उनकी सामाजिक चेतना,

मैनेजर पांडेय
प्रमुख वरिष्ठ आलोचक। अद्यतन पुस्तक 'संकट के बावजूद'।

राजनीतिक दृष्टि और युगबोध को जानना-समझना जरूरी है।

(7) प्रायः देशभर के भक्त कवि अपनी मातृभाषा के कवि थे। आज के हिंदी के अध्यापकों और विद्यार्थियों की समस्या यह है कि वे विभिन्न संत-भक्त कवियों की मातृभाषाओं को नहीं जानते हैं। आज के विद्यार्थियों और अध्यापकों को विद्यापति की मैथिली का ज्ञान नहीं है और न ही जायसी और तुलसी की अवधी का। न वे सूर की ब्रजभाषा को जानते हैं और न ही मीराबाई की राजस्थानी को। ऐसे में वे विभिन्न कवियों की कविता के मर्म को कैसे समझ सकते हैं। आज के छात्र और अध्यापक हिंदी के संत और भक्त कवियों की कविता की बनावट को भी नहीं समझते।

बीडी 8-ए, डीडीए फ्लैट्स, मुनिरका, नई दिल्ली-110067 मो.9810012910

भक्ति की पुरानी मनोवृत्तियाँ आधुनिक युग में भी हैं

रमेश कुंतल मेघ

(1) पहले प्रश्न का उत्तर प्राय: नामुमकिन-सा है क्योंकि इसमें ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दार्शनिक द्वंद्वन्याय सक्रिय है। इसके अलावा, धर्म बनाम विज्ञान के बीच सुदीर्घ अंत:संघर्ष रहा है जो प्राचीन-मध्यकालीन धर्म-भक्ति से आज की धार्मिकता को आमने-सामने करता है। दूसरे, मध्यकालीन धर्म-भक्ति, मत-संप्रदाय, कर्मकांड के बरक्स आज के आत्मनिर्वासन, ऊर्जा, भौतिकता, वेग के दिक्-काल के आधुनिक संसार में जिंदा है। मध्यकाल षट्दर्शनों की छायाओं में संवर्धित-संशोधित होता रहा है तो आज के संसार और शरीर में समसामयिक आत्मपरकीयकरण है। आइंस्टाइनीय देश-काल में ऊर्जा-

भूत–गति का संचालन, डार्विन का प्रजातियों का उन्मीलन, फ्रायड का मनोविश्लेषण, मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, गांधी का नैतिक दर्शन, लैवीस्ट्रास का संरचनावाद आदि जीवंत हैं। ये घटक मध्यकाल और मौजूदा समय को जोड़ते हुए पुल हैं। यह स्पष्टीकरण बेहद अनिवार्य है।

मध्यकालीन चेतना बरक्स आज की धार्मिक भावना की कड़ी में यह याद करें कि कुषाण काल में हिंदू देवी–देवताओं की साकार प्रतिमाओं तथा नदी–देवियों का रक्षिका रूप विकसित हुआ। इसके पहले महाकाव्य काल तक आते–आते मोहेनजोदरो के प्रोटाशिव तथा शिवलिंग महत्वपूर्ण देवता बन गए थे। लंबी छलांग लेकर सम्राट हर्षवर्द्धन ने बौद्ध धर्म को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयाग में भव्य आयोजन किया था, परंतु जन जीवन के दबाव में शिव प्रतिमा का भी पूजन किया। इससे बौद्ध धर्म भारतीय धर्म के मंच से क्षीण होता गया। शिव और विष्णु (अवतार सहित) पूजित हो गए। लोकजन कर्मकांड, तीर्थ, पूजन, भजन आदि करने लगे। मूर्तिपूजा तथा लिंग पूजा का प्रचार हो गया। साथ ही पिता (स्वर्ग) तथा माँ (पृथ्वी) और सर्प सृष्टि के अधिष्ठाता हुए। सामाजिक विभाजन ने धर्म बनाया, भक्ति अंतराल में विकसित हुई। आगे शाक्त संप्रदाय विकसित हुआ। अत: हर्ष की मृत्यु (647) के बाद नए युग की शुरुआत हुई। गुर्जर प्रतिहार, गहड़वाल राजाओं तथा राष्ट्रकूटों ने हर्ष से भी बड़े साम्राज्य स्थापित किए। दक्षिण में राजेंद्र चोल के काल में धार्मिक आचार्यों का उत्कर्ष हुआ। इस तरह चेतना और भावना का संबंध स्थापित हुआ। कुदरत तथा किस्मत की सहकारिता हुई।

(2) भक्त कवियों की निर्गुण–सगुण धाराएँ बनीं। मूलाधार 'प्रस्थानत्रयी' तथा 'चतुर्प्रयोजनों' ने भक्ति का मानचित्र बनाया।

इस युग में ईश्वर परमपिता तथा दयालु हुआ। दार्शनिक आयाम में वह आदि कारण तथा आदि कर्ता हुआ। वह निराकार, अशरीरी तथा शरीरधारी अलौकिक भी हुआ। वह शक्ति, ज्ञान, शुभता, प्रेम, दया आदि मानवीय गुणों से युक्त अवतार हुआ। इन्हीं मानवीय गुणों की सार्थकता तथा आदर्श से युक्त कालोत्तीर्णता का बोध कराने के लिए निराकार परमपिता प्रतिष्ठापित हुए।

इस प्रकार ईश्वर मनुष्यवत होकर अवतरित हुआ। मानव ईश्वरोपासक होकर उसके निर्गुण भाव का भी आराधक हुआ। इस उपक्रम में निर्गुण–सगुण प्रभु प्रसन्न होता है, वरदान देता है, उद्धार करता है तथा इहलोक में दंड और श्राप भी देता है।

(3) दक्षिण भारत के आचार्य, मराठी के संत और उत्तर के भक्त–संत कवियों की मूल धारा एक है। आधुनिक समय में ब्राह्मो समाज तथा आर्य समाज ने प्रबल प्रभाव डाला। इस चक्र में आचरण तथा भक्ति की महत्ता बढ़ी। तुलसी ने धर्म के दर्शन से आगे भक्ति भावना स्थापित की। रामानुज, रामानंद, वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य आदि ने मानों भक्ति को ही नया दसवाँ रस बना डाला था। मध्यकाल में 'महाभाव', 'महामुद्रा', 'महायोग', 'महासमाधि' की साधना–विधियाँ भी अनुकरणीय हुईं। अब धर्म तथा भक्ति परस्पर गुंथ गए। तुलसी इसके आदर्श हैं। श्री राधा 'महाभाव' और तांत्रिक योगिनी की 'महामुद्रा' भी साथ में थीं।

अब भक्त केवल भजन करने वाला नहीं था। उसकी ऐतिहासिक अस्मिता 'भक्तमाल' में है। सेवा भक्ति के केंद्र में आई। एक सगुण आयाम छाता गया– 'लीला' तथा 'अनुराग'। भागवत् धर्म चार भागों में विभक्त हुआ– ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद तथा चर्यापाद। केंद्र में विष्णु तथा उनके अवतार अधिष्ठापित हो गए। 'समाधि भाषा' और चर्या में चैतन्य तथा शंकरदेव परम पूज्य हुए। लोक–भक्ति के लिए ये भी मानक बने– 'विनयपत्रिका' तथा 'कवितावली' (तुलसी)।

(4) हमें समाजविज्ञानों, प्राकृत विज्ञानों, टेक्नोलॉजी का अधिग्रहण करना पड़ेगा। हमें ज्ञात होना चाहिए कि पदार्थ या भूत भी ऊर्जा का एक सर्वोपरि संरूप है। हमें यह भी जानना पड़ेगा कि

धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा सामाजिक समूह अपने व्यवहारों-विश्वासों को प्रकट करते हैं। ब्रोनिस्लाव मेलिनोवस्की (1884-1942) ने धर्म को शक्तिहीनता के दबाव से पलायन बताया है। वे धर्म-केंद्रों/धार्मिक कृत्यों के प्रति आस्था को लागू रखते हैं। विटगेंस्टाइन ने नई संध्या भाषा की अनोखी व्याख्याएँ की हैं। यह धर्मनिरपेक्षता तथा वैज्ञानिक सापेक्षता के प्रति प्रतिश्रुति-द्वंद्व जैसा है।

रमेश कुंतल मेघ
सुप्रसिद्ध आलोचक। अद्यतन पुस्तक 'विश्व मिथक सरित सागर'। साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित।

आजकल सत् (अस्तित्व) चित् (सारत्व) के साथ आनंद का द्वंद्वात्मक चिंतन, संघर्ष तथा समन्वय चलता रहता है। इसलिए ईश्वर में जनगण की छानबीन अंधविश्वास (भूत-प्रेत आदि), ज्योतिष, तिथि-दर्शन, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक आदि रूपों में भी संलक्षित होती है। इस तरह धार्मिक ज्ञान आस्था-निष्ठा, श्रुति, अनुभव, सार्थकता, सिद्धि-फलप्राप्ति में भी सूचित होता है। इसमें बहुलतावाद (प्लूरलिज़्म) तथा ध्रुवीकरण (पोलेराइजेशन) का शाश्वत द्वंद्व है।

(5) भक्ति का परिदृश्य कृषि-समाज, कृषि-यूतोपिया, कृषि-दुख दर्द के बिंबों से रचा-रमा है। संत मत के पूर्व बौद्ध एवं शैव योग प्रचलित हो गया था। चौदहवीं सदी से संत एवं वैष्णव-साधनाएँ पुन: एक नए रूप में विकसित हुईं (चैतन्य, शंकरदेव, वल्लभाचार्य, रामानुज)। बिहार के पद्मसंभव, महाराष्ट्र के विठोबा, पुरी में जगन्नाथ केंद्र बिंदु बने। वैदिक आरती, यज्ञ, मातृ चित्त वाला महाशक्ति धर्म भी है जो प्रागैतिहासिक योग परंपरा की देन है। भोग द्वारा योग की साधना (रतियोग) भी प्रचलित थी। हठयोग तथा पंचमकार हैं। आदिम मातृशक्तियों की कड़ी को दस महाविद्याओं, सात मातृकाओं, पंच कन्याओं, नव दुर्गाओं से जोड़ कर देखें तो हुजूर! शक्तिवाद का नारी-सशक्तीकरण से आधुनिक गठजोड़ दिख सकेगा। आज भी डेरे हैं, आश्रम हैं, कुबेर संपत्तियाँ हैं तथा सिद्ध और नाथ हैं।

अतएव अगर आप आदिम प्राइमेटोलॉजी, नृतत्वशास्त्र, सांस्कृतिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में आवागमन करते हैं तो भक्त कवियों को भूलना या याद करना, ऐतिहासिक परिवर्तन जानना और भविष्य की प्रासंगिकता बताना आपका फैसला है कि याद करें या ठुकरा दें।

(6) इस क्षेत्र में विश्वंभरनाथ उपाध्याय, मैनेजर पांडेय, शरद पगारे के बाबत ही स्वल्प ज्ञान रखता हूँ। मैं तो हमेशा वाद-विवाद करके सीखता-सिखाता हूँ।

(7) आजकल विश्वविद्यालयों में- क्या कहूँ- अब न रहे वे पीने वाले, अब न रही वह मधुशाला! मैं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का अनुयायी हूँ। अतः निराश तो हूँ, पर हतोत्साहित नहीं हूँ।

रामानुज की श्री-भू-लीला की नई व्याख्याओं का इंतज़ार है। वल्लभ प्रभु के महाभाव की लीला और सेवा की पुष्टि होनी है। नारी दुर्गाओं तथा श्रमिक महादलितों का अभ्युदय जम कर शुरू हो चुका है। भक्ति की पुरानी मनोवृत्तियाँ (दास्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य) आधुनिक युग में बनी हुई हैं। यदि दक्षिण का गोपी भाव उत्तर के राधा महाभाव में बदला जा सकता है तो वह आज देश भर में नारी-महाशक्ति बनने को प्रस्तुत है।

आप ही तय करें कि क्या हमारा संसार, हमारा मानव शरीर और हृदय मायापूर्ण तथा मिथ्या है? इतिहास कई नई प्रस्थानत्रयी का अनुगमन करता रहेगा। उपनिषद्, भगवद्गीता आदि की नई व्याख्याएँ सामने आएंगी।

फ्लैट सं. 3 (भू-तल) स्वास्तिक विहार, फेज-III, मनसा देवी कांप्लेक्स, पंचकूला- 134109 (हरियाणा)

सामंती मूल्यों के विरोध में सगुण संतों की भी एक बड़ी भूमिका थी

अजय तिवारी

(1) भक्तिकाल को हिंदी की प्रारंभिक आधुनिकता कहा जाता है, यानी 'अर्ली मॉडर्निटी'। आज के समय को उत्तर-आधुनिकता कहा जाता है, यानी पोस्ट मॉडर्निटी'। भक्तिकाल व्यापारिक पूंजीवाद का समय था, वर्तमान काल वृद्ध पूंजीवाद का समय है। व्यापारिक पूंजीवाद का संघर्ष सामंती व्यवस्था और उसके मूल्यों से था। इसलिए आधुनिकता वहाँ विकसित हो रही थी। मध्यकालीन संबंधों और विचारधाराओं से अंतर्विरोध के कारण भक्त कवियों की चेतना मूलतः प्रगतिशील और यथार्थपरक थी। उनकी सामाजिक दृष्टि उन्नतिशील थी और सांस्कृतिक बोध मानवतावादी था। वृद्ध पूंजीवाद का हमारा समय गंभीर वैश्विक संकट का सामना कर रहा है। फलतः भक्तियुग के अर्जित आधुनिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है।

इसका एक दिलचस्प उदाहरण यह है कि भक्तों के लिए आत्मानुभूति और लोकहित में विरोध नहीं था। दोनों का सामंजस्य उनके लिए सत्य था- पिऊ मोर मिलिया सत्य गियानी। लेकिन संकट से परिभाषित हमारा समय उत्तर-सत्य का समय है। भक्तों का 'सत्य' आत्मगत अनुभव और वस्तुगत यथार्थ में विरोध न मानता था, उत्तर-सत्य वस्तुगत यथार्थ की जगह आत्मगत विश्वास के आग्रह से परिचालित है। भक्तों की आस्था अत्यंत दृढ़ थी, वह बात-बात पर आहत नहीं होती थी। हमारे समय में आस्था छुई-मुई की तरह है, अकारण आहत हुआ करती है। अस्मिता की राजनीति इस युग का सांस्कृतिक चेहरा है।

भक्त कवि रूढ़िवादी, प्रथानुगामी और पुराणपंथी विचारों-संस्कारों का प्रतिवाद करते हुए समता और मानवता के आधार पर समाज को एकीकृत करने का संघर्ष कर रहे थे; एक हद तक राजसत्ता भी ऐसी संकीर्णताओं से दूर थी। हमारा समय इसकी विपरीत प्रवृत्तियों का साक्षी है। आज राजसत्ता के संरक्षण में सांप्रदायिक, संकीर्णतावादी और पुराणपंथी शक्तियाँ पूरे सामाजिक जीवन को ही तितर-बितर करने पर आमादा हैं। रूढ़िवादी और उन्नतिशील सांस्कृतिक दृष्टियों में टकराव तब भी था, पर जाति और संप्रदाय के आधार पर ऐसी हिंसक गिरोहबाजी नहीं थी जैसी आज दिखाई देती है।

अजय तिवारी
प्रसिद्ध आलोचक। अद्यतन आलोचना पुस्तक 'इतिहास की रणभूमि और साहित्य'।

भक्तिकाल के समय भारत 'सोने की चिड़िया' था और उसे ऐसा बनाने में व्यापार को प्रोत्साहित करने वाले पठान और मुगल शासकों के साथ-साथ कारीगरों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज भारत अपनी औपनिवेशिक विरासत से मिली दरिद्रता और विषमता के अभिशाप से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ है लेकिन नई विपदाओं का सामना भी कर रहा है। यह संयोग की बात नहीं है कि एक तरफ भूख से मरने वालों की संख्या बढ़ रही है, दूसरी तरफ खरबपतियों की संख्या भी बढ़ रही है। यदि एक प्रतिशत लोगों के पास कुल राष्ट्रीय संपत्ति का 73% हो और 80% लोगों के पास केवल 1% संपत्ति हो तो उस समाज के संकट की कल्पना की जा सकती है। वहीं दूसरी ओर हम विकसित राष्ट्रों के मुकाबले अपने हितों की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थाओं का दबाव विश्व-स्तर के अंतर्विरोधों को बढ़ा रहा है, जिसके चलते हमारी सामाजिक स्थितियाँ बहुत नकारात्मक दिशा ग्रहण कर रही हैं।

इसका परिणाम यह है कि अपनी दुर्दशा का कारण न समझ पाने वाले अधिकांश भारतीय या तो अंधविश्वास की शरण में जाते हैं या विभाजनकारी संकीर्ण राजनीतिज्ञों के उत्तेजनापरक लक्ष्यों का शिकार बन जाते हैं। बाजार व्यवस्था में हिस्सेदार बनने वाले मध्यवर्ग की उपभोक्तावादी अभिलाषाएँ उसे सामाजिक दृष्टि से असंवेदनशील और स्वार्थी बना रही हैं। इसका परिणाम यह है कि भक्ति आंदोलन अथवा स्वाधीनता आंदोलन में अर्जित मूल्यों के प्रति गहरी उदासीनता प्रकट हो रही है। नाम लेने के लिए भक्ति का प्रदर्शनवादी प्रचार खूब हो रहा है, लेकिन मानवीय चेतना और सामाजिक दायित्वबोध की दृष्टि से उन मूल्यों की अवहेलना हो रही है।

(2) भक्तों के लिए सगुण-निर्गुण आपस में उतने विरोधी नहीं थे, जितने आज मालूम होते हैं। 'सरगुन की सेवा करौ, निर्गुण को धरौ ध्यान/ सरगुन-निर्गुण से परे, तहाँ हमारा ज्ञान।' यह कबीर की राय है। 'सगुनहिं-अगुनहिं नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा।' यह तुलसी का विचार है। सगुण और निर्गुण केवल उपासना के भेद थे। वास्तविक ज्ञान दोनों से परे था। सगुण और निर्गुण दोनों ब्रह्म के रूप हैं। ब्रह्म अपने दोनों रूपों से बड़ा है, व्यापक है। उसे एक ही रूप में भक्त कवि नहीं बांध सकते थे। यह काम किया बाद के आलोचकों ने। किन्तु भक्तों का यह दार्शनिक नजरिया अपने समय में तो एक नए जागरण में मददगार था ही, आज भी उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

दूसरी बात यह कि वर्ण व्यवस्था के चलते अस्पृश्यता हमारे समाज में मौजूद थी, जिसका शिकार निम्न कही जाने वाली जातियों को बनना पड़ता था। शूद्र कहे जाने वाले मनुष्य न सवर्णों को छू सकते थे, न मंदिर में प्रवेश कर सकते थे। ये अस्पृश्य जातियाँ मूलतः शिल्पी और कारीगर थीं। व्यापार के विकास ने कारीगरों की आर्थिक स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया था। वे पुराने अछूतों की तरह- ग्रामीण समाज के 'शूद्रों' की तरह- ब्राह्मण पुरोहितों, क्षत्रिय सामंतों और व्यापारी वैश्यों के बंधुआ नहीं रह गए थे। वे अपनी आर्थिक हैसियत में उन्नति होने पर समाज में अपने अधिकार और बराबरी की मांग करने लगे थे। इस आकांक्षा का ही परिणाम था संस्कृति में इन समुदायों की

बढ़ी सक्रियता। वे मंदिर में नहीं जा सकते थे, भगवान की मूर्ति मंदिर में ही थी। उन्होंने भगवान को मूर्ति से आजाद किया, मंदिर से बाहर निकाला और उसे घट-घट वासी बना दिया। उसे मंदिर से भी मुक्त किया और निर्गुण रूप देकर सर्वव्यापी बना दिया। इस तरह उनका ब्रह्म व्यापक होकर ब्रह्मांड में फैल गया और आत्मीय होकर हृदय में विराजमान भी हो गया। ये अवधारणाएँ धर्म-दर्शन से संबद्ध थीं। लेकिन उनका तत्कालीन सामाजिक निहितार्थ बहुत प्रधान हो गया था। इसलिए धर्म के आवरण में व्यक्त यह सामाजिक दृष्टि एक नई संस्कृति का आंदोलन बन कर सामने आई। आज भी इस दृष्टि की प्रासंगिकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

तथाकथित सवर्ण समाज में सामाजिक परिवर्तनों का असर पड़ रहा था। 'खेती न किसान को, भिखारी को भीख बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।' ये सभी पेशे केवल अवर्णों के नहीं थे। इनमें सूर और तुलसी भी थे, जो कहने को ब्राह्मण थे लेकिन जिनकी सामाजिक हैसियत ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत-भिखारी और सेवक की थी। उनके लिए मंदिर वर्जित नहीं थे, लेकिन सामान्य गृहस्थ का सम्मान भी सुलभ नहीं था। उनका ईश्वर सगुण था लेकिन वह 'भक्त-वत्सल' था, 'गरीब नवाज' था, वह 'अधम उधारण भव तारण' था। वह न अमीर-गरीब का भेद जानता था, न छूत-अछूत का। वह केवल एक नाता जनता था- 'मानहुँ एक भगति का नाता'। इन 'सवर्ण' भक्तों के लिए आभिजात्य का गर्व व्यर्थ था, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब का भेद भी व्यर्थ था। जन्म से 'सवर्ण' होकर भी वे बहिष्कृतों का जीवन जीते थे। 'ऊंच निवास नीच करतूती'- संपत्ति और वैभव के 'ऊंचे' ओहदों के मालिक कैसी नीची हरकतें करते थे, इसका अच्छा अनुभव उन्हें था। उनका ईश्वर मनुष्य के रूप में ऐसी लीला करता था, जैसा व्यवहार सामंत-व्यापारी न करते थे लेकिन वह व्यवहार सब मनुष्यों की गरिमा के अनुरूप था। इसलिए प्रकटतः सगुण होकर भी वह पुरोहितों और अन्यायियों के विरुद्ध था। ऐसा ईश्वर समाज में एक नई नैतिकता की संस्थापना का माध्यम था। सारांश यह कि सामंती मूल्यों और संबंधों के प्रतिकार में जितनी निर्गुण संतों की भूमिका थी, उतनी ही सगुण संतों की भी थी।

निर्गुण संतों में मुसलमान सूफी भी थे। वे भी कबीर-तुलसी की भांति अपने धर्म के आडंबर का विरोध करते थे और दार्शनिक आधार पर मनुष्य मात्र की एकता और समानता का महत्व निरूपित करते थे। इसलिए दोनों ही तरह के भक्तों ने राष्ट्रीय जीवन को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह संयोग नहीं है कि प्रारंभिक आधुनिकता के युग में तो इस सांस्कृतिक चेतना ने एक नए जागरण का काम किया ही, स्वाधीनता आंदोलन के समय भी उसने प्रेरणा का काम किया।

यदि भक्ति साहित्य के उदार मानवतावादी मूल्यों को आगे बढ़ाया जाए तो इससे आज की संकीर्णता और क्रूरता के प्रति जनता को जागृत करने में सहायता मिलेगी। हम भारत की जिस 'गंगा-जमुनी' संस्कृति को दुनिया के सामने धर्मनिरपेक्ष आधुनिक भारत की उपलब्धि बना कर पेश करते हैं, उसकी आधारशिला भक्तिकाल में ही पड़ी और भक्त-कवियों ने उसके विकास में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए प्रारंभिक आधुनिकता के युग में, स्वाधीनता आंदोलन के युग में और आज भूमंडलीकरण या उत्तर-भूमंडलीकरण के युग में उस संस्कृति का महत्व असंदिग्ध है।

(3) दक्षिण भारत, महाराष्ट्र और हिंदी क्षेत्र ही नहीं, असम जैसे उत्तर-पूर्व में भी भक्ति की जो धारा चली, उनमें गहरा आतंरिक संबंध है। दक्षिण के आलवार संतों की परंपरा मूलतः अवर्ण समुदाय में फैली थी। वे विष्णु के सगुण रूप के उपासक थे। इसलिए यह भ्रांत धारणा निकाल देनी चाहिए कि सभी अवर्ण संत निर्गुण के उपासक थे और सवर्ण संत सगुण के। उत्तर भारत में ऐसा दिखता है, किंतु न यहाँ ऐसा हुआ और न दक्षिण में।

निर्गुण धारा दक्षिण में गौण थी। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में अष्टछाप के एक प्रमुख कवि नाभादास थे। उन्होंने 'भक्तमाल' की रचना की थी, वे अवर्ण थे और सगुण के उपासक थे। आंडाल, नाभादास, सूरदास, नरसी मेहता, चैतन्य महाप्रभु और शंकरदेव- कृष्णभक्तों की इस अखिल भारतीय परंपरा ने प्रारंभिक आधुनिकता के समय सांस्कृतिक दृष्टि से भारत को एक किया, सामंती बंधनों को चुनौती दी, वेदांत के आधार पर मनुष्य की श्रेष्ठता और ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्यों की समानता का विचार प्रस्तावित किया। इस तरह, उन विभिन्न भारतीय भाषाओं में एक भावधारा का प्रसार हुआ, जो अंग्रेजी की सहायता के बिना आपस में संबद्ध थीं। संक्षेप में, सामाजिक दृष्टि हो या दार्शनिक सिद्धांत, सभी दृष्टियों से उत्तर-दक्षिण, पूरब और पश्चिम का भक्ति आंदोलन वैचारिक रूप से बहुत संपन्न और परस्पर संबद्ध था।

(4) भक्त कवियों की चेतना आज के अर्थ में अधिक व्यापक नहीं थी। उस पर मध्यकालीन और सामंती प्रभाव स्पष्ट है। लेकिन उनमें आधुनिकता के मूल्य विकसित हो रहे थे। कबीर का 'सत्य', तुलसी का 'विवेक', मीराँ का 'अनुभव', यह सब धार्मिक पदावली के भीतर व्यक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है। कबीर के समय ही 'तू मोहिं देखै, हौं तोहि देखौं, प्रीत परस्पर होई/तू मोहिं देखै, तोहि न देखौं, यही मति बुधि सब खोई!' ईश्वर से मनुष्य की परस्पर प्रीति के लिए जरूरी है कि दोनों एक-दूसरे को देखें। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वह मुझे देखे, मैं उसे न देखूँ, यह नहीं चलेगा! निजता का महत्व भक्ति में यह है कि किसी एक भक्त का ईश्वर दूसरे भक्त के ईश्वर का प्रतिरूप नहीं है। एक तरफ व्यापक मानवीय सहृदयता, दूसरी तरफ निजता का प्रबल आग्रह, यह भक्त कवियों की धार्मिक चेतना को पूर्णतः मध्यकालीन नहीं रहने देता। पहले उसे 'प्राक-आधुनिक' कहा जाने लगा था। किंतु प्राक-आधुनिक चेतना नियतिवाद और अंधविश्वास के प्रभावों से अधिक घिरी होती है। भक्तों के विचार धार्मिक-दार्शनिक भाषा में मध्यकालीन जकड़बंदी से बहुत आगे हैं। उनमें आधुनिकता के पारिभाषिक पहलू यूरोपीय कवियों से अधिक मुखर हैं। शेक्सपियर के 'मैकबेथ' में चुड़ैल कह कर स्त्रियों को जलाने का वर्णन है। उससे शेक्सपियर की असहमति नहीं जान पड़ती। 'देखि जरन जड़ नारि की...', स्वेच्छा से सती होने वाली स्त्री के जलने का भी सूरदास विरोध करते हैं। 'कत विधि सृजी नारि जग माहीं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' पराधीन व्यक्ति को सपने में भी सुख नहीं मिलता और स्त्री को तो विधाता ने पराधीन बना दिया है। इस विधाता से विद्रोह तुलसी के साहित्य में भरा पड़ा है, 'विधि करतब उलटे सब अहहीं'। सैकड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले राम 'आप प्रकट भये, विधि न बनाये'। इसलिए भक्त कवियों की चेतना प्राक-आधुनिकता का नहीं, प्रारंभिक आधुनिकता का प्रमाण देती है।

(5) भक्त कवियों को आज के लोग न पूरी तरह भूले हैं, न पूरी तरह अपनाए हुए हैं। जन साधारण को भक्तों की विचारधारा और उसके क्रांतिकारी पक्षों की अधिक जानकारी नहीं है। जानकारी देने का काम बुद्धिजीवियों का था, उन्होंने नहीं किया। भारत के राजनीतिज्ञ, विशेषतः आपातकाल के बाद उभरे राजनीतिज्ञ साहित्य-संस्कृति से इतने शून्य हैं कि पुरखों की एक कहावत याद आती है। बुद्धिजीवियों में आज भी इस बात पर सहमति नहीं है कि भक्ति की अलग-अलग धाराओं में कोई एक सामान्य विचार था। वे भेदवाद से ग्रस्त हैं। सगुण-निर्गुण, सवर्ण-अवर्ण, हिंदू-मुसलमान आदि अनेक आधारों पर भक्ति की विभिन्न धाराओं में विखंडन का प्रयास बड़े वैदुष्य के साथ किया जाता है। दूसरी तरफ, समाज के निहित स्वार्थों के प्रतिनिधि लोग संतों का नाम लेकर सभी तरह की अमानवीयता का प्रचार करते हैं। अतः जिन्हें भक्त कवियों के साहित्य की जानकारी ही नहीं है, उनके भूलने का सवाल कहाँ

उठता है? अपने मतभेदों के बावजूद साहित्यकारों को भक्त कवियों की प्रगतिशील और मानवतावादी शिक्षाएँ याद हैं। वे अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उनका स्मरण या उपयोग करते हैं। सारांश यह है कि समाज अनेक अंतर्विरोधों का समुच्चय है, अलग-अलग तबकों के बीच भक्तों की अलग-अलग शिक्षाओं का प्रभाव है। लेकिन भक्तों के नाम पर गलत शिक्षाओं का प्रचार अधिकांशतः वे करते हैं जिनके निहित स्वार्थ हैं।

(6) पहले हिंदी आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल थे जिन्होंने भक्ति का संबंध मध्यकाल के विघटनशील समाज में पीड़ित समुदाय की हताशा से जोड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि भक्तों ने भेदभाव के दृश्यों को पीछे हटा कर ऐसी भावना का प्रसार किया जिसने समाज को संगठित और सुदृढ़ करने में सहायता की, पंडितों और मुल्लों से अलग सामान्य लोगों ने राम-रहीम की एकता स्वीकार कर ली। उन्होंने तीसरी बात यह कही कि मुगल शासकों ने, खास कर अकबर ने, परंपरागत भारतीय संस्कृति से नाता जोड़ कर इस एकता के प्रयास को बल पहुँचाया। इन कारणों से भक्ति का युग साहित्यिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण बना। शुक्ल जी से अंशतः सहमत और अंशतः असहमत होते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भक्ति को वयनजीवी (बुनकर) जातियों के उत्थान से जोड़ा। साथ ही, अभीर जातियों के प्राचीन रास जैसी लोक कलाओं से भी जोड़ा। उनके विवेचन में जाति और धर्म पर यथेष्ट जोर है। लेकिन यह भी उल्लेख है कि यदि मुसलमान न आते तब भी भक्ति साहित्य का बारह आना वैसा ही रहता जैसा है।

भक्ति के विवेचन में सबसे महत्वपूर्ण काम किया रामविलास शर्मा ने। 1944 में तुलसी पर अपने पहले लेख में उन्होंने भक्ति का संबंध व्यापारिक गतिविधियों से जोड़ा। तब तक यह काम किसी इतिहासकार ने नहीं किया था। उन्होंने भक्ति को किसानों और कारीगरों के विद्रोह के रूप में देखा, जिसकी परिणति आगे चल कर लोकजागरण में हुई। यह लोकजागरण इसलिए था कि उसमें उपेक्षित समुदाय के लोग शामिल थे- शूद्र, भिखारी, स्त्रियाँ, मुसलमान आदि। इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता थी इसका अखिल भारतीय स्वरूप। रामविलास जी ने औपनिवेशिक सिद्धांतकारों की धारणा का खंडन करते हुए दिखाया कि जिस समय यहाँ के सामंत आपस में लड़ते थे और विदेशियों को आमंत्रित करते थे, जैसे महाराणा साँगा ने बाबर को आमंत्रित किया, उस समय भक्त कवि पूरे देश को एकताबद्ध करने वाला सांस्कृतिक आंदोलन चला रहे थे। सबसे उल्लेखनीय यह था कि भक्ति आंदोलन का असर केवल साहित्य तक सीमित नहीं था। उसका प्रभाव भवन निर्माण (मंदिर), मूर्तिशिल्प, संगीत, नृत्य आदि विभिन्न कलाओं के विकास पर पड़ा। तुलसी, तानसेन और ताजमहल- इन तीनों को प्रतीक बना कर उन्होंने उस युग की व्यापक छवि उपस्थित की जो अपनी रचनात्मकता में अत्यंत भव्य था।

भक्ति को लेकर एक दृष्टिकोण मुक्तिबोध ने भी प्रस्तुत किया। उनके अनुसार सगुण भक्ति का संबंध सवर्ण जातियों से था और निर्गुण भक्ति का अवर्ण जातियों से। इस तरह, सामाजिक एकता के बजाय मुक्तिबोध ने सामाजिक विखंडन को आधार बनाया। इसलिए उत्तर-आधुनिक विचारों के साथ, विशेष रूप में अस्मितावादी विमर्श के लिए, मुक्तिबोध का महत्व अधिक उभरता दिखाई देता है।

यह मानी बात है कि अतीत के प्रति हमारा दृष्टिकोण हमारे वर्तमान अनुभवों और उद्देश्यों से परिचालित होता है। भक्ति में जातिगत उत्पीड़न का विरोध है। यह भेदभाव समाज में था और आज भी मिटा नहीं है। भक्ति में स्त्री की पराधीनता का तीव्र बोध है। यह समस्या भी अब तक बनी हुई है। भक्ति ने हिंदू-मुस्लिम कट्टरपंथियों का विरोध सहते हुए एक गंगा-जमुनी संस्कृति का निर्माण किया। आज कट्टरपंथियों के चलते और उन्हें राज्य के संरक्षण के चलते, भारत में सामाजिक एकता गंभीर संकट में है। भक्तों ने अपनी महान

दार्शनिक परंपरा को आत्मसात करके अपने युग की आवश्यकताओं को दार्शनिक ढांचे में अभिव्यक्त किया था। आज की नई शिक्षा में ढले हुए बुद्धिजीवी अपनी परंपरा के नाम पर उस दर्शन को बिलकुल नहीं जानते, कुछ ऊपरी बातों को अपना कर 'एथनिक' होने का प्रयास करते हैं।

भक्तों का संबंध समाज के सबसे दमित-उत्पीड़ित मनुष्यों से था। इन्हीं के आधार पर वे नई संस्कृति की आधारशिला रख रहे थे। आज के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का इन दमित-उपेक्षित मनुष्यों से कोई रागात्मक संबंध नहीं है। भक्तों के देशाटन और संपन्न मध्यवर्ग के पर्यटन में आकाश-पाताल का अंतर है। यदि आज हम भक्ति का मूल्यांकन करें तो इन चुनौतियों को सामने रखना आवश्यक होगा।

भक्तों का संसार भारत में फैला था, वे जनपदीय, स्थानीय सीमाएँ तोड़ रहे थे। आज की दुनिया अधिक व्यापक और संबद्ध है, वह राष्ट्रों की सीमाएँ तोड़ रही है। ऐसे में अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं की रक्षा करते हुए वैश्विक संस्कृति के मूल्यों को आत्मसात करना एक चुनौती है। इसका विवेकसंगत रास्ता न मिलने के कारण एक तरफ लोहिया के शब्दों में 'विश्वयारी' बढ़ रही है, दूसरी तरफ अंध-भावना भी अभिव्यक्त हो रही है। भक्ति के युग में धर्मनिरपेक्षता का विकास हो रहा था, आज वही धर्मनिरपेक्षता संकटग्रस्त है। भक्ति के समय पूंजी का विस्तार हो रहा था और वह समाज को संगठित कर रही थी। आज की आवारा पूँजी स्वयं सबल हो रही है लेकिन देश और समाज को विखंडित कर रही है। इस तरह की नई बातों का समावेश करके हम भक्ति के अब तक के मूल्यांकन से अपने को जोड़ भी सकते हैं और उसका नए संदर्भ में विकास भी कर सकते हैं।

(7) सच पूछिए तो आज विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की बुरी हालत है, भक्ति साहित्य के शिक्षण की तो और भी। एक तो पेशेवर पाठ्यक्रमों को बढ़ावा देने के कारण साहित्य के प्रति उदासीनता बढ़ी है। दूसरे, ब्रज और अवधी का ज्ञान रखने वाले शिक्षकों की संख्या दिनोंदिन घटती जा रही है। तीसरे, विमर्शों की प्रधानता के चलते भक्ति साहित्य के प्रति किसी सुसंगत दृष्टिकोण का विकास शिक्षकों में नहीं हो रहा है। चौथे, धार्मिक और जातीय भावना की अति-संवेदनशीलता के नाते भक्ति की तर्कसंगत और ऐतिहासिक व्याख्या करना खतरे से खाली नहीं है। पांचवें, भक्ति साहित्य में प्रगतिशील और आधुनिक विचारों के साथ-साथ अनेक पुरातनपंथी और त्याज्य संस्कार या विचार भी हैं। उनका अध्यापन करते समय शिक्षक को अपने संस्कारों से भी मुक्त होना पड़ेगा और विद्यार्थियों की संवेदनशीलता को भी मुक्त रखना होगा। सबसे बढ़ कर, घोर प्रतिस्पर्धा और बेरोजगारी के युग में यह समझना और समझाना काफी परिश्रम साध्य है कि भक्ति साहित्य का क्या औचित्य है। इतना धैर्य या संयम शायद विद्यार्थियों में नहीं है, शिक्षकों में भी नहीं है। एक लोकतांत्रिक शिक्षा नीति के द्वारा इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है, पर उस दिशा में कोई राजनीतिक इच्छा शक्ति दिखाई नहीं देती।

बी-30, श्रीराम अपार्टमेंट्स, 32/4, द्वारका, नयी दिल्ली-110078 मो 9717170693

भक्ति की परंपरा दक्षिण और उत्तर भारत को जोड़ने वाली बड़ी घटना थी

राजकुमार

(1) भक्त कवियों की चेतना में धार्मिकता, सामाजिकता और साहित्यिकता का विलक्षण संगम दिखाई पड़ता है। इन्होंने मोटे तौर पर धर्म की उस अवधारणा को आगे बढ़ाया और प्रतिष्ठित किया, जिसे आज की शब्दावली में धर्म का सबाल्टर्न रूप कहा जा सकता है। भारतीय सभ्यता के समूचे इतिहास में स्त्री और जाति के प्रश्न को जितना महत्व उस दौर में दिया गया, वैसा इससे पहले के इतिहास में संभवत: नहीं दिया गया था। भक्त कवियों ने राजसत्ता के बरक्स लोकसत्ता की वैकल्पिक अवधारणा पेश की। इस अवधारणा में युद्ध, हिंसा और भौतिक समृद्धि की भूमिका लगभग समाप्त कर दी गई।

परवर्ती कालों में भले भक्ति काल जैसी महान रचनाएँ न लिखी गई हों, लेकिन भक्ति का सिलसिला 19वीं शताब्दी तक चलता रहा है। यहाँ तक कि स्वयं भारतेंदु ने भक्तिपरक कविताएँ लिखी हैं। गांधी पर भक्तिकालीन कविताओं का प्रभाव जग जाहिर है। इनका प्रभाव सामाजिक और धार्मिक जीवन पर इतना गहरा पड़ा कि आज भी इसके निशान देखे जा सकते हैं। निश्चय ही भक्ति की लोकधर्मी सर्जनात्मकता की चमक धीरे-धीरे फीकी पड़ती गई, फिर ऐसे लोग सामने आने लगे जिनका उद्देश्य अपने लाभ के लिए भक्ति की भावना का इस्तेमाल करना था। अपने निजी फायदे के लिए भक्ति भाव का इस्तेमाल करने वालों में साधु, संत और राजनेता शामिल हैं। ये न तो भक्त हैं और न ही इनमें किसी तरह की धार्मिकता है। ये अपने स्वार्थ के लिए धार्मिक भावना का इस्तेमाल करने वाले चतुर और धूर्त लोग हैं।

(2) भक्त कवियों को सगुण और निर्गुण में बांट कर देखने की सार्थकता पहले भी संदिग्ध थी। आज के दौर में इस विभाजन की सार्थकता और भी संदिग्ध हो गई है। वास्तव में सगुण और निर्गुण को एक-दूसरे के विरोधी के रूप में दिखाने का सिलसिला ईसाई मिशनरियों द्वारा शुरू किया गया। इस दौर के ग्रंथों की पांडुलिपियों में ऐसा भेद दिखाई नहीं पड़ता। कुछ ग्रंथों की पांडुलिपियों में कई रचनाकारों की कविताएँ शामिल हैं। कबीर और तुलसीदास दोनों की कविताओं के संकलन एक ही पांडुलिपि में मिल जाते हैं। अगर पहले ही इन्हें एक-दूसरे का विरोधी माना गया होता तो एक ही संकलन में कबीर और तुलसी एक साथ नहीं होते। मराठी में भी भक्तिकाल के दौरान सगुण और निर्गुण का विभाजन नहीं था।

भारत में राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करने में भक्त कवियों की प्रेरणादायी भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। यह सही है कि इस दिशा में कोई गंभीर अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। भारतेंदु भक्तिपरक कविताएँ लिखते थे और गांधी पर भी भक्तिकालीन कवियों

राजकुमार
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में हिंदी विभाग में प्रोफेसर।
अद्यतन पुस्तक : 'उत्तर औपनिवेशिक दौर में हिंदी शोधालोचना' (संपादित)

का गहरा असर था। इससे यह अनुमान होता है कि 19वीं शताब्दी में और 20वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में भक्तिकालीन संवेदना का गहरा असर हमारे राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुए लोगों पर था। इसके सबसे सटीक उदाहरण के रूप में हम गांधी का नाम ले सकते हैं।

गांधी की प्रार्थना सभाओं में जो भजन गाए जाते थे और जो उनको बहुत प्रिय थे, वे ज्यादातर भक्त कवियों द्वारा लिखे गए थे। यह बात अलग है कि जब पश्चिम के मॉडल का प्रभाव ज्यादा बढ़ गया तो भक्त कवियों से प्रेरणा लेने के बजाय या उनके महत्व को ठीक से समझने के बजाय हर चीज के लिए हम पश्चिम की ओर देखने लगे। यह बात न केवल राजनीतिज्ञों पर लागू होती है, बल्कि साहित्यकारों पर भी लागू होती है।

(3) भक्ति के संदर्भ में यह बात प्रसिद्ध है, 'भक्ति द्राविड़ी ऊपजी, लायो रामानंद, प्रगट किया कबीर ने सप्तदीप नौ खंड।' इसलिए यह बात निर्विवाद है कि भक्ति की परंपरा दक्षिण और उत्तर भारत को जोड़ने वाली बड़ी परिघटना थी। महाराष्ट्र एक ऐसा क्षेत्र है जो उत्तर और दक्षिण भारत को जोड़ता है, जहाँ दोनों क्षेत्रों के प्रभाव दिखते हैं। इसे हर स्तर पर देखा जा सकता है, चाहे वह उसकी भाषा, राजनीति, साहित्य हो या फिर संस्कृति ही क्यों न हो। इसलिए कई बार समूचे भारत के घटनाक्रम के डायनेमिक्स को समझने की दृष्टि से महाराष्ट्र के घटनाक्रम का अध्ययन करना बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। उस विस्तार में न भी जाएँ तो यह बात अपने आप में दिलचस्प है कि मराठी की भक्ति परंपरा में सगुण और निर्गुण का भेद नहीं था। यह भी कह सकते हैं कि मराठी की सगुण परंपरा कुछ-कुछ वैसी ही क्रांतिकारी है, जैसे अपने यहाँ हिंदी में निर्गुण परंपरा को बताने की कोशिश कुछ लोग करते हैं। इसलिए उत्तर भारत और दक्षिण भारत के संबंध और इन्हें जोड़ने वाली कड़ी के रूप में महाराष्ट्र की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है।

(4) यह बात बिल्कुल साफ है कि जिसको लंबे समय तक मध्यकाल कहा जाता था, वह वास्तव में भारतीय इतिहास का आरंभिक आधुनिक काल है। इसके बारे में इतिहासकारों ने जो अध्ययन किया है और उनकी जो निष्पत्तियाँ आई हैं, उनसे यह बात साफ हो गई है कि इस काल की व्याख्या आरंभिक आधुनिक काल के रूप में ही की जानी चाहिए। इस तरह का अध्ययन करने वाले ऐसे इतिहासकार हैं, जिनका नाम आज की तारीख में दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित और बड़े इतिहासकारों में आता है। इनमें भारत और पश्चिम के इतिहासकार शामिल हैं। इसलिए उनके इस काम पर संदेह करने का कोई औचित्य समझ में नहीं आता। वास्तव में भारतीय इतिहास लेखन में यह एक जरूरी काम था, जो काफी पहले हो जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। इन इतिहासकारों ने दिखाया कि लोकभाषा के उदय के साथ अपने यहाँ भी उस दौर की शुरुआत होती है, जिसे हम इतिहास का आरंभिक आधुनिक काल कहते हैं।

आरंभिक आधुनिक काल में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था जिस प्रकार की थी, उसे पहले के इतिहासकार सामंती व्यवस्था कहते रहे हैं। इस

दृष्टि से रामशरण शर्मा का काम मशहूर है। लोगों को लगता था कि इतिहास के कुछ निश्चित चरण हैं। उन्हीं निश्चित चरणों से इतिहास गुजरता है। जैसे यूरोप में सामंत काल है तो भारत में भी सामंत काल होना चाहिए। यूरोप में पुनर्जागरण के साथ सामंत काल का अंत हो गया, लेकिन भारत में सामंत काल का अंत तब हुआ जब भारत में अंग्रेजी शासन कायम हुआ। यानी 19वीं सदी तक जो व्यवस्था थी, उसे सामंती व्यवस्था का काल कहा गया। इस पर भी इतिहासकारों ने काम किया है। विशेष रूप से हरबंस मुखिया का काम बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें यह दिखाने की कोशिश है कि पश्चिम की सामंती व्यवस्था जैसी थी, जिस तरह से वहाँ उत्पादन होता था, सामंत और किसान के संबंध यूरोप में जैसे थे, वैसे भारत में नहीं थे। इसमें एक उल्लेखनीय बात यह है कि हमारे यहाँ जमीन पर किसानों के अधिकार होते थे। यह सही है कि जमींदार के भी अधिकार होते थे। जमींदार या तालुकेदार के साथ-साथ जमीन पर किसानों के भी अधिकार होते थे। कुल मिला कर यह बात समझ में आती है कि भारतीय व्यवस्था को सामंती व्यवस्था कहना यूरोपीय व्यवस्था को ही आंख मूंद कर लागू करना है, जबकि यहाँ की व्यवस्था और यहाँ का तौर-तरीका पश्चिमी समाजों से काफी अलग था। इसलिए इसे गैर-सामंती व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित करने की कोशिश की गई है। इसका मतलब यह नहीं है कि यहाँ शोषण और भेदभाव नहीं था। ये सारी चीजें यहाँ थीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ जो शासन का तरीका था, इसको हम पश्चिमी ढंग की 'फ्युडल व्यवस्था' के रूप में नहीं समझ सकते। इसके लिए कोई और शब्द ढूंढना पड़ेगा। ऐसा करना मुश्किल लगता है, तो कम से कम यह किया जाना चाहिए कि यहाँ की व्यवस्था या उत्पादन संबंधों का जो वैशिष्ट्य है, उसको सामने लाने की कोशिश की जाए। अन्यथा हम वही गलती दोहराते रहेंगे, जो प्रारंभ में इतिहासकारों ने दोहराई। यानी पश्चिम में जैसा घटित हुआ वैसा ही भारत में भी घटित होता दिखलाने की कोशिश करते रहेंगे।

(5) यह कह पाना मुश्किल है कि लोग भक्त कवियों को भूल गए हैं। यह जरूर है कि पहले की तुलना में उनका प्रभाव कम हुआ है, क्योंकि दूसरी चीजों- फिल्म, मीडिया का प्रभाव बढ़ा है। स्वाभाविक है कि भक्त कवियों का जैसा प्रभाव पहले था, वैसा प्रभाव अब शायद नहीं रह गया है। इसके बावजूद भक्त कवियों की रचनाओं में जो मानवतावादी चिंतन परंपरा है, उन्होंने जाति और स्त्री के सवाल को जिस तरह से उठाया है, राजसत्ता के विरुद्ध लोकसत्ता की जैसी परिकल्पना पेश की, उन बातों की अनुगूंज कहीं न कहीं लोगों के भीतर अब भी बची हुई है। भक्तिकालीन कविता के भीतर से जो द्वंद्वात्मक स्वर उभर कर आता है, उसमें हिंदू बनाम मुसलमान का भाव नहीं के बराबर है।

समूचे भक्ति साहित्य में न 'हिंदू' की कोई स्पष्ट अवधारणा निहित थी, और न ही 'हिंदू' और 'मुसलमान' के बीच 'गैरियत' का भाव दिखाई पड़ता है। इसके बजाय एक ही संप्रदाय के अलग-अलग मतवादों को मानने वालों के बीच परस्पर आलोचना-प्रत्यालोचना का स्वर प्रधानता और बहुलता में था। सभी भक्तिकालीन संप्रदायों में आत्मालोचन एवं आत्मसुधार की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

'हिंदुइज्म' और 'इस्लाम' के बीच 'गैरियत' का भाव बाद की, उन्नीसवीं सदी में उपनिवेशवाद की गढ़ंत है। लिंग, जाति, संप्रदाय के प्रश्न तथा राजसत्ता और लोकसत्ता के पारस्परिक संबंध के संदर्भ में भक्ति काव्य की सार्थकता शायद कालांतर में कभी आमूल चूल सामाजिक परिवर्तन के कारण चुक जाए, लेकिन भक्त कवियों द्वारा हिंदुस्तानी संगीत के रूप में भारतीय समाज को दी गई नेमत की सार्थकता और प्रासंगिकता तब भी बनी रहेगी। क्योंकि हिंदुस्तानी संगीत का ऐसा चरित्र है कि उसने देश-काल, विचार से परे जाने वाली सार्वभौमिकता अर्जित कर ली है। अब उसे किसी

व्यवस्था विशेष से जोड़ कर देखना इस कला की अवमानना करना प्रतीत होता है।

खास तौर से ग्रामीण परिवेश के जो लोग आधुनिक ढंग की जीवन-शैली में रच-बस नहीं पाए हैं, लगता है कि उनके यहाँ अभी भी भक्त कवियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में बरकरार है। इस पर अब अध्ययन हो रहा है कि तमाम राजनीतिक कारणों से भक्तिकालीन कवियों का प्रभाव कैसे घटता-बढ़ता रहा है। उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी के जो साक्ष्य हमारे सामने उपलब्ध हैं, उनसे यह बात समझ में आती है कि उस शताब्दी में कबीर और तुलसी दोनों ही आम लोगों में लोकप्रिय थे। गांव के लोगों के बीच में जो पढ़े-लिखे नहीं थे, उनके बीच भी कबीर और तुलसीदास लोकप्रिय थे। कबीर की खासियत यह है कि कबीर हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों के बीच भी लोकप्रिय थे। लेकिन कबीर को लेकर अब जो अध्ययन हो रहे हैं, उनसे यह बात लगभग साफ हो गई है कि मुसलमानों के बीच कबीर का प्रभाव समाप्त हो चुका है। यह एक लंबी चर्चा का विषय है कि ऐसा क्यों हुआ?

(6) हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा- ये तीन महत्वपूर्ण आलोचक हैं, जिन्होंने भक्तिकालीन कवियों पर महत्वपूर्ण कार्य किए। इनकी मान्यताओं में जो अंतर हैं उनसे भी हिंदी जगत बहुत अच्छे से वाकिफ है। एक बात जोड़ने वाली जरूर है कि पिछले दशकों में भक्तिकालीन साहित्य पर दुनिया के पैमाने पर बहुत गंभीर काम हुआ है और उससे भक्तिकालीन साहित्य को, भारत में धर्म की परिकल्पना को, विभिन्न पंथों और संप्रदायों के पारस्परिक संबंधों को, सत्ता और धर्म के पारस्परिक संबंध को समझने में काफी मदद मिली है। पिछले वर्षों में प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कबीर पर जो पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की' लिखी, वह संभवत: हिंदी में केवल कबीर का ही नहीं, समूचे भक्ति साहित्य का अध्ययन करने की एक नई दृष्टि देती है।

(7) विश्वविद्यालयों में भक्ति साहित्य के शिक्षण की व्यवस्था बहुत खराब है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि हिंदी विभागों में ऐसे लोग ही नहीं बचे हैं, जो मध्यकाल पढ़ा सकें। ऐसे लोग नहीं हैं, जिन्हें ब्रजभाषा आती हो। मध्यकाल पढ़ाने वाले, मध्यकाल के साहित्य की अच्छी जानकारी रखने वाले, ब्रजभाषा जानने वाले, ब्रजभाषा से संबंधित काव्यशास्त्र जानने-समझने वाले लोग अब हिंदी में नहीं बचे हैं।

अब ज्यादातर लोग समसामयिक साहित्य थोड़ा-बहुत पढ़ते हैं, और उसी में शोध जैसा कुछ कर डालते हैं। इस तरह शोध की दृष्टि से भी अगर आप देखें, तो हमारे विश्वविद्यालयों में 20वीं शताब्दी पर ही ज्यादातर कथित शोध हो रहे हैं। यह चिंता सिर्फ हमारी नहीं है, बाहर के विद्वानों में शेल्डन पोलक भी इस विषय पर चिंता जाहिर कर चुके हैं। उनका कहना है कि भारत में अब ऐसे लोगों की कमी होती जा रही है जो एक साथ अनेक भारतीय भाषाओं के विद्वान हों।

यह विडंबनापूर्ण स्थिति होगी कि भारतीय भाषाओं को समझने वाले विद्वान भारत में न होकर केवल विदेशों में रह जाएँ। पुरानी भारतीय भाषाओं में जो साहित्य लिखा गया, जो ज्ञान और दर्शन की बातें लिखी गईं उनको समझने के लिए हमें विदेशी विद्वानों की मदद लेनी पड़े, यह बहुत दुखद और विडंबनापूर्ण है। लेकिन स्थितियाँ ऐसी ही बन रही हैं कि बहुत जल्द मध्यकालीन साहित्य को समझने के लिए हमें विदेशों में जाकर पढ़ना पड़ेगा।

न्यू एफ 14, हैदराबाद कॉलोनी, बी.एच.यू., वाराणसी, 221005, मो.9415201281

भक्ति काव्य के शिक्षण पर कई बार राजनीतिक और सांप्रदायिक भावनाएँ हावी हो जाती हैं

प्रमीला के पी

(1) भक्तिकाल के कवि धार्मिकता को व्यापक अर्थों में लेते थे। उन्होंने संस्कृत जैसी उच्च भाषा की शास्त्रोक्त बातों को जन भाषा में सरल बना कर उन्हें जन चेतना से जोड़े रखने का ऐतिहासिक और जागरणमूलक काम किया था। आज, 'धर्म' रिलीजन के अर्थ में सिमट गया है और धार्मिक वाचनों एवं व्यवहारों का आतंक देखने को मिलता है। भक्तिकालीन कवि जहाँ स्वांत व परांत में फर्क नहीं देखते थे, आत्मविमोचन के साथ लोकमुक्ति चाहते थे, इसके लिए राहों की खोज करते थे, वहाँ पर आज भक्ति के नाम पर केवल दिखावा, पाखंड, अंध-राजनीति एवं खंडित मानसिकता से प्रेरित अवसरवाद और अतिवाद देखने को मिलता है। यह चिंतनीय ही नहीं, शर्मनाक एवं खतरनाक भी है। एक वाक्य में कहें तो भक्तिकालीन कवियों की चेतना विकेंद्रीकृत लोकदर्शन को समेटने वाली थी तो आज का धर्म- आतंक, सत्ता हड़पने और दहशत फैलाने का राजनीतिक उपकरण है। भक्ति आत्मशांति और लोकमुक्ति की राह खोजने वाली जीवन-पद्धति रही है तो अब के धार्मिक नारे मनुष्यत्व से दूर हैवानी आक्रमण हैं। लोकबद्धता की जगह उनमें राजनीतिक बर्बरता दिखती है-'बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई।'

(2) समय और समाज के समायोजन के लिए भक्त कवियों की पद्धतियों में विविधता आई। यह इस विशाल प्रदेश के लोक जीवन की विविधता को सूचित करता है। भले ही कुछ संदर्भों में विश्लेषण के लिए निर्गुण-सगुण आदि विभाजन सुविधाजनक लगता है, पर इसके नाम पर मनुष्य के जीवन दर्शन या आध्यात्मिक खोज को विभाजित करके जातिवादी हिंसा भड़काने की जो अवसरवादी हरकतें होती हैं, वे सामाजिक जीवन के समग्र विकास के लिए बनाई गई आध्यात्मिक समझ के ठीक विपरीत जाती हैं। यह भारतीय जागरण और पुनर्जागरण को सिद्ध करता है- 'सो सुनि ज्ञान कथा मैं कीन्हा। लिखेउं सो प्रेम रहै जग चीन्हा।' इस तरह भक्ति साहित्य का मुख्य लक्ष्य रहा है प्रेम का प्रचार करना।

(3) देश में भक्ति की लहर दक्षिण से उत्तर की तरफ बही थी, मगर उत्तर की तरफ बहती हुई उस लहर में विविध पद्धतियाँ उभर कर आती या छूटती रही हैं। दक्षिण में अवर्ण तथा उपेक्षित लोगों की आवाजों के समायोजन का प्रयास आरंभ में कम रहा है।

आत्ममुक्ति की वैचारिकता सभी भक्त कवियों में है, मगर अवर्ण समुदायों और जंगल में बसे लोगों की आराधना या भक्ति की रीतियों की जैविक समग्रता व्यवस्थित विधियों में आम तौर पर नहीं दिखती है। यह मानना मुनासिब लगता है कि उच्च शिष्ट भक्ति की तुलना में देशज भक्ति की जैविक परंपराएँ भी रही हैं। इस भक्ति संवेदना में साधारण से साधारण चीजों, जैसे- पेड़, पत्थर तथा नदी और पहाड़ का महत्व है। ये आराधना के उपकरण से बढ़ कर यहाँ के लोगों के लिए आत्मशांति और जीवनयापन के मार्ग प्रस्तुत करने वाले शांतिदायक जागतिक तत्व थे। इस कारण आत्ममुग्धता से बढ़ कर उनकी भक्ति में सामाजिकता अधिक मुखर है। इन भक्त कवियों की दृष्टि दूरगामी थी- 'अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही/लागै धरम बतावै अधरम, बाकी सबै रही'।

(4) अनुभूति स्तर पर भक्ति का दर्शन मुक्ति की बात करता है। वह हर जीव में मनुष्यत्व की स्थापना के पक्ष में है। यह मनुष्य में जैविकता की खोज करने के साथ जीवन के उपयोग में आने वाले विविध संबंधों-संपर्कों की भी खोज करता है। इस भक्ति में मुक्ति आत्मस्थ नहीं है, वह सबके साथ मिलने वाली है। इस अर्थ में भक्ति की जैविकता, सदाचरणमूलक जीवन एवं मुक्ति-उन्मुख आध्यात्मिकता परंपरागत धार्मिक परंपराओं से भिन्न है। परवर्ती समय में सीमित व्याख्या आई व्यवहार धर्म को सामंती विचार से जोड़े रखने की सांप्रदायिकता भी इस देश में रही है। भक्त कवियों के जीवन दर्शन एवं वैचारिक योगदानों की चर्चा में सामंतवादी, संप्रदायवादी तथा जातिवादी अर्थों को हटा कर रखना उचित लगता है, हालांकि ऐसे वाचनों से परहेज रखना आज के युग में मुश्किल है। त्रासद है कि कविता और भक्ति के दर्शन पर इस समय गहन शोध करने वाले इन्सान जितने कम मौजूद हैं, इसके ठीक विपरीत सांप्रदायिक एवं सीमित कारणों पर बौखलाने व आग उगलने वाले उतने अधिक हैं-'हमहीं रावन हमहीं कंस। हमहीं मारा अपना बंस।'

(5) भक्ति कविता का असर आजकल कवियों, आलोचकों और इने-गिने पाठकों तक सीमित है। मनोरंजन के बल पर जीवित भक्ति विषयक संगीतमय गानों और तत्संबंधी व्यवसाय को अलग रखें तो भक्ति साहित्य का प्रभाव गौण ही है। अकादमिक दुनिया के कारण ही आज कविता थोड़ी-बहुत चर्चित रहती है। रामचरितमानस जितना पढ़ा या सुना जाता है, आज के मंदिरों में भक्ति विषयक अधुनातन गाने ज्यादा सुनाए जाते हैं। कविता की अपनी कोई जनसामान्य या व्यापक दुनिया अब बची नहीं है।

(6) इस देश की सभी भाषाओं के आलोचकों को भक्ति साहित्य ने लुभाया, आकर्षित किया जो उसमें सन्निहित ध्येय और दर्शन के अलावा उनकी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचियों, वैविध्यों तथा वैचारिक उद्वेलनों को प्रमाणित करता है। यह समय की विलक्षणता ही है कि कबीर जैसे भक्त कवि की दार्शनिक पुष्टि के बाद एक दिन लोग 'जाति पहचान' को महत्व देते दिखते हैं या 'जाति संबंधी चर्चा का शिकार' हो जाते हैं। फिर भी क्षमाशील तथा अध्यवसायी इन्सान के लिए भक्ति काव्य संभावनाओं का भंडार इसलिए है कि उसकी धरोहर और चिंतन की दिशाएँ काल के साथ अविच्छिन्न, अजस्र व सकारात्मक बहती हैं। हर कोण से देखने की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक संभावना भक्त कवियों में निहित है, पर देखने वाले की यदि नीयत सही नहीं है तो उससे एक बड़ी आफत निकल सकती है। मनुष्य की अभिव्यक्ति में कभी पूर्णता नहीं होती है, तभी साहित्य का निरंतर सकारात्मक पुनर्वाचन जरूरी लगता है। खास कर आध्यात्मिकता का वाचन दो-तरफा तलवार है। सकारात्मक परिणामों का इच्छुक व्यक्ति कभी सीमित या खंडित रास्तों पर आगे नहीं बढ़ता। उसके कार्य में आडंबरों और सांप्रदायिक सूचनाओं का स्थान नहीं होता, विवाद की जगह संवाद के गुण होते हैं। मनुष्य के मन की शांति एवं जीवन

प्रमीला के पी

श्रीशंकराचार्य विश्वविद्यालय, कालडी में कार्यरत। हिंदी, अंग्रेजी और मलयालम में लेखन और अनुवाद कार्य। हिंदी में नौ आलोचनात्मक पुस्तकों के अलावा हिंदी और मलयालम में अनुवाद की सात पुस्तकें।

की सदाशयता परम है तो वह एक खोज है जिसमें से होकर जन जागरण की नदियाँ फूटी हैं। उन्हें कलुषित किए बिना निरंतर सोद्देश्यपरक एवं पुरोगामी बहते हुए रखना महत्वपूर्ण है। इस अर्थ में मध्यकालीन भक्ति कविता परवर्ती साहित्य से ऊपर है। उसमें देशभाषाओं में अभिव्यक्त मनुष्य जीवन के आपसी प्रेम की आकांक्षाएँ हैं। उसमें आत्म का संबोधन है, पर उसके आत्म में 'सब' निहित रहते हैं। उसमें प्रेम और ज्ञान का सम्मिलन है। महाजनी सभ्यता के नीचे प्रचलित धार्मिक पाखंडियों और औपनिवेशिक लीक पर पली-बढ़ी एकात्मक राष्ट्रीयता की कारगुजारियों को जबरदस्त चुनौतियाँ और पुरोगामी अन्वेषणों पर मंथन जरूरी है, 'कहै कबीर सुख सहजि समाऊँ। आप न डरौ न और डराऊँ।'

(7) आधुनिक साहित्यिक अभिरुचियों में पले-बढ़े अध्यापकों और विद्यार्थियों की प्राचीन-मध्यकालीन देशभाषा साहित्य में रुचि कम है। कोई विद्यार्थी यदि रुचि दिखाता है तो भी अध्यापक की शिक्षण रीतियाँ, माने पहले ही तय करके रखी किसी दूसरे की टीका-टिप्पणियों पर आधारित बोधन रीतियाँ कम असर डालती हैं। भक्ति साहित्य के शिक्षण में कई बार मौजूदा राजनीतिक और सांप्रदायिक भावनाएँ भी जुड़ जाती हैं तो शिक्षा संकीर्ण बन जाती है। कौन नहीं जानता कि गवेषणा या अध्यापकीय आलोचना के नाम पर विश्वविद्यालयों में आज जो हो रहा है, उसमें बहुत कम गत्यात्मकता है। शिक्षा में अब इतिहास व पुराण, मिथक और जन विश्वास को खंडित करके राजनीतिक एवं सांप्रदायिक उपकरण बनाने का कार्य भी चलता रहता है। यह खस्ताहाल घिनौना है जो अध्ययनशील और चिंताशील मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध, व्यावहारिक जीवन एवं आध्यात्मिक चेतना के आगे मात्र वितृष्णा छोड़ती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज भक्ति की जगह औपनिवेशिक, राजनीतिक एवं सांप्रदायिक हैवानियत इस देश में प्रचंड है, अकादमिक क्षेत्र भी उससे अप्रभावित नहीं है। उदार और कट्टर दृष्टिकोणों की टकराहट के बीच संवेदनशील अध्ययनपरकता कहीं खो जाती है, 'पंडित मिथ्या करहु बिचारा!'

हाउस नं 324-ए, कालडी, एरनाकुलम, केरल 683574 मो.09497796733

भक्त कवियों का साहित्य समझने के लिए अब इंटरप्रेटर चाहिए

अरुण कुमार

आज की नकली धार्मिक भावना से भक्त कवियों की भावना की तुलना न करें तो अच्छा है। इसका कारण यह है कि कल तक मौलिक पुस्तकें पढ़ने का चलन था, काव्य की व्याख्या करने वालों पर भरोसा किया जाता था। अब के लोग सूर और तुलसी को पढ़ने के लिए नेट पर खोजते हैं। गूगल की कही हुई बात मान लें? अपनी कंपनी है नहीं, अमरीका की कंपनी पर भरोसा करना पड़ेगा।

भक्तिकाल के कवियों में सगुण-निर्गुण को लेकर तनातनी नहीं थी। स्वयं सूरदास ने अपने एक पद में दोनों को स्वीकार करते हुए लिखा है कि सगुण जन-सामान्य के लिए ज्यादा सुगम है। गुरु ग्रंथ साहिब में यह भेद कहाँ है? सूफी भी हैं। रावण शिव का भक्त था और तुलसी राम के भक्त थे, लेकिन जब तुलसी को रावण पर हमला करना था तो वे शिव से डर नहीं गए। आज के आधुनिक विश्वविद्यालय व्यावसायिक शिक्षा के केंद्र हैं। अभी मैनेजमेंट के विद्वानों ने कबीर, सूर में अपने लिए लाभदायक तत्व खोजा है। पिछले बीस वर्षों में हिंदी के छात्र और शिक्षक अवधी-ब्रजभाषा से कोसों दूर चले गए हैं। भक्त कवियों के साहित्य को समझने के लिए उन्हें इंटरप्रेटर चाहिए। अधिकांश लोग विमर्श और पहचान के संकट में फँसे हैं। शिक्षक और छात्र दोनों को इंटरप्रेटर चाहिए!

मीराँबाई रात में भक्त कवि दादू से मिलने जाती थीं। यह सामंती शिंकजे का खुला विरोध था। तुलसीदास मस्जिद में सोने की बात करते थे। अकबर के एक मंत्री रहीम उनके मित्र थे, यह सामंती बंधनों को तोड़ने के लिए बनी एकजुटता थी। मराठी कवि संत तुकाराम की एक कथा तिरुपति के बाला जी मंदिर के आस-पास प्रचलित थी, ककड़ी में कड़वाहट होने की कथा। तुकाराम के कई भजनों में तीर्थाटन करने से पवित्रता आने के भ्रम का खंडन है। उस दौर में राजा मंदिरों के निर्माण द्वारा अपना वैभव और शौर्य प्रकट करते थे। इसलिए तीर्थाटन की पवित्रता का यशोगान करते थे। कबीर ने 'मोको कहाँ ढूंढे रे बंदे' कह कर ईश्वर के मंदिर-मस्जिद से बाहर होने की बात कही। तुलसी ने गुरु को बड़ा माना। उन्होंने 'बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा/सुरुचि सुबास सरस अनुरागा' कहा। सूफी साहित्य में निहित समन्वय का भाव भक्ति को प्रेम की ऊँचाई देता है।

इतिहासविदों ने कालों का विभाजन तकनीकी आधार पर किया है, कह लें जीवन-शैली के आधार पर भी। तकनीक बदलने से जीवन-शैली बदलती है। आम तबका बदली जीवन-शैली को अपनाने से पीछे रह जाता है। किसान और शिल्पकार जीवन शैली में दलित बने रहते हैं।

8वीं शती के आसपास कवि सरहपा अपने एक पद में कर्मकांड के खिलाफ बोलते हैं, 'पंडिअ सअल सच्च बक्खाणइ', अर्थात पंडित शास्त्र बखानते हैं। वे नहीं जानते कि देह में ही बुद्ध बसते हैं। इस चेतना का विस्तार सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति धाराओं में मिलता है।

अरुण कुमार
हिंदी विभाग, राँची विश्वविद्यालय के प्रोफेसर। जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन पर विशेष काम।

आज हमारी धार्मिक भावना में संकीर्णता आई है। लोग मौलिक ग्रंथों को पढ़ने के बजाए रूढ़िवादी व्याख्याओं पर भरोसा करने लगे हैं। आज जन में साहस के बजाए डर का समावेश अधिक हुआ है।

सूरदास अपने एक पद में कहते हैं कि 'सगुण' मार्ग साधारण जन के लिए सुगम है, लेकन वे निर्गुण की उपेक्षा नहीं करते। सिखों के 'गुरु ग्रंथ साहिब' में कबीर, धन्ना, पीपा के साथ मीराँ भी हैं। मीराँ कहती हैं, मेरा प्रियतम निखिल विश्व में समाया हुआ है। सगुण और निर्गुण का भेद सख्त नहीं था। अगर ऐसा होता तो भक्ति आंदोलन समन्वयवाद की ओर नहीं बढ़ता। पूरे देश की यात्रा करने वाले रामानंद कर्मकांड के विरोधी थे और उनके शिष्यों में सगुण भी थे और निर्गुण भी।

आम जन आज के समय में भक्त कवियों को भूला नहीं है। रामचरितमानस को गायक मुकेश ने आवाज दी थी। सुखजिंदर ने कबीर की वाणी को आवाज दी, लाखों लोग सुनते हैं। तमिल विद्वान गोविंदराजन ने 'रामचरितमानस' के कुछ अंशों का तमिल में अनुवाद किया। इसलिए भक्ति काव्य को भूलने का प्रश्न नहीं उठता। यह जरूर है कि अब धार्मिक स्वभाव में पहले जैसी लोकतांत्रिकता नहीं रह गई है। इकबाल ने लिखा था, 'आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना/वो बाग की बहारें वो सबका चहचहाना'।

मोटे तौर पर कर और खेती पर आधारित व्यवस्था सामंतवाद है। ज्यादा से ज्यादा कर उगाही के लिए वर्णवाद था, छुआछूत था। अछूत के अछूत और ब्राह्मण के ब्राह्मण बने रहने से सामंतवाद की रक्षा होती है। कबीर का एक पद है, 'अब न बसहु इह गांव गुंसाई'। आगे चर्चा है कि इस गांव में कायस्थ (कायथ) समय-असमय करों की उगाही करते थे। कर नहीं देने वाले लोग गांव से निकाल भी दिए जाते थे।

भक्ति आंदोलन में एक तरफ सांस्कृतिक समन्वय पर जोर था और दूसरी तरफ, किसानों की दुर्दशा भी सामने लाई जा रही थी। अंग्रेज इतिहासकार मोरलैंड की पुस्तक 'इंडिया आफ्टर दी डेथ ऑफ अकबर' से पता चलता है कि मध्य काल के परवर्ती दौर में किसानों पर टैक्स का बोझ बढ़ गया था। फसल का आधा हिस्सा टैक्स के रूप में देना पड़ता था, फसल नहीं होने पर भी टैक्स देना पड़ता था। तुकाराम की पंक्ति है, 'अकाल से सूखा द्रव्य गया मान'। मलूकदास लिखते हैं, 'भूखहिं टूक, प्यासेहिं पानी/ एहि भगति राम मन माहिं।' कृषक को लेकर चिंता तुलसी में भी है और कबीर में भी। तुलसी का जोर समन्वय पर था, जिसे हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी महत्व दिया है। एक परंपरा सरहपा से चल कर कबीर और उनसे आगे जाती है। दूसरी परंपरा विद्यापति से चल कर तुलसी और उनसे आगे जाती है। दोनों का समन्वय गांधी के 'रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीताराम/ईश्वर अल्लाह तेरो नाम...' में मिलता है।

भक्त कवियों पर हुए कार्यों के दो सोपान मिलते हैं- आलोचकों द्वारा कवियों की रचनाओं की खोज और उनका मूल्यांकन। इस दिशा में काशी नागरी प्रचारिणी सभा और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद और नलिन विलोचन शर्मा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। रामचंद्र शुक्ल, हर प्रसाद शास्त्री, क्षितिमोहन सेन, पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, राहुल सांकृत्यायन, शिव प्रसाद सिंह आदि विद्वानों ने हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रंथों की खोज कर उनका संपादन किया। परशुराम चतुर्वेदी, गोविंद त्रिगुणायत, सीताराम चतुर्वेदी आदि कुछ अन्य महत्वपूर्ण नाम हैं।

2 के, 181, हाउसिंग कॉलोनी, बरियातु, राँची-834009 मो.9835196472

भक्त और ढोंगी में फर्क है

रवि श्रीवास्तव

सगुण और निर्गुण के बीच एक बुनियादी फर्क यह है कि सगुण में धार्मिक चेतना एक जीवन-मूल्य के रूप में सामाजिक व्यवहार का अंग है, जबकि निर्गुण धारा में धार्मिक भावना प्रायः राजनीति के बाजार में बिकाऊ माल की तरह है। तुलसीदास ने जब 'बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं' लिखा था, तब उन्होंने बिक्री वाले धर्म को ही ध्यान में रखा था। समझ लेना चाहिए कि बँधे-बँधाए धार्मिक कर्मकांड के विरोध में जो धर्म होता है वही लोकधर्म है। लोक धर्म के मूल में प्रेम है। भक्तिकालीन कवियों की भक्ति चेतना वर्णाश्रम धर्म की विरोधी है। आज के धर्मबाबाओं की धार्मिक भावना सांप्रदायिक है। तुलसीदास ने लिखा 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई।' भक्तिकालीन कवियों की धर्म चेतना में जो निहित उदार मानवतावादी प्रतिबद्धता है उसकी जगह आज की धार्मिक भावना में कट्टरता, असहनशीलता और आक्रामकता है।

भक्त कवियों की भक्ति चेतना का मूल स्वर है- 'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान' एवं 'जाति-पांति पूछै नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई'। आज इन पंक्तियों को कोई नहीं दोहराता। आज 'हरि' का स्थान राजसत्ता ने ले लिया है। तमाम अज्ञानी, ढोंगी और प्रपंची धर्मोपदेशक बन गए हैं। ऐसे ढोंगी-प्रपंची बाबा रामपाल, राधे माँ, हनीप्रीत और राम-रहीम हैं जो राजनेताओं के लिए वोट-बैंक का काम करते रहे हैं। प्रपंची पीर-पंडित कबीर के जमाने में भी कम नहीं थे। उन्हें ही लक्ष्य कर कबीर ने लिखा था, 'थोड़ी भगति बहुत अहंकारा। ऐसे शिरजां मिलै अपारा।' यह विवेक मध्यकालीन कवियों की भक्ति चेतना में मौजूद है। उसकी आज भी कीमत है, किंतु वर्तमान धार्मिक भावना बेशकीमती है! निरक्षर जनता की अज्ञानता का लाभ उठाकर अकूत संपत्ति जमा करना आज की धार्मिक भावना की परम सिद्धि है। 'मन लागो मेरो यार फकीरी में' वाला जमाना लद गया। अब ऐसा जमाना आया है जिसमें 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर परायी जाणे रे' या 'रघुपति राघव...' को सिंथेसाइजर से छानकर धार्मिक चेतना को मार्केटिंग स्लोगन में बदल दिया जाता है! सादगी और सरलता की जगह प्रदर्शनप्रियता एवं उन्माद ने ले ली है।

मध्यकाल के प्रायः सभी कवियों में राजसत्ता को चुनौती देने का नैतिक साहस बचा हुआ था जो आज सिरे से गोल है। मैं आज के जटायु संप्रदाय के काकभुषुंडियों की बात नहीं करता। मैं तुलसीदास की बात कहता हूँ। जरा इन पंक्तियों को पढ़ें जिनमें संदर्भ है हिंदुस्तान के बादशाह अकबर द्वारा तुलसीदास के बुलावा का। तुलसी ने दरबारी कवि बनना दूर दरबार में जाने तक से इनकार कर दिया- 'हम चाकर रघुबीर

के पटौ लिखौ दरबार। अब तुलसी का होहिंगे नर के मनसबदार।' आज है किसी में इतना साहस जो राजसत्ता के बुलावे को ठुकरा दे? उठा लिए जाएंगे या उठा दिए जाएंगे। आखिर दाभोलकर, पनसारे, कुलबुर्गी और गौरी लंकेश की हत्या भी तो किसी खास धार्मिक भावना से परिचालित व्यक्ति ने ही की थी। कुंभनदास ने भी फतेहपुर सीकरी जाना कहाँ स्वीकार किया था। लिखा, 'आवत जात पनहियां टूटि, बिसरि गयो हरिनाम'। कौन जाए दरबार में, ईश्वर भक्ति को छोड़कर! कबीर ने लिखा 'राम नाम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा।' ध्यान दें, यह एक मुसलमान कवि कह रहा है। आज रामभक्ति छूट जाए, राजभक्ति नहीं छूटने वाली। मीरा स्त्री-संत थीं। उन्होंने लिखा, 'मूरखजन सिंहासन राजा पंडित फिरतां द्वारां/मीरा रे प्रभु गिरधर नागर राणा भगत संहारा'। यह सामंती सत्ता को खरी चुनौती है या नहीं? दरअसल इंसान का व्यक्तित्व, जिसमें उसका सोच शामिल है जितना बड़ा होता है, उसका अहं उतना ही छोटा होता है। यह तब और आज की भक्ति का अंतर है।

मध्यकाल का सामाजिक ढाँचा क्या है? सामंतवाद। इस ढाँचे के भीतर एक ओर द्विज और शूद्र हैं, दूसरी ओर परजीवी भूस्वामी और शेष जनता-श्रमजीवी जन, जिनके अधिशेष श्रम (सरप्लस लेबर) के बल पर सामंतशाही टिकी हुई है। आप निर्णय करें, इनमें कौन-सा अंतर्विरोध शत्रुतापूर्ण है। अगर आप मानते हैं कि भक्ति आंदोलन अपने समय के सामाजिक अंतर्विरोधों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है तो आपको मानना पड़ेगा कि एक ओर परजीवी दरबारी संस्कृति है, दूसरी ओर शेष श्रमजीवी जनता की लोक संस्कृति है। अब इन दोनों के अंतर्विरोध महत्वपूर्ण होंगे या सगुण और निर्गुण के? सांस्कृतिक स्तर पर इनकी अभिव्यक्ति लोक बनाम दरबारी संस्कृति के बीच होगी न कि सगुण तुलसी बनाम निर्गुण कबीर के बीच।

सवाल निर्गुण-सगुण के गौण अंतर्विरोधों का उतना नहीं है जितना सामंती ढाँचे के भीतर आर्थिक और सांस्कृतिक अंतर्विरोधों के टकराव का है जो प्रमुख अंतर्विरोध है। क्या आप यह दावा कर सकते हैं कि तुलसी अपने समय के सामाजिक टकरावों से अनभिज्ञ थे? देखिए, हर कवि-साहित्यकार की अपनी जीवन शैली होती है। कबीर की मुखरता आपको आकर्षित करती है। तुलसी की काव्य शैली उत्साहियों को प्रभावित नहीं करती।

मुक्तिबोध ने भक्ति आंदोलन की जो व्याख्या की है उसकी कमजोरी यह है कि उन्होंने दरबारी संस्कृति से लोक संस्कृति को अलग नहीं किया। उन्होंने भक्ति आंदोलन को निर्गुण मत के विरुद्ध सगुण मत के वर्चस्वशाली वर्ग की विचारधारात्मक विजय के रूप में देखा, जबकि एक वर्ग के रूप में पंडित-मुल्ला-सामंत वर्गों की परजीवी संस्कृति एवं उत्पादक वर्गों की श्रमजीवी संस्कृति का विरोध बिल्कुल साफ है।

मान लिया, सगुण-निर्गुण में झगड़ा था। निर्गुणियों में सरहपा थे, दादू थे, कबीर, नानक और रैदास थे, धन्ना और पीपा थे। सगुण भक्ति में तुलसीदास के अलावा और कोई था या नहीं? सूफी संत भक्त थे या नहीं? सांस्कृतिक संगम वाले रहीम थे या नहीं? रहीम अकबर के नवरत्नों में एक थे। दरबारी संस्कृति के वर्चस्वशाली स्वभाव के उलट उन्होंने लिखा, 'चाह गई चिंता मिटी मनवा बेपरवाह, जिनको कछु न चाहिए वे शाहन के शाह'। इस सूफीयाना अंदाज और फकीराना मस्ती का 'सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस होय, गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय' से कोई रिश्ता है या नहीं? अरे भाई, भक्ति आंदोलन के जो भीतरी अंतर्विरोध हैं, उन्हें आप पहचान लेते हैं लेकिन उसमें पूरी मानवता की एकता का जो भावात्मक सूत्र है उसे नहीं पहचानते। परिणामस्वरूप कबीर चे-ग्वेरा बना दिए जाते हैं और तुलसी 'रेनीगेड काउत्स्की'। आप जब तक सगुण-निर्गुण, शुक्ल जी और द्विवेदी जी के झंझट से मुक्त नहीं होंगे और उन्हीं के सहारे किनारों पर

दौड़ते हुए वैतरणी पार करने के सपने पालेंगे, तब तक आप की दृष्टि खंड पर ही टिकी रहेगी। आप अखंड को समझ नहीं सकते। हमारा दुर्भाग्य है कि हमने गांधी के चरखे से कबीर के सूत-पूनी के संबंध को समझने की कोशिश नहीं की और न नरसी मेहता से गांधी के जीवन दर्शन को जोड़ा। सगुण-निर्गुण कविता की समन्वित भावधारा सांप्रदायिक दंगे के बाद व्यावसायिक राजनीति वाली कौमी एकता का नारा नहीं है। संतों-भक्तों ने सांप्रदायिक एवं जातिगत विद्वेष से मुक्ति को आरक्षण का मुद्दा नहीं बनाया। तुलसीदास ने बहुत पहले आने वाले बुरे समय के बारे में बता दिया था, 'द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन'। चेत जाइए। जैसे चेतेंगे वैसे सगुण-निर्गुण की एकता मानव धर्म की एकता प्रतीत होगी। जैसे ही आप इस एकता की खोज करेंगे, दूसरी परंपरा की खोज फुटकल खाते में समा जाएगी।

भारतीय राष्ट्रीय जागरण में भक्त कवियों की प्रेरणा रही है। 1920 के दशक में तत्कालीन संयुक्त प्रांत अवध क्षेत्र साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी किसान आंदोलन के प्रभावशाली नेता बाबा रामचंद्र का कार्यक्षेत्र रहा है। उन्होंने रामचरितमानस के दोहे-चौपाइयों का बड़ा रचनात्मक उपयोग किया है। ऐसा करते हुए वह रामचरितमानस के साथ उसकी मूल कथा को राष्ट्रीय भावना के अनुकूल मोड़कर उसके अच्छे-बुरे पात्रों और चरित्रों को नायक एवं खलनायक को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दे रहे थे। इसकी विस्तृत जानकारी इतिहासकार कपिल कुमार ने अपने शोध-आलेख 'रामचरितमानस का एक विद्रोही ग्रंथ के रूप में प्रयोग : अवध में बाबा रामचंद्र, 1920-1950' में दी है। ('साँचा', जून-जुलाई 1988) उसकी अधिक विस्तार से चर्चा कपिल कुमार ने अपनी पुस्तक 'पीजेन्ट्स इन रिवोल्ट' में की है। उन्होंने ठोस साक्ष्यों एवं तर्कों के आधार पर बताया है कि 1920-22 के अवध के किसान आंदोलन में बाबा रामचंद्र धार्मिक भावना को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से जोड़ने में अकेले नहीं थे। उनके अतिरिक्त

रवि श्रीवास्तव
राजस्थान विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के पूर्व-अध्यक्ष एवं सेवानिवृत्त प्रोफेसर।

मदारी पासी, फारुख अहमद, रहमत अलिशाह, जानकी दास जैस दूसरे लोग भी थे जिन्होंने गीता, कथा सतनारायण, कुरान और मिलाद शरीफ जैसे धर्मग्रंथों का उपयोग किसान आंदोलन को संगठित करने के लिए किया था।

महाराष्ट्र में एकनाथ हुए थे। उनके बारे में प्रचलित है कि पितरों के श्राद्ध में अहंकारी ब्राह्मणों के मना करने पर भी उनके स्थान पर हरिजनों को भोजन कराया था। एक तो जातीय निर्माण की प्रक्रिया से इन संतों-भक्तों में रिश्ता बनता है। बंद अर्थव्यवस्था वाला सामंतवाद जब टूटता है, तब अन्य चीजों के साथ भाषायी संपर्क भी सामने आता है, जाति व्यवस्था के बंधन ढीले पड़ते हैं।

पोतना तेलुगु के रचनाकार हैं। किसानी करते थे, राजाश्रय से दूर रहते थे। राजा सिंगमनीडु चाहते थे कि पोतना भागवत पूरी करने के बाद इसे उन्हें समर्पित करें और राजाश्रय में रहें। पोतना नहीं माने। वे राजसत्ता से प्रताड़ित हुए। भक्त कवियों में चुनौती देने और सहने की अप्रतिम शक्ति थी। इसी क्रम में मैंने तुलसीदास और कुंभनदास को ऊपर उद्धृत किया है। कबीर खैर इस मामले में विलक्षण थे। ये सब दरबारी संत-भक्त नहीं थे। इसलिए जिस जन संस्कृति का निर्माण उन्होंने किया पुरोहितवादी रूढ़ियाँ उसका स्रोत कभी नहीं रहीं। यह उनकी एक सामान्य वैचारिक भाव-भूमि है। यही भावधारा अखिल भारतीय स्तर पर मध्यकालीन भक्तों-संतों को बाँधे हुए है।

आप दक्षिण के आलवार भक्तों की संत परंपरा को लें। उसमें एक संत हुए थे, रामानुज (1037-1137)। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद वास्तव में उत्तर भारत के पुराने भागवत धर्म तथा दक्षिण

भारतीय आलवारों के रहस्यात्मक भावोन्माद के सम्मिलन का सुफल है। रामानुज ने शंकर के मायावाद को नहीं माना। रामानुज जिस दार्शनिक आंदोलन के नेता थे उसमें संसार की यथार्थता एवं जीव की शाश्वतता पर बड़ा जोर है। ये आगे चल कर उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का आधार बनीं। उन्होंने जिस ब्राह्मण धर्म, पुरोहितवाद, वर्णधर्म का विरोध किया उसका स्वाभाविक विकास नाथपंथी भक्ति साहित्य, सगुण-निर्गुण भक्ति है। रामानुज की परंपरा में दक्षिण में निम्बार्क (मृत्यु 1162 के आसपास) लोकाचार्य (1213) वेदांतदेशिक (1268-1369) हुए जिन्होंने उस विचार परंपरा को आगे बढ़ाया। इस परंपरा में दक्षिण में रामानंद (लगभग 1299-1410) हुए। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राधाकमल मुखर्जी ने लिखा है, 'रामानंद ने उत्तर भारत में एक सामाजिक-धार्मिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो अनेक दृष्टियों से बौद्ध धर्म के समान था। इस आंदोलन ने जात-पांत के बंधनों और धार्मिक कर्मकांड की कमर तोड़ दी, सभी जातियों और धर्मों के लोगों को बिना भेदभाव शिष्यत्व प्रदान करने की व्यवस्था की तथा धर्म प्रचारार्थ जनभाषा का उपयोग किया। इसी संदर्भ में दक्षिण में वीर शैवमत के उत्थान की बात आती है। इस धर्म की स्थापना एक जैन राजा के प्रधानमंत्री बसव ने की थी। बसव ने व्यावहारिक सहज ज्ञान तथा यथार्थवाद का समावेश करके, शैव मत को नया जीवन प्रदान किया।' (भारत की संस्कृति और कला)। भक्ति धारा में व्यावहारिक सहज ज्ञान और यथार्थवाद का समावेश कबीर ही नहीं, उत्तर भारत की समस्त निर्गुण कविता का मूलाधार है। दार्शनिक स्तर पर यह उत्तर और दक्षिण की संत परंपरा की परस्पर वैचारिक सन्नद्धता को दर्शाता है।

भक्तों को मध्यकालीन कवि कहिए। ध्यान रखिए, मध्यकाल एक सामाजिक व्यवस्था का ही नाम नहीं है, वह एक मूल्यबोध भी है जो धर्म के दायरे के भीतर सारी समस्याओं का समाधान ढूंढता है। इस मध्यकालीन मूल्यबोध का घेरा तब टूटता है, जब मनुष्य चमत्कारिक दैवी हस्तक्षेप से बाहर आकर भौतिक अस्तित्व से जुड़ी समस्याओं का काल्पनिक अथवा मनोगत समाधान खोजने के बजाय उसके वास्तविक हल के प्रति सचेत होता है। इस प्रक्रिया में अपनी शक्ति और शत्रु को पहचानकर पूरी सजगता के साथ सामूहिक प्रतिरोध की आवाज बनकर सामाजिक संघर्ष में उतरता है।

भक्तों-संतों की भावात्मक ईमानदारी के कई स्तर हैं। अगर आप उसे परखेंगे तो स्वतः प्रमाणित हो जाएगा कि संत साहित्य किसका पक्षधर है।

क्या भक्त-संतों को कोई भी राजनीतिक दल अपने खेमे में बैठा पाया है? काशी के ग्यानी-ध्यानी पंडितों के लिए तुलसीदास असह्य थे क्योंकि पाखंडी ब्राह्मणों की बेटी से तुलसीदास अपना बेटा ब्याहने के लिए तैयार नहीं थे! इस नकार का सीधा संबंध जात-पांत को अस्वीकार करने से है। आज जब भारतीय राजनीतिक संस्कृति ही जात-पांत की धुरी पर घूम रही है, चुनावों में जाति-बहुल क्षेत्र के आधार पर उम्मीदवार तय किए जाते हैं, तब कबीर-तुलसी-संतों-भक्तों- को कोई क्यों याद करे? उन्हें जनता नहीं भूली है, अवसरवादी राजनीतिक अभिजन जरूर भूल गए हैं, क्योंकि वे कवि इनके दूषित राजनीतिक मंतव्यों के फ्रेमवर्क में नहीं अँटते। मेरी माँ जब जीवित थीं, उन्हें 'रामचरितमानस' प्रायः कंठस्थ था। दरअसल भक्ति-साहित्य में जो कुछ भी जनतांजिक, उदारवादी, धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रीय या सहिष्णुता और सहनशीलता के तत्व हैं उन्हें जानबूझ कर हिंदुस्तान के जनमानस से मिटा देने का, भुला देने का प्रयत्न हो रहा है और जो कर्मकांड, अंधविश्वास और रूढ़ियाँ हैं, उन्हें चिंतन के केंद्र में लाया जा रहा है।

62, वनविहार कॉलेनी, तुंकरोड, जयपुर-302018 मो. 9829059126

संस्थानीकरण ने भक्ति को धर्मतंत्र में सीमित किया

आशीष त्रिपाठी

(1) सामान्यत: धर्म नियमों, रीतियों, अनुष्ठानों और विधि-निषेधों का एक समुच्च्य है, जो ईश्वर और ईश्वर-कथित विचारों की सुनिश्चित धारणाओं से बंधा होता है। धर्म में विधि-निषेधों का पालन करते हुए 'ईश-कृपा' प्राप्त की जाती है। इसके विपरीत भक्ति मूलत: एक भावना है, जो ईश्वर के प्रति होती है। इसमें नियमों, विधि-निषेधों, अनुष्ठानों की उपेक्षा की जाती है और ईश्वर के साथ मध्यस्थहीन संवाद होता है। धर्म ईश्वर से औपचारिक नियमबद्ध संबंध का विधान करता है तो भक्ति अनौपचारिक निजी आत्मीय संबंध का। धर्म और भक्ति के मध्य एक ही बुनियादी समानता है, दोनों ही ईश्वर की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं। इसके अलावा ऐसा कोई तत्व नहीं जिसके बारे में कहा जा सके कि उसे सभी धार्मिक संप्रदाय और सभी भक्ति संप्रदाय मानते हैं। यह संभव है कि कुछ भक्ति भक्ति संप्रदायों की मान्यताएँ कुछ धर्म संप्रदायों की मान्यताओं से मिलती हों। लेकिन सारे भक्ति संप्रदाय ऐसे हैं जिनका किसी भी धर्म संप्रदाय, उसकी चेतना और वैचारिकी से सीधा संबंध नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि भक्ति आंदोलन के उदय से पहले धर्मतंत्र जिस रूप में मौजूद थे, भक्ति आंदोलन के सामाजिक प्रभाव ने उन्हें वैसे ही नहीं रहने दिए। भक्ति आंदोलन के सामाजिक रूप इतने ताकतवर और महत्वपूर्ण थे कि धर्मतंत्र खुद को एक हद तक बाहर और भीतर से बदलने के लिए मजबूर हुए। धर्म के साथ संबंध के आधार पर देखा जाए तो भक्ति आंदोलन का एक हिस्सा वह है जहाँ धर्म भक्ति के सम्मुख झुकता है और भक्ति ब्राह्मणों की प्रधानता को स्वीकार कर लेती है। दूसरे हिस्से में ऐसी भक्ति चेतना और संप्रदाय भी लगातार मौजूद रहे हैं जिन्होंने ब्राह्मण धर्म के भेदभाव वाले नियमों की प्रधानता को कभी स्वीकार नहीं किया। इसके उदाहरण के तौर पर दक्षिण भारत के लिंगायत भक्ति आंदोलन और उत्तर भारत के निर्गुण भक्ति आंदोलन को लिया जा सकता है।

आज का धर्म भक्ति आंदोलन की अत्यंत महत्वपूर्ण रवायतों को अपने में समाहित करने के बावजूद अपनी विभेदक दृष्टियों के कारण उस तरह समतावादी नहीं रह गया है जैसा तब था जब वह भक्ति आंदोलन की चेतना के सम्मुख झुक रहा था। यह देखना भी जरूरी है कि आज धर्म भावना के साथ ही भक्ति का भी बाजारीकरण हुआ है। भक्ति आंदोलन ने

धर्मतंत्र से सांस्कृतिक और भावनात्मक विद्रोह करते हुए जिन प्रक्रियाओं और वैकल्पिक रास्तों की खोज की थी, वे सभी प्रकियाएँ और रास्ते आज बाजार में ऊँचे दामों पर बिक रहे हैं और लोकप्रिय हैं।

भक्ति संस्थानीकरण की प्रक्रिया में धर्मतंत्र के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर हुई है। ऐसी परिस्थिति में एक सात्विक, ईमानदार और नैतिक भक्ति भावना का वजूद में रह पाना कठिन हो जाता है और भक्ति सुनिश्चित धार्मिक नियमों, रीतियों, बाह्याचारों और अनुष्ठानों में सीमाबद्ध हो जाती है। आज धर्म और भक्ति दोनों का ही कट्टरपंथी राजनीतिक-सामाजिक समूहों द्वारा इस्तेमाल किया जा रहा है। विभिन्न भक्ति संप्रदायों के ज्यादातर लोग आज किसी कट्टर धार्मिक से ज्यादा सांप्रदायिक और धर्मोन्मादी होते हुए देखे जा सकते हैं।

(2) शंकर ने निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया था। इसकी आवश्यकता शायद इसलिए थी कि उनसे पहले भक्ति का प्रचार करने वाले आलवार मूलत: सगुणोपासक थे। आलवारों की उदार सामाजिकता, खुली सामाजिक दृष्टि, मानवीय मूल्यों के प्रति उनकी पक्षधरता को निस्तेज करने के लिए ही संभवत: शंकर ने निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया। दूसरी तरफ, आलवारों के भक्ति प्रारूप के समर्थक वैष्णव आचार्यों- रामानुज, वल्लभ, माध्व और निंबार्क ने शंकराचार्य के निर्गुण मतवाद का खंडन किया। इसलिए दार्शनिक रूप से निर्गुण और सगुण के मध्य यह द्वैत भक्ति-आंदोलन के प्रारंभिक समय से ही मौजूद था।

उत्तर भारत में जब कबीर और निर्गुण धारा के अन्य कवियों ने एक ज्यादा तर्क और न्यायपूर्ण समाज की मांग की तो इस क्रांतिकारी सामाजिकता के खंडन के लिए वल्लभ संप्रदाय के भीतर से विशेष रूप से नंददास और उनके पीछे सूरदास आदि कवियों ने 'सगुण' को स्थापित किया और 'निर्गुण' को खंडित किया। तुलसीदास ने इसे एक भिन्न तरह की दार्शनिक रणनीति के साथ ऊंचाई पर पहुँचाया। निर्गुण-सगुण का यह विवाद एक दार्शनिक विवाद है। इसके पीछे सामाजिक दृष्टियों का संघर्ष रहा है। शंकराचार्य और आलवारों का निर्गुण-सगुण मतभेद, कबीर और नंददास-सूरदास-तुलसीदास का निर्गुण-सगुण मतभेद मूलत: दो भिन्न तरह की परिस्थितियों में पैदा हुआ। एक तरफ 'सगुण' के माध्यम से आ रही उदारता का खंडन करने के लिए 'निर्गुण' का प्रतिपादन किया गया तो दूसरी तरफ 'निर्गुण' के माध्यम से आ रही ज्यादा लोकतांत्रिक और समावेशी सामाजिकता के खंडन के लिए 'सगुण' का इस्तेमाल किया गया।

इस प्रकार, कविता के विवेचन में सगुण-निर्गुण विभाजन की भले कोई भूमिका न हो, कविता के सामाजिक आधारों और प्रभावों की दृष्टि से सगुण भक्ति संप्रदायों और निर्गुण भक्ति संप्रदायों को अलग-अलग करके देखना होगा।

भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के निर्माण और उनके विशिष्ट भारतीय स्वरूप के निर्धारण में भक्ति आंदोलन की चेतना की हिस्सेदारी है। भारतीय नवजागरण में ज्योतिबा फुले, महादेव गोविंद रानाडे, ईश्वरचंद विद्यासागर, विवेकानंद, राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक की चेतना पर भक्ति आंदोलन की चेतना का गहरा प्रभाव है। इस देश के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख मुद्दा था भारतीय समाज को ज्यादा जनतांत्रिक बनाना और औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा कायम किए जा रहे सामाजिक विभाजन को ध्वस्त कर राष्ट्रीय एकता लाना। महात्मा गांधी और उनके साथी जो हिंदू-मुस्लिम एका को भारतीय राष्ट्र का बुनियादी तत्व मानते थे, वे ज्यादातर भक्ति आंदोलन की चेतना से प्रभावित थे। महात्मा गांधी की प्रमुख प्रेरणा संत प्राणनाथ और नरसी मेहता जैसे कवि हैं तो भीम राव अंबेडकर जो आजादी के सवाल को सामाजिक संरचना के संदर्भ में उठाते हैं, उनकी मूल प्रेरणाओं में कबीर जैसा

कवि मौजूद है।

(3) उत्तर भारत का सगुण भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत के सगुण आंदोलन से काव्यवस्तु, ईश्वर के स्वरूप और भाव प्रतिपादन, इन सभी स्तरों पर शिक्षा प्राप्त करता है। उनके मध्य एक वैचारिक आदान-प्रदान और एका देखा जा सकता है। सभी भक्ति शाखाओं पर श्रीमद्भागवत की वैचारिकी और भक्ति की शैलियों का प्रभाव देखा जा सकता है। दक्षिण में कोई ठोस निर्गुण भक्ति आंदोलन नहीं था। इसलिए उत्तर भारत के निर्गुण भक्ति आंदोलन पर दक्षिण के किसी भक्ति आंदोलन के प्रभाव की गुंजाइश नहीं थी। यह ठीक है कि उत्तर का निर्गुण भक्ति आंदोलन दक्षिण और उत्तर के सगुण भक्ति आंदोलनों से सीखता और संवाद करता है, लेकिन वह इनसे बंधा नहीं है। वह एक नई वैचारिकी निर्मित करता है। वह सूफियों से और बौद्ध धर्म के मौजूद रूपों-नाथों और सिद्धों से संवाद करता है। इस तरह वह एक ज्यादा बड़ी भारतीयता से संवाद करता है। निर्गुण भक्ति आंदोलन की विशिष्टता सिर्फ यह नहीं है कि वह ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को मानता है। बल्कि इससे अधिक यह है कि वह सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के प्रश्नों को अत्यधिक महत्व देता है। इसलिए वह पूर्ववर्ती गैर-भक्तिपरक परंपराओं से भी संवाद करता है, जिनमें भौतिकवादी आजीवक, निकुंठ और ऐसी अन्य परंपराएँ शामिल हैं।

भक्ति आंदोलन की विभिन्न धाराओं को हम प्रमुख रूप से दो हिस्सों में बांट कर देखते हैं। इन दो हिस्सों के भारतीय सामंतवाद के साथ अलग-अलग तरह के संबंध थे। दक्षिण के आलवारों और नायनारों का भक्ति आंदोलन विकसनशील सामंतवाद के समय का है। इतिहासकार रामशरण शर्मा ने भक्ति को सामंतवादी भावदृष्टि का प्रतिबिंब माना है। उन्होंने रैय्यत और सामंत के संबंध से भक्त और ईश्वर के संबंध को जोड़ा है। विकासशील

आशीष त्रिपाठी

युवा आलोचक। नामवर सिंह के साथ 'रामचंद्र शुक्ल रचनावली' के आठ खंडों का संपादन।

सामंतवाद के युग की भक्ति के बारे में रामशरण शर्मा का यह विचार बेहद महत्वपूर्ण है। दक्षिण में वैष्णव और शैव भक्ति आंदोलनों ने बड़े-बड़े संस्थान निर्मित किए, मंदिर और मठ बनाए। इन्होंने दक्षिण के सामाजिक जीवन में एक ताकतवर भूमिका प्राप्त कर ली। सामंतवाद की क्षयशील दशा में ये संस्थाएँ भक्ति की मूल सामाजिक समावेशिता और उदारता से धीरे-धीरे विच्छिन्न होती चली गईं। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के जन्म से पहले ही क्षयशील सामंतवाद बहुत ताकतवर हो चुका था। वह पुरानी उदारताओं को पूरी तरह त्याग चुका था। वह दक्षिण से उत्तर आई उस समय की ताकतवर भक्ति परंपराओं का भी अपने हित में इस्तेमाल कर रहा था। इसके कारण ऐसे विचारों और संप्रदायों का भी उदय हुआ, जिन्होंने इस सत्ता-संरचना और प्रकारांतर से सामंतवाद का विरोध किया। नानक, कबीर, दादू, रैदास, मीरा, पलटूदास, बुल्ले शाह तथा उनके अनुगामी संप्रदाय सामंतवादी धर्मतंत्र के खिलाफ थे।

(4) भक्त कवियों और विचारकों को भारतीय आधुनिकता का प्रारंभिक प्रस्तोता मानना चाहिए। वे भारतीय ढंग के पहले आधुनिक हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि बीसवीं शताब्दी की हमारी मॉडर्निटी और पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी की हमारी विचार परंपरा में सीधा संबंध है। इसलिए प्राक्-आधुनिक, अर्ली मॉडर्न या मॉडर्न कहने की तुलना में उन्हें भारतीय ढंग का आधुनिक कहना चाहिए। उन्हें भारतीय ढंग की आधुनिकता की शुरुआत करने वाले विचारकों के रूप में देखा जाना चाहिए।

यदि भारतीय आधुनिकता को शास्त्रीय आधुनिकता और देशज आधुनिकता में विभक्त किए जाने की आवश्यकता पड़े तो नि:संदेह भक्त कवियों को देशज भारतीय आधुनिकता का विचारक कहा जा सकता है।

भक्ति आंदोलन के पुरोधाओं के विचारों से भले यूरोपीय अर्थों में हमारा आधुनिकीकरण न हुआ हो, लेकिन भारतीय ढंग की एक अपनी आधुनिकता निर्मित होती है। भक्ति आंदोलन के भीतर दो मुख्य रुझान हैं– एक में भावना और आस्था प्रमुख है, दूसरे में भावना को महत्व देने के बावजूद तर्क नहीं छूटता। भक्ति की दूसरी परंपराएँ भी अपने मानने वालों के भीतर तार्किकता की चेतना विकसित करती हैं। मॉडर्निटी का एक अनिवार्य लक्षण लोकतांत्रिकता है। मध्यकालीन भारतीय समाज को ज्यादा जनतांत्रिक बनाने का संघर्ष आधुनिक युग से पहले भक्ति आंदोलन का यही हिस्सा करता है। इसलिए यह भारतीय आधुनिकता और भारतीय लोकतांत्रिकता की आधारभूमि तैयार करता है।

वे लोग जो समझते हैं कि कंपनी राज के आने से भारतीय आधुनिकता का निर्माण होता है, उन्हें इन बातों पर गौर करना चाहिए कि कंपनी राज के समानांतर ही विभिन्न भक्ति परम्पराएँ भारतीय समाज को ज्यादा तार्किक, बुद्धिसंगत, विवेकसंगत और लोकतांत्रिक बनाने का संघर्ष कर रही थीं।

कंपनी राज में 18वीं शताब्दी में मीर तकी मीर और 19वीं शताब्दी में पलटू दास, नजीर अकबरावादी और मिर्जा गालिब आदि कवि भारतीय समाज को आधुनिक और जनतांत्रिक बनाने का संघर्ष करने वाली पारंपरिक सामाजिक भक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन सभी पर निर्गुण भक्ति आंदोलन का सीधा और गहरा असर है।

(5) यह निश्चित है कि समकालीन भारत का बहुसंख्यक हिस्सा अब वैसा नहीं है, जैसा भक्त कवियों के जमाने में हुआ करता था। इसलिए बदली स्थितियों में भक्त कवि अपने किन विचारों, भावनाओं, नैतिकताओं और आचार संहिताओं के कारण अभी भी बचे हुए हैं, इसकी पड़ताल एक कठिन काम है। भक्त कवि अपने समय में एक वैकल्पिक जीवनचर्या प्रस्तावित कर रहे थे। जीवनचर्या को तुलसीदास 'रहनि' कहते थे। उनके काव्य में वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन दोनों के लिए कुछ आत्मीय निर्देश हैं। प्रेम, सहभाव, करुणा, अपरिग्रह, क्षमा, अहिंसा, कृतज्ञता, परोपकार, सहिष्णुता, अन्याय का प्रतिकार– उन निर्देशों के प्रमुख आधार हैं। उपर्युक्त मूल्य आज ज्यादा जरूरी हो गए हैं। लोलुपता, आत्मकेंद्रितता, धन संचय, स्वार्थपरता, हिंसा और प्रकृति विरोध के वर्तमान दौर में भक्त कवियों के आदर्श ज्यादा मानवीय और अधिक आत्मीय समाज बनाने में हमारी मदद कर सकते हैं।

आज के दौर में सामाजिक–राजनैतिक आंदोलनों को भी अपने उभार के लिए कबीर या रविदास की आवश्यकता है। इसका अर्थ यह है कि कबीर और रैदास में कुछ ऐसा है जो आज भी सामाजिक–राजनैतिक आंदोलनों की प्रेरणा बन सकता है। दूसरी तरफ, सांप्रदायिक आंदोलनों के दौर में भक्त कवियों का उपयोग करने की कोशिश हुई, लेकिन उनमें से किसी कवि का राजनैतिक उपयोग नहीं हो सका। तुलसीदास जैसे कवि का इस्तेमाल कर पाने में भी राम जन्मभूमि आंदोलन सक्षम नहीं था। वह तुलसीदास की पंक्तियों का इस्तेमाल नहीं कर सका। तुलसीदास की सिर्फ एक पंक्ति रामचरितमानस से ली गई, 'भय बिनु होहि न प्रीति।' इस तरह भय को राजनीतिक रूप से अनिवार्य बताया जाने लगा।

स्त्रीवादी आंदोलन में अपने 'आईकॉन' भक्त कवियों को महत्व दिया गया– अंडाल, अक्कमहादेवी और खासतौर पर मीरा को। भारतीय समाज में सामंतवादी रूढ़िवादिता जब तक शेष रहेगी, तब तक भक्त कवियों के आदर्शों की आवश्यकता होगी।

(6) भक्त कवियों के संबंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलोचना रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद

द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, गजानंद माधव मुक्तिबोध, रमेश कुंतल मेघ, विश्वनाथ त्रिपाठी और मैनेजर पांडेय ने की है। पिछले एक दशक में पुरुषोत्तम अग्रवाल और युवा आलोचकों में बजरंग बिहारी तिवारी ने भक्ति आंदोलन और भक्ति कविता के संबंध में महत्वपूर्ण कार्य और महत्वपूर्ण स्थापनाएं की हैं। इसके बावजूद अभी भी अनंत कार्य शेष है। भक्ति आंदोलन की चेतना, विभिन्न भक्ति आंदोलनों की वैचारिक विशिष्टता, भक्ति आंदोलन के सामाजिक प्रभाव और भक्ति कविता द्वारा निर्मित प्रारूपों का अध्ययन अब भी किया जा सकता है।

(7) विश्वविद्यालयों में साहित्य मात्र के अध्ययन की जो दशा है, वही भक्ति साहित्य के अध्ययन की है। साहित्य के अध्ययन के क्षरण के क्रम में भक्ति साहित्य के अध्ययन का भी क्षरण हुआ। जिन केंद्रों में साहित्य के अध्ययन की पारंपरिक प्रणालियाँ और आधुनिक प्रणालियाँ अभी भी एक साथ काम कर रही हैं, वहीं भक्ति साहित्य के अध्ययन की कोशिशें भी हैं।

भक्ति साहित्य मुख्यत: देश भाषाओं और लोक भाषाओं का साहित्य है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, जायसी, रैदास जैसे कवियों को समझने के लिए राजस्थानी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी के विभिन्न रूपों को समझना आवश्यक है। आज अकादमिकता का विस्तार हिंदी क्षेत्रों से बाहर भी है, जहाँ कोशिश करके गैर-हिंदी भाषी लोग खड़ी बोली बोलने का सामर्थ्य तो विकसित कर लेते हैं, पर वे ब्रज, अवधी, राजस्थानी, मैथिली की भाषिक समझ बनाने में उतने सक्षम नहीं होते। ऐसे में भक्ति कविता के अध्ययन में एक बड़ी कठिनाई उपस्थित हो चुकी है।

इतिहास, समाज विज्ञान, राजनीति, दर्शन आदि के क्षेत्र में उन्नति के साथ-साथ भक्ति कविता के अध्ययन के नए-नए द्वार खुले हैं। जहाँ के अध्यापक इन अध्ययनों से वाकिफ हैं, वहाँ विद्यार्थी नए ढंग से भक्ति कविता का अध्ययन कर पाने में सक्षम हैं और जिस जगह के शिक्षक वाकिफ नहीं हैं, वहाँ विद्यार्थियों को पुरानी अध्ययन प्रणालियों का ही सहारा लेना पड़ता है। यह भी देखा जा सकता है कि जैसे-जैसे भक्ति कविता सहित समूची पुरानी कविता की पारंपरिक प्रणालियों से हमारा संबंध कटता जा रहा है, हम उसको संपूर्ण आंतरिक पद्धति के साथ पढ़ने में अक्षम होते जा रहे हैं। अत: नए ज्ञान और परिप्रेक्ष्य के साथ हमें पारंपरिक प्रणालियों के साथ भी एक संवादी रिश्ता बनाना होगा, जिसमें अब धीरे-धीरे कमी आ रही है।

हमारी संपूर्ण आलोचना इधर समकालीन साहित्य पर केंद्रित है। यदि यही स्थिति रही तो धीरे-धीरे आदिकालीन, भक्तिकालीन और रीतिकालीन कविता को समझने वाले अध्येताओं का अभाव होता चला जाएगा।

एल-18, तुलसीदास कॉलोनी, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-221005 मो.9450711824

आलेख

महात्मा गांधी और भक्ति काव्य

गोपेश्वर सिंह

मोहनदास करमचंद गांधी को यदि भक्ति साहित्य का संस्कार नहीं मिला होता, वे महात्मा गांधी नहीं हुए होते। उनके निर्माण में देश-दुनिया के अनेक लोगों और पुस्तकों की भूमिका है, लेकिन सबसे बड़ी भूमिका भक्ति साहित्य की है। किसी व्यक्तित्व के निर्माण में दर्शन, विचारधारा आदि की भी भूमिका होती है। लेकिन सबसे गहरा और कोमल प्रभाव कविता का होता है।

गांधी पर भक्त कवियों के प्रभाव की छानबीन के लिए उनके जीवन-प्रसंग और लेखन को देखना जरूरी है। अपनी 'आत्मकथा' में गांधी मानते हैं कि धर्म का अर्थ 'आत्मज्ञान' है। उन्हें मंदिरों में जाने का मौका मिलता था। लेकिन वे वहाँ के वैभवशाली आयोजनों से कभी प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने अपनी नौकरानी रंभा की चर्चा की है जिसने उन्हें राम नाम जपना सिखाया। गांधी लिखते हैं, 'बचपन में जो बीज बोया गया, वह नष्ट नहीं हुआ। आज राम नाम मेरे लिए अमोघ शक्ति है। मैं मानता हूँ कि उसके मूल में रंभा बाई का बोया हुआ बीज है। 'रामायण' पाठ की चर्चा करते हुए गांधी ने लिखा है, 'जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा वह था रामायण का पारायण...। उस समय मेरी उम्र 13 साल की रही होगी, पर याद पड़ता है कि उसके पाठ में मुझे खूब रस आता था। रामायण श्रमण, रामायण के प्रति मेरे आत्मिक प्रेम की बुनियाद है। आज मैं तुलसीदास की रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।' गांधी के मन पर उस समय जो असर हुआ, उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है, 'एक चीज ने मन में जड़ जमा ली- यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीति मात्र का समावेश सत्य में है। सत्य को तो खोजना ही होगा। दिन-प्रति दिन सत्यता की महिमा मेरे निकट बढ़ती गई। सत्य की व्याख्या विस्तृत होती गई और अभी भी हो रही है।' हम जानते हैं कि गांधी जी की प्रार्थना सभा में बहुत सी प्रार्थनाएँ गाई जाती थीं। उनमें 'रामधुन' के साथ गुजराती संत कवि नरसीं मेहता का यह प्रिय भजन भी होता था- 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।'

इस भजन के जरिए गांधी के वैष्णव संस्कार का सामाजिकीकरण होता था। वैष्णव वह है जो किसी दीन-दुखी का दर्द समझता है। गांधी की राजनीति यदि लोकनीति की ओर हमेशा झुकी रही तो उसकी एक बड़ी वजह भक्ति साहित्य के आदर्शों का उनके जीवन में समावेश था। शब्द और कर्म की एकता, अपरिग्रह, त्याग, सत्य, सादगी, लोभ-लाभ रहित

जीवन का जो उनका आदर्श था वह नरसीं मेहता एवं अन्य भक्त कवियों के कितना करीब था! यह अकारण नहीं है कि उनकी प्रिय पुस्तकों की सूची में तुलसीदास की रामायण भी थी और यह अकारण नहीं है कि गांधी के कारण स्वतंत्रता सेनानियों में त्याग-बलिदान, सच्चाई, सादगी और सेवा का भाव बढ़ गया था।

गांधी के एक हाथ में कबीर का चरखा था तो दूसरे हाथ में तुलसीदास का रामचरितमानस। चरखा के जरिए उन्होंने गुलाम भारत को स्वावलंबन और श्रम की शिक्षा दी तो रामचरितमानस से उन्होंने राम राज्य की अवधारणा ली जो समतामूलक समाज-रचना का उनका सपना था। कबीर के लिए चरखा सिर्फ रोजी-रोटी का जरिया ही नहीं था, वह उनकी आध्यात्मिक साधना का आधार भी था। कबीर मानते थे, जैसे वे जुलाहा बन कर चरखा चला रहे हैं, वैसे ही ब्रह्म रूपी जुलाहा दुनिया रूपी चरखे को चला रहा है। इस प्रक्रिया में जो संगीत फूटता है वही अनहद नाद है। इसे साधक ही सुनते हैं। यूरोपीय रहस्यवाद की विशेषज्ञ और अंग्रेजी की कवयित्री एवलिन अंडरहिल ने 'पोयम्स ऑफ कबीर' (रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद की पुस्तक) की भूमिका में लिखा है कि कबीर अध्यात्म और उद्योग का मेल करते हैं और एक नई संस्कृति को जन्म देते हैं। गांधी भी जब चरखा कातते हैं तो सिर्फ उसे स्वावलंबन के औजार के रूप में ही नहीं देखते, वे उससे निकलता संगीत भी सुनते हैं। उसके एक-एक धागे में उन्हें कबीर की तरह ईश्वर दिखाई देता है। 1926 में 'यंग इंडिया' में लिखी अपनी टिप्पणी 'चरखे का संगीत' में वे लिखते हैं: 'मैं जितनी बार चरखे पर सूत निकालता हूँ उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूँ।' 'उद्योग और अध्यात्म' का मेल करने वाले कबीर ने श्रमशील और 'गार्हस्थ में संन्यास' की नींव रखी थी। आधुनिक युग में यह कोशिश गांधी ने की। उनका जीवन भी कबीर की तरह श्रम, संन्यास और गार्हस्थ की अद्भुत त्रिवेणी है!

गांधी कबीर के चरखा के जरिए एक ऐसी आर्थिक और रोजगार नीति प्रस्तावित करते हैं जो मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते का सुंदर और कोमल उदाहरण है। वे जानते हैं कि बड़े बांधों, बड़े कारखानों और बड़ी पूंजी के खेल से संचालित जो विकास है, वह थोड़े लोगों को संपन्न बनाती है और अधिक से अधिक लोगों को उजाड़ती है। गांधी की विकास की रूपरेखा को न मानने का परिणाम आज हमारे सामने है। गांव उजड़ रहे हैं, लोग विस्थापित हो रहे हैं और बेरोजगारों की फौज बढ़ती जा रही है। विकास का जो पूंजीवादी मॉडल है वह भारत जैसे देश में सफल नहीं होगा। इससे देश में ही आंतरिक उपनिवेश बनेंगे। नर्मदा घाटी में विशाल बांधों के निर्माण, वहाँ से विस्थापन की भारी समस्या और मेधा पाटेकर के संघर्ष को आज याद करें तो पूंजीवादी विकास नीति की व्यर्थता सामने आएगी और गांधी के कुटीर उद्योग का महत्व भी समझ में आएगा।

गांधी की आलोचना उनके जिन राजनीतिक मुहावरों के लिए हुई उनमें एक पद 'रामराज्य' है। गांधी समतामूलक भारत का स्वप्न देखते हैं। जाति, धर्म, अमीरी-गरीबी आदि का जो भेदभाव है, उसकी समाप्ति का स्वप्न ही वे 'रामराज्य' के रूप में देखते हैं। वे जातिगत भेदभाव के विरुद्ध थे। उनके रामराज्य में किसी तरह के भेद के लिए स्थान नहीं था। 'राम प्रताप विषमता खोई', तुलसी के इस आदर्श को वे जीवन और समाज में उतारना चाहते थे। वे अपने को सनातनी हिंदू मानते थे और अपने को वर्ण-व्यवस्था का समर्थक भी कहते थे, लेकिन वर्णों में जो भेदभाव है, उसके वे खिलाफ थे। वे भेदभाव रहित वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे। वे सबके लिए श्रम करना अनिवार्य मानते थे। श्रम-भेद के कारण ही जाति-भेद है। श्रम-भेद समाप्त होगा तो जाति-भेद भी समाप्त होगा, यह गांधी जानते थे। जाति-भेद समाप्त करने का यह उनका अपना तरीका था।

गोपेश्वर सिंह

प्रसिद्ध आलोचक और दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर। अद्यतन पुस्तक 'भक्ति आंदोलन और काव्य'।

'गांधी की कहानी' लिखने वाले लुई फिशर का कथन है, 'धर्म विहीन जिन्ना एक धार्मिक राज्य बनाना चाहते थे, जबकि पूर्णतया धार्मिक गांधी धर्मनिरपेक्ष राज्य चाहते थे।' भारत विभाजन पर अड़े जिन्ना को लुई फिशर ने भी समझाने की कोशिश की थी और विभाजन से उत्पन्न खतरे का संकेत किया था। तब तो जिन्ना ने उन्हें आदर्शवादी कहा। लुई फिशर ने लिखा है, 'गांधी जी राष्ट्रीयता की लेही से भारत को एक करना चाहते थे। जिन्ना धर्म की बारूद का उपयोग करके उसके दो टुकड़े करना चाहते थे।' मेरा खयाल है कि जिन्ना ने यदि सूफी कविता पढ़ी होती तो शायद वे दूसरे जिन्ना होते।

भक्त कवियों ने निजी मोक्ष को सामाजिक मोक्ष में बदल दिया था। 'कबीरा सोई पीर है जो जानै पर पीर' या 'परहित सरिस धरम नहीं भाई' का भाव उसका सर्वोपरि संदेश था। गांधी ने जिस राम को लिया वह मूर्तियों में बसने वाला दशरथ नंदन राम नहीं हैं– 'मेरा राम खुद भगवान ही है।' वे मूर्तिपूजा नहीं करते थे, 'मैं खुद मूर्तियों को नहीं मानता, मगर मैं मूर्ति पूजकों की उतनी ही इज्जत करता हूँ।' जिस राम को वे जपते थे, वह उनकी आत्मशक्ति एवं राष्ट्र सेवा का ही दूसरा रूप था। गरीब की सेवा में ही गांधी ने मोक्ष माना, 'रामनाम से मनुष्य में अनासक्ति और समता आती है। गरीब से गरीब लोगों की सेवा किए बिना या उनके हित में अपना हित माने बिना मोक्ष पाना मैं असंभव मानता हूँ।' इस सामाजिक मोक्ष का ही परिणाम था कि भक्ति आंदोलन में बड़ी संख्या में निम्न जातियाँ और स्त्रियाँ शामिल हुईं। और यही स्थिति गांधी के आंदोलन की भी है।

भारत का भक्ति साहित्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचनात्मक विस्फोट का सबसे उज्ज्वल अध्याय है। साहित्यिक रचनाधर्मिता का ऐसा भव्य उत्सव उसके पहले नहीं हुआ था। शायद बाद में भी नहीं हुआ। संस्कृत और फारसी जैसी भाषाओं से अलग भारत की दर्जनों भाषाओं की रचनात्मक पहचान इस काल में कायम हुई। देश के लगभग सभी प्रदेशों में भक्त कवियों की बाढ़ आ गई। भक्ति काव्य के रूप में भारतीय भाषाओं के जरिए भाषायी वैविध्य का भी जो सुंदर माहौल निर्मित हुआ था आज उस पर खतरा उपस्थित हो रहा है। भूमंडलीकरण ने न सिर्फ आर्थिक साम्राज्यवादी पकड़ भारत पर बनानी शुरू कर दी है, बल्कि उसकी गिरफ्त में भारत का भाषायी वैविध्य भी है। अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ संकट के दौर से गुजर रही हैं, जो कभी हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम थीं। भारत के भाषायी वैविध्य को बचाने का एक बड़ा आधार भारतीय भाषाओं में रचा गया भक्ति काव्य है।

इस भाषायी वैविध्य को बचाने की सबसे बड़ी लड़ाई गांधी ने लड़ी। वे मातृभाषा में शिक्षा और लिखा–पढ़ी के समर्थक थे। भक्तिकाल में जिस तरह मातृभाषाओं में रचनात्मक विस्फोट हुआ उसी तरह गांधी युगीन भारत में भी भाषायी जातीय विस्फोट हुआ। अंग्रेजी पढ़े–लिखे गांधी की मातृभाषा गुजराती थी। वे गुजराती के अच्छे लेखक थे। उनके जमाने के बहुत से नेताओं ने सिर्फ अंग्रेजी में लिखा–पढ़ी की। लेकिन गांधी गुजराती में लिखते रहे। उनके प्रिय लेखक रवींद्रनाथ ठाकुर

थे जो अपनी मातृभाषा बांग्ला में लिखते थे और दूसरों को भी अपनी मातृभाषा में लिखने के लिए प्रेरित करते थे। अपनी भाषा में रचनात्मक लेखन की शक्ति का पता गांधी को भी था और रवींद्र को भी।

अपने काव्य के जरिए एक सुंदर संसार का स्वप्न हमारे भक्त कवियों ने देखा था। हर बड़े कवि के पास अपना एक स्वप्न लोक है- कबीर का अमरपुर, जायसी का सिंघलद्वीप, सूर का वृंदावन, तुलसी का रामराज्य। रैदास के सपने का तो कहना ही क्या! 'बेगमपुरा शहर को नाउ'- जब वे कहते हैं तो एक ऐसे संसार की प्रस्तावना रखते हैं जो दुख रहित है ही, इतना अनुशासित है कि वहाँ किसी थानेदार, किसी बादशाह की जरूरत नहीं है। ऐसा स्वप्न 19वीं शताब्दी में मार्क्स ने देखा था, जब उन्होंने वर्ग विहीन और राज्य विहीन समाज का प्रस्ताव दिया था। ऐसा स्वप्न 20वीं सदी में महात्मा गांधी ने 'रामराज्य' के जरिए देखा था जो किसी भी तरह के भेद भाव से रहित था।

रवींद्र का गीत 'एकला चलो रे' गांधी के 'अभय मंत्र' का ही दूसरा नाम है। साहित्य और समाज में 'अभय' की यह विरासत टैगोर और गांधी को भक्ति काव्य परंपरा से मिली थी! यू. आर. अनंतमूर्ति ने 'एकला चलो रे...' गीत में अकेले व्यक्ति का जो बिंब रचा गया है उसकी तुलना गांधी के दांडी मार्च से की है और कहा है कि साहित्य में जब बड़े बिंब आते हैं तो समाज में भी देर-सवेर उसकी परिणति दिखाई पड़ती है। दांडी के समुद्र में गांधी ने एक मुट्ठी नमक उठा कर दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्य को चुनौती दी थी। सामने समुद्र और क्षितिज का अनंत विस्तार था और आकाश की ओर तनी हुई गांधी की मुट्ठी थी। साहित्य और समाज के इन बड़े बिंबों को याद कीजिए, ये भारत और भारतीय जन के मुक्ति के बिंब हैं।

भारत विभाजन के आगे-पीछे सांप्रदायिक दंगों में देश जब जलने लगा, तब उस दौर के नेताओं में अकेले गांधी थे जो घायल हो रही मनुष्यता को बचाने में लगे रहे। जब भारत और पाकिस्तान के सभी बड़े नेता 'जश्न-ए-आजादी' में मशगूल थे, अपने थोड़े से साथियों के साथ अकेले गांधी नोआखाली में जान हथेली पर लेकर दंगे की आग में जल रहे लोगों के बीच घूमते रहे। उनकी टोली पर हमले हो रहे थे, सबको जान का खतरा था, लेकिन गांधी अभय होकर लोगों की प्राण-रक्षा में जुटे रहे। वैसे माहौल में गांव-गांव घूमते हुए गांधी और उनके साथी 'रामधुन' और 'वैष्णव जन तो तेने कहिए...' के साथ टैगोर का गीत 'एकला चलो रे...' भी गाते थे। इन गीतों के जरिए वे भय से ग्रस्त समाज में अभय का संचार कर रहे थे। गांधी के यहाँ अभय का जो भाव है, उस विरासत की कड़ी भक्ति काव्य से जुड़ी हुई है।

गांधी के अंतिम वर्षों में लगातार उनके साथ रहने वाली उनकी प्रपौत्री मनुबेन गांधी लिखती हैं, 'बापू की नोआखाली की सच्ची यात्रा चंडीपुर से शुरू हुई। उस दिन चलने के पहले कई बहनों ने बापू को तिलक किया और सबने प्रार्थना की। बापू की सूचना थी कि उस दिन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' भजन गाया जाए। (यह भजन कभी प्रसंग से ही गाया जाता था, हमेशा नहीं।) लेकिन उसमें इतना फर्क कर दिया जाए कि हर कड़ी पर सिलसिले से 'वैष्णव जन' की जगह एक-एक बार 'मुस्लिम जन', 'ख्रिस्ति जन', 'शीख जन', 'पारसी जन', 'हरिना जन' रखा जाए। उन्होंने खुद भी गाने में सूर मिलाया था।' नोआखाली की ओर गांधी की यात्रा के प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए मनुबेन आगे लिखती हैं, 'चंडीपुर से ठीक सुबह 7.30 बजे एक हाथ मेरे कंधे पर रखे और दूसरे हाथ में डंडा लिए नारियल और सुपारी के वन में सबसे पहले कविवर टैगोर का 'एकला चलो रे' गीत गाते हुए बापू ने अपनी यात्रा शुरू की-

जदि तोर डाक शुने केऊ ना आसे
तबे एकला चलो रे!
एकला चलो, एकला चलो,

एकला चलो रे...!

हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने प्रसिद्ध निबंध 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' में लिखते हैं, 'इस देश में हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ब्राह्मण हैं, चांडाल हैं, धनी हैं, गरीब हैं- विरुद्ध संस्कारों और विरोधी स्वार्थों की विराट वाहिनी है... इन समस्त विरोधों और संघर्षों से बड़ा और सबको छाप कर विराज रहा है मनुष्य। इस मनुष्य की भलाई के लिए आप अपने आप को निःशेष भाव से देकर ही सार्थक हो सकते हैं। सारा देश आपका है, भेद और विरोध ऊपरी है, भीतर मनुष्य एक हैं।' इसके बाद वे कबीर को याद करते हैंः

कबीरा इस संसार को समझाऊँ कै बार।
पूंछ जु पकड़ भेद का, उतरा चाहे पार।।

मनुष्यों के बीच भेदभाव रख कर इस भव सागर से मुक्ति संभव नहीं है। यही संपूर्ण भक्ति काव्य का निष्कर्ष है और यही गांधी के कर्म एवं जीवन का भी निष्कर्ष है। उनकी भक्ति निर्गुण-सगुण के मेल से बनी ऐसी भक्ति थी जिसमें सभी वर्गों और धर्मों की समाही थी। वे निर्गुण भक्ति के सगुण रूप थे।

हिंदी में निर्गुण-सगुण विवाद और कबीर-तुलसी विवाद को जरूरत से अधिक महत्व खींचा गया। निर्गुण-सगुण का अंतर तो है लेकिन वह भक्ति काव्य का केंद्रीय भाव नहीं है और न उसके जरिए अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन का सही पता-ठिकाना मिलता है। असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, उड़ीसा के पंचसखा, महाराष्ट्र के वारकरी आंदोलन और दक्षिण के भक्ति काव्य के जरिए जिस अभेदमूलक मानवीय संसार की रचना होती है उसे बार-बार समझने की जरूरत है। भक्ति काव्य का प्रभाव उस समय से लेकर आधुनिक काल तक हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पर है और उसे बनाए रखने की जरूरत है। मराठी के लेखक भालचंद नेमाड़े ने वारकरी आंदोलन पर लिखते हुए जो लिखा है वह संपूर्ण भक्ति आंदोलन पर लागू होता है। वे लिखते हैं, 'साहित्यिक संस्कृति का कोई अध्येता वारकरी आंदोलन में विकसित हुई असाधारण अभिव्यक्त शैली की उपेक्षा नहीं कर सकता। भारतीय मन की सर्जनशीलता का पिछले एक हजार वर्ष में सर्वाधिक अर्थपूर्ण उद्रेक ही भक्ति मार्ग का आंदोलन है। 17वीं सदी की शिवा जी की राजनीति से लेकर 20वीं सदी के महात्मा गांधी तक के- भारतीय उप-महाद्वीप के विभिन्न सामाजिक और राजनैतिक विद्रोही आंदोलनों पर इन संप्रदायों का सर्जनशील प्रभाव कम-अधिक हुआ है।'

दिनकर ने अपनी पुस्तक 'शुद्ध कविता की खोज' की भूमिका में लिखा है कि क्रांति, कविता और ईश्वर को जीवन के समुच्चय में प्रवेश किए बिना नहीं समझा जा सकता। भक्ति काल की कविता ईश्वर से संबंधित है, पर वह क्रांति भी है और कविता भी। इसके लिए जीवन के विस्तार और गहराई में उतरने की जरूरत होती है। भक्ति संपूर्ण जीवन-दर्शन है। उसके संस्कार से निर्मित गांधी का जीवन और जीवन-संदेश भी एक संपूर्ण दृष्टि है। भक्ति को भक्त कवियों ने चार वर्णों से ऊपर पांचवाँ वर्ण माना और नए समाज का स्वप्न देखा। भक्ति काव्य से प्रभावित गांधी भी अपने 'सुराज' में ऐसे ही समाज का सपना देखते हैं।

रेमंड विलियम्स ने भविष्यवाणी की थी कि समाजवादी व्यवस्था में कला की अलग से जरूरत नहीं रह जाएगी, क्योंकि लोग स्वयं ही कला हो जाएंगे। मालूम नहीं, उनकी यह भविष्यवाणी सच साबित होगी या नहीं। इतना तय है कि भारत में जो भक्ति साहित्य रचा गया उसका साक्षात्कार जिसने भी किया वह स्वयं कविता हो गया। गांधी हमारे समय में भक्ति कविता के चलते-फिरते उदाहरण थे। वे बीसवीं शताब्दी में भक्ति काव्य के आधुनिक भाष्य थे।

38/4, छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007 मो.8826723389

तिब्बती कविताएँ

तेंजिंग सुनड्यू

युवा तिब्बती कवि, लेखक और राजनीतिक कार्यकर्ता। तिब्बत की आजादी के आंदोलन में सक्रिय। चीन और भारत में तिब्बत का मामला उठाने की वजह से कई बार जेल जा चुके हैं। माता-पिता भारत में बसे तिब्बती शरणार्थी। कविताओं के लिए अनेक साहित्यिक सम्मान।

बंबई में तिब्बती

बंबई में तिब्बती
विदेशी नहीं होता
वह चीनी ढाबे का रसोइया है
हाँ, लोग समझते हैं
वह बीजिंग से भाग कर आया चीनी है
परेल ब्रिज के नीचे
गरमियों में स्वेटर बेचता है तिब्बती
लोग समझते हैं शायद कोई रिटायर बहादुर है
बंबई में तिब्बती
थोड़े से तिब्बती लहजे में
फर्राटे से बंबइया हिंदी में गाली बकता है
अगर भूल जाता है कोई लफ्ज
इस्तेमाल कर लेता है तिब्बती
जिसे सुन कर हँस पड़ते हैं पारसी
बंबई में तिब्बती
पसंद करता है 'मिड-डे' पढ़ना
रेडियो पर गाने सुनना
उसे तिब्बती गाने की उम्मीद नहीं होती

लाल बत्ती पर पकड़ता है बस
चलती ट्रेन में कूद कर चढ़ता है
लंबी अंधेरी गलियों से गुजर कर
अपनी खोली में आराम करता है बंबई में तिब्बती
उसे गुस्सा आता है
जब देख कर उसे हँसते हैं लोग
पुकारते हैं- चिंग चौंग पिंग पौंग
अब थक चुका है बंबई में तिब्बती
चाहता है सोना, थोड़े सपने देखना
ग्यारह बजे की विरार फास्ट पर
पहुँच जाता है वह हिमालय
सुबह की लोकल
वापस ले आती है उसे चर्चगेट
महानगर में, नए साम्राज्य में।

धर्मशाला की बारिश

धर्मशाला में जब बारिश होती है
बूंदें पहन लेती हैं मुक्केबाजी के दस्ताने
टिन वाली छत पर गिरतीं
हजारों-हजार बूंदें
पीटती हैं छत को बेतहाशा
छत के नीचे अंदर ही अंदर
सुबकता है मेरा कमरा
भिगो देता है मेरा बिस्तर मेरे कागज

कभी-कभार चालाक बारिश
कमरे के पीछे से
घुस आती है चुपके-चुपके
धोखेबाज दीवारें हल्के से उठा देती हैं
अपनी एंड़ी
घुस आता है मेरे कमरे में एक नन्हा सा सैलाब

टापू पर बसे मुल्क की तरह
बिस्तर पर बैठा
देखता हूँ बाढ़ में डूबे अपने देश को
आजादी पर लिखे कुछ फुटकर नोट्स
जेल में बिताए दिनों की यादें
कॉलेज के दोस्तों की चिट्ठियाँ
ब्रेड के टुकड़े, मैगी के लच्छे
बलबला कर आते हैं पानी की सतह के ऊपर
जैसे अचानक वापस आ गई हो कोई
भूली हुई याद

तीन महीने मानसून की यातना के बाद
दिखते नुकीली पत्तियों वाले देवदारु के पेड़
ढलते सूरज की रोशनी से दमकता
बारिश में धुला हिमालय
बंद नहीं होती जब तक बरसात
रुक नहीं जाता पीटना कमरे की छत को
सांत्वना देना होगा अपने को
टिन की छत देख कर उन्हें
जो लगे हैं काम पर अंग्रेजों के समय से
शरण दी गई है यहाँ न जाने कितने बेघरों को
अब कब्जा है इस पर
नेवलों, चूहों, छिपकलियों और मकड़ियों का
छोटा-सा किराएदार मैं भी हूँ
किराए के कमरे को घर कहना
बनाता है विनम्र हमें
अस्सी साल की कश्मीरी मकान-मालकिन
नहीं लौट सकती अपने घर को
खूबसूरती की प्रतिस्पर्धा होती है हमारे बीच
कहो कश्मीर या तिब्बत
तिब्बत या कश्मीर?

हर शाम लौटता हूँ किराए के कमरे में
लेकिन मरूंगा नहीं इस तरह मैं
निकलने का कोई तो रास्ता होगा?
अपने कमरे की तरह रोऊंगा नहीं मैं
रो चुका हूँ बहुत कैदखाने में
निराशा के छोटे पलों में

कोई तो रास्ता होगा यहाँ से निकलने का
रो नहीं सकता मैं
बहुत नम है मेरा कमरा पहले से।

अनुवाद : राजेश कुमार झा
मो. 9810216943

एक व्यक्तिगत खोज

लद्दाख से
नजर भर की दूरी पर है तिब्बत
वे कहते हैं-
उस काले टीले से
डुम्से पर दिखता है तिब्बत
पहली बार मैंने देखा
अपना देश तिब्बत

हड़बड़ी में की गई गुप्त यात्रा में
मैं वहाँ गया उस ढेर पर

मैंने मिट्टी को सूंघा

धरती को खरोंचा
मैंने सुनी शुष्क हवाओं
और जंगली बूढ़े सारसों की आवाज

मैंने सीमा नहीं देखी
मैं कसम खाकर कहता हूँ
वहाँ ऐसा कुछ नहीं था
जो यहाँ से अलग हो

मुझे नहीं पता
मैं वहाँ था या यहाँ
मुझे नहीं पता
मैं यहाँ था या वहाँ

वे कहते हैं
क्यांग हर जाड़े में यहाँ आते हैं
वे कहते हैं क्यांग
हर गर्मी में वहाँ जाते हैं!

अनुवाद : अवधेश प्रसाद सिंह

तेंजिंग राबगा

गल रही दीवार

कभी-कभी जीवन बेवजह टीसता है
चमकता सूरज दिखाता नहीं आपका पथ
वसंत के फूल से गायब होती है सुगंध
झूमते पेड़ नहीं देते आपको अपनी छाया

कभी-कभी जीवन बेवजह टीसता है
दिन की रोशनी धुंधला जाती है
भीतर के तूफान से
लोगों को ताकती हुईं भावशून्य आंखें
ठहर जाती हैं दीवार पर
दीवार गल रही है दिन की तेज धूप में
दरारें फैल चुकी हैं बुनियाद तक

जमींदोज आत्मा अछूती है सूर्य की किरणों से
हवा से, ताजगी से जो फैली होती है चारों ओर
दम घुट रहा है पर मरी नहीं है आत्मा
ऐसी ही दबी पड़ी है
हरी काई के नीचे

कभी-कभी जीवन बेवजह टीसता है
जब उगता सूरज मन को खुशियों से नहीं भरता
उसकी किरणें तन को नहीं हुलसातीं
आशाओं से
भोर में चिड़ियों की चहचहाहट
कानों में नहीं घोलती जीवन का संगीत
जब आप दिन की शुरुआत
पिछले दिन के लिए पछतावे से करते हैं

कभी-कभी जीवन बेवजह टीसता है
जब भीतर का दर्द जीवन का अंग बन जाता है
आप वैसा जीवंत महसूस नहीं करते
जैसा पहले किया करते थे
आपकी प्रत्येक सांस
भीतर के दर्द को उभारती है
जब प्रत्येक पल मानो
आपको गुजरे पल की याद दिलाता है

कभी-कभी जीवन बेवजह टीसता है
जब आप भीतर से फटने लगते हैं
काई लंबे समय से जम रही होती है
दरारें समय के साथ
चौड़ी होती जाती हैं
और बुनियाद लड़खड़ाने लगती है
आप सिर्फ यही कर सकते हैं
सबकुछ टुकड़े-टुकड़े होकर गिरते हुए देखें
जो फिर कभी नहीं जुड़ सकते
कभी नहीं।

अनुवाद : अवधेश प्रसाद सिंह
मो.09903213630

पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम

(उपन्यास : भाग - पंद्रह)

एकांत श्रीवास्तव

कुंज और प्रेम ने झुककर कलाम चाचा के पैर छुए।

'खुदा तुम दोनों को सही सलामत रखे'- बाबा यानी कुंज के कलाम चाचा ने आकाश की ओर हाथ उठाकर दोनों के लिए पाक परवर दिगार से दुआ माँगी।

बाबा गाँव-गाँव घूमते हुए कल ही चँदिया पहुँचे हैं। इस बार बहुत दिनों बाद उनका आना हुआ है। चँदिया में अपनी पसंदीदा जगह में उन्होंने डेरा डाला है- तालाब के किनारे; पीपल के पेड़ के नीचे। कुंज और प्रेम भी बाबा के सामने पीपल की उभरी हुई जड़ पर बैठ गए हैं।

कुंज ने प्रेम से वादा किया था कि इस बार कलाम चाचा चँदिया आएँगे तो वह ज़रूर प्रेम को उनसे मिलवाने ले चलेगा। और अगर मुमकिन होगा तो वह रेहाना का कपड़े का लाल जूता भी दिखाएगा जिसे बाबा अपने कंधे पर झोलीनुमा गठरी में इतने बरसों से लिये-लिये फिर रहे हैं- इस उम्मीद में- कि दुनिया गोल है और कभी न कभी, कहीं न कहीं रेहाना उन्हें ज़रूर मिलेगी। खुदा बड़ा कारसाज है। उनकी रेहाना ज़रूर ज़िन्दा है और इसी दुनिया में कहीं महफूज है। इसी उम्मीद में बाबा की साँसें चल रही हैं; इसी उम्मीद में दुनियावी तूफान में भी उनकी जीवन-ज्योत थरथराती है; काँपती है; पर बुझती नहीं। लगातार वह जल रही है।

जब भी प्रेम की उमर की नवजवान कोई लड़की उनसे मिलने आती तब वे रेहाना की चर्चा ज़रूर करते और उसे अपनी बिटिया की लाल जूती भी दिखाते। जूती देखकर और कलाम चाचा की दर्दभरी कहानी सुनकर प्रेम का मन भीग गया जैसे पहली बारिश में कोई सूखा खेत भीगता है। बाबा ने जूती वापस अपनी झोली में रख ली।

'वह जहाँ कहीं भी होगी; तुम्हारी उम्र की होगी...'- बाबा ने प्रेम के सिर पर अपना हाथ रखा-' खुदा उसे और तुम्हें हमेशा सलामत रखे...'

रेहाना की चर्चा और उसकी निशानी दिखाने के पीछे बाबा का एक मकसद था कि क्या पता; इन मिलने आने वालियों में ही कोई उसकी रेहाना हो। कहा नहीं जा सकता कि वह किसी हिन्दू परिवार में पल रही है या मुस्लिम परिवार में। उन्हें उम्मीद है कि वे रेहाना को पहचान लेंगे लेकिन वे दावा नहीं कर सकते कि वे रेहाना को पहचान ही लेंगे... अगर वह हुस्ना जैसी या उनके जैसी न दिखती हो तो- जीन्स तो सात पुश्तों तक काम करते हैं। ज़रूरी नहीं कि बच्चे माँ-बाप पर ही जाएँ। वे हर मिलने आने वाली में अपनी रेहाना को ढूँढ़ते हैं।

लौटते हुए प्रेम बहुत उदास थी।

उसका हृदय जैसे टीस रहा हो। जैसे हृदय न हो, लहू टपकाता कोई ज़ख्मी परिंदा हो। खेत की मेड़ों से होते हुए दोनों लौट रहे थे। दोनों के मस्तिष्क में कुछ पक रहा था। अचानक प्रेम बोली–

'भगवान करे, उनकी रेहाना उन्हें मिल जाए...'

'हाँ'– कुंज ने अपना सिर हिलाया– 'मैं भी ऐसा सोचता हूँ।'

'वे मुझमें अपनी रेहाना को खोज रहे थे...'– प्रेम बोली।

'हाँ...'– कुंज ने कहा।

'क्या वे सबमें अपनी रेहाना को ढूँढ़ते हैं?'

'हाँ'– कुंज बोला।

'ओह!'– प्रेम को फिर तकलीफ़ हुई। एक टिटिहरी आकाश में 'क्रीं... क्रीं' करती हुई उड़ी जा रही थी। उसकी चीख आकाश को जैसे बीचों–बीच चीर रही हो।

'काश!'– प्रेम ने सोचा– मैं उनकी रेहाना होती...'जिसकी रेहाना खो चुकी हो; तुम उसे कैसे यक़ीन दिला सकते हो कि तुम उसकी रेहाना नहीं हो...'

देश की आब–ओ–हवा में एक आग थी जो कभी धधक उठती थी और कभी गुँगुआती हुई धुआँ देती रहती। वह दिखती या न दिखती मगर प्रत्येक समय जलती रहती थी। वह जंगल नहीं था, लोगों का हृदय था, जहाँ यह जल रही थी; जिसकी लपट और तपिश बाहर दिखाई देती थी। जैसे कोयला–खदान में लगी आग धरती के भीतर–भीतर जलती और फैलती रहती है, वैसी ही यह आग थी। यों यह आग नई नहीं, अत्यन्त प्राचीन थी। इसके अंगारे 1857 की क्रांति से लाए गए थे।

सन् 1856 में लॉर्ड डलहौजी के बाद लॉर्ड केनिंग गवर्नर जनरल बना। उसके शासन काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना सन् 1857 की क्रांति थी। भारतीय जनता ने कभी स्वेच्छा से ब्रिटिश साम्राज्य को स्वीकार नहीं किया था। उस ज़माने में अनेक भारतीय नरेशों तथा सरदारों में अंग्रेजों के प्रति विरोध की भावना मौजूद थी। ऐसे तो 1857 की क्रांति का प्रारम्भ एक सिपाही विद्रोह के रूप में हुआ था तथापि यह बहुत व्यापक था– इतिहास की युगांतरकारी घटना–अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम भारतीय विद्रोह। मोटे तौर पर लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति या विलय नीति को प्रमुख राजनीतिक कारण के रूप में देखा जा सकता है, लेकिन इसके अतिरिक्त आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सैनिक कारण भी थे। तत्कालीन कारण एक सैनिक विद्रोह था। अंग्रेजी सेना में अनेक भारतीय–हिन्दू एवं मुस्लिम–सैनिक शामिल थे। इस सेना में रायफलों में कारतूस भरने के पहले कारतूस के खोखे को दाँतों से छीलना पड़ता था। सैनिकों में यह अफवाह फैल गई थी कि कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया है। इससे हिन्दू और मुस्लिम–दोनों सैनिकों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँची। सम्पूर्ण देश में विद्रोह की लहर दौड़ गई। 29 मार्च 1857 को बैरकपुर छावनी में मंगल पाण्डेय नामक एक सैनिक ने चर्बी वाले कारतूस का प्रयोग करने से इन्कार किया, विद्रोह किया और एक अंग्रेज सार्जेन्ट को मार डाला। मंगल पांडेय को फाँसी की सज़ा दी गई। इसके बाद बैरकपुर छावनी में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोह की आग पूरे देश में फैल गई– मेरठ, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, झाँसी और बिहार आदि जगहों पर भी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। रानी लक्ष्मी बाई और बाबू कुँवर सिंह जैसे लोग क्रांतिकारियों के नेता थे, लेकिन ब्रिटिश सैनिकों ने बड़ी क्रूरतापूर्वक इस क्रांति को कुचल दिया।

लेकिन विद्रोह और क्रांति की यह आग तब से लेकर आज तक बुझी नहीं, बल्कि कभी बाहर कभी भीतर निरंतर जलती रही। छोटे–छोटे अंतराल चाहे आए लेकिन इस विद्रोह ने लम्बा सफ़र तय किया– कभी इसका धुआँ दिखाई दे जाता था तो कभी लपट– लेकिन आग; आग थी, बुझी नहीं; जलती रही उग्र से उग्रतर होती हुई।

फिर महात्मा गाँधी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और स्वतंत्रता आंदोलन में एक नया मोड़

आया। प्रथम विश्वयुद्ध (1914–1918) के बाद भारतीयों को उम्मीद थी कि उन्हें स्वतंत्र शासन का अधिकार मिल जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। भारतीयों में उत्पन्न असंतोष और क्रांतिकारी विद्रोह को दबाने के लिए मार्च 1919 में रॉलेट एक्ट पास किया गया। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार मुकदमा चलाये बिना किसी को भी नज़रबंद करके उसके मुकदमे का फैसला कर सकती है। इस कानून ने नागरिक–स्वतंत्रता को अत्यंत कम कर दिया तथा उस पर प्रतिबंध लगा दिए। रॉलेट एक्ट भारतीयों के लिए काला कानून था। भारतीय जनता ने सर्वत्र प्रदर्शन किये। देशभर में शान्तिपूर्ण हड़तालें हुईं। सरकार ने विरोध की ओर ध्यान नहीं दिया। उसका दमन चक्र भी तेजी से चलने लगा। महात्मा गाँधी ने रॉलेट एक्ट का विरोध किया और जनता को सत्य तथा अहिंसा के आधार पर विरोध करने की सलाह दी। इस एक्ट के कारण जो जनअसंतोष फैला, उसकी परिणति 13 अप्रैल 1919 के जलियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड में हुई। पंजाब के इस नरसंहार के बाद पूरे देश में हाहाकार मच गया। देशवासी खिलाफत और असहयोग आंदोलन के लिए एकजुट हो गए। 1921 में गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन काफी जोर–शोर से शुरू हुआ। इस जन आंदोलन में हजारों की संख्या में वकील, विद्यार्थी और सरकारी कर्मचारी कूद पड़े। किन्तु सरकार का दमन चक्र चलता रहा।

इस बीच अगस्त 1925 को युवा क्रांतिकारियों ने काकोरी षड्यंत्र काण्ड को अंजाम दिया। हरदोई से लखनऊ जाने वाली गाड़ी पर दस क्रांतिकारी मुसाफिर के रूप में सवार हो गए। गाड़ी काकोरी गाँव पहुँची तो खतरे की जंजीर खींच कर इसे रोक लिया गया। गाड़ी के रुकते ही क्रांतिकारी सरकारी खजाना लूट कर भाग गए। इस अभियान में अशफ़ाक उल्ला खाँ, चन्द्रशेखर आजाद, कुंदन लाल, राम प्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशन सिंह, शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा मन्मथनाथ गुप्त जैसे युवा क्रांतिकारी सम्मिलित थे। आजाद और कुंदन लाल को छोड़कर शेष सभी गिरफ्तार कर लिए गए। बिस्मिल, लाहिड़ी, खाँ और रोशन सिंह को फाँसी दे दी गई, सान्याल को आजीवन कारावास और मन्मथनाथ गुप्त को 14 साल की सज़ा मिली।

काकोरी काण्ड के बाद सन् 1928 में युवा क्रांतिकारियों ने हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ की स्थापना की। चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, जय गोपाल आदि इसके प्रमुख और सक्रिय सदस्य बने। इन क्रांतिकारियों ने लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए सैंडर्स की हत्या कर दी। नवम्बर 1927 में नियुक्त साइमन कमीशन का विरोध करती जनता पर अंग्रेजों ने बर्बरतापूर्वक लाठी बरसायी थी। लाला लाजपत राय इसी बर्बरता के शिकार होकर देश के लिए शहीद हो गए थे। 8 अप्रैल 1929 को भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय सभा में जाकर सरकारी बेंचों की तरफ बम फेंका और इन्कलाब ज़िन्दाबाद के नारे लगाए। किसी भी सदस्य को कोई चोट नहीं आई। उन लोगों ने वहाँ एक पर्चा भी फेंका जिस पर लिखा था– 'बहरों को सुनाने के लिए बमों की ज़रूरत थी।' भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने स्वयं को वहीं गिरफ्तार करवा लिया। बाद में चंद्रशेखर आजाद को छोड़कर सभी प्रमुख सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए। उन लोगों का बम का कारखाना भी पकड़ा गया। उन पर लाहौर के पुलिस अधीक्षक की हत्या का भी आरोप लगाया गया। इन क्रांतिकारियों के साथ जेल में बड़ा ही क्रूर व्यवहार किया गया। जतिन दास नामक एक राजनीतिक कैदी की 64 दिनों की भूख हड़ताल के बाद मृत्यु हो गई। 23 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सज़ा हुई। इन लोगों की फाँसी से सारे देश में क्रोध और विरोध की लहर दौड़ पड़ी। यह; लाहौर षड्यंत्र केस के नाम से भी जाना गया। चंद्रशेखर आजाद भी पुलिस की गोलीबारी में शहीद हो गए।

48/18/सी, साउथ सिथी रोड, कोलकाता–700050 मो.9433135365

किस्सागोई का नया जमाना

गीता दूबे

साहित्य में ही नहीं आम लोगों के जीवन में भी किस्से-कहानियों की सुदीर्घ परंपरा है। हमारे यहाँ कथा कहने, बाँचने और सुनने की पुरानी परंपरा है। कथा कभी लोकगीतों के आंचल में पली है, कभी महाकाव्यों के कथानक का आधार बनी है। बच्चे कथाएँ अपनी दादी और नानी से सुनते रहे हैं। पहले हर गांव, मुहल्ले और अंचल में कोई न कोई मशहूर किस्सागो जरूर होता था। वह अपने आकर्षक लहजे और लच्छेदार भाषा से श्रोताओं को इस कदर बांध लेता था कि श्रोता भूख-प्यास और नींद भूल जाते थे।

वरिष्ठ कथाकार मृणाल पांडे का कहानी संग्रह '**हिमुली हीरामणि कथा**' की शैली तो वैसे ही प्राचीन है लेकिन आधुनिक परिवेश की घटनाओं को उसमें इतनी खूबसूरती से पिरो दिया गया है कि पाठक इन रोचक कथाओं के जादू में बंध कर रह जाता है। समसामयिक जीवन की विसंगतियों पर महीन व्यंग्य करती हैं इस संग्रह की कहानियाँ। वस्तुतः ये कहानियाँ अलग-अलग नहीं हैं, एक कथा में से कई कथाएँ निकलती जाती हैं। इस आधुनिक कथा में प्रधानमंत्री की विदेश यात्रा से लेकर नोटबंदी और अच्छे दिन तक के प्रसंग भी अनायास शामिल हो जाते हैं। एक स्त्री 'हिमुली' इसकी कथाओं के केंद्र में है। मुद्राराक्षस के राज्य में अचानक एक दिन आकाशवाणी होती है और अगले ही दिन राज्य की तमाम मुद्राएँ लता- पत्तों में बदल जाती हैं, लेकिन राजा के प्रियजनों के लिए खास फर्क नहीं पड़ता। जनता राजा की योजनाओं के लिए कष्ट सह कर भी उनका गुणगान करती है। वस्तुतः इस संग्रह की कथाएँ पारंपरिक शिल्प पर आधारित होकर भी वर्तमान जीवन की समस्याओं को उठाती हैं। इन कथाओं का वाचक हीरामणि नामक तोता है। वह कथाओं का सूत्रधार बन कर पाठकों का मनोरंजन करता है। वह हिमालय की बेटी हिमुली की कथा का वर्णन मनोरंजक ढंग से करते हुए पाठकों को अपनी गप्पबाजी से तुष्ट करता है।

मृणाल पांडे स्त्री विमर्श का नाम लिए बिना स्त्री-सशक्तीकरण का नया पाठ रचती हैं, जहाँ स्त्री न केवल अपने बाह्य सौंदर्य से सबको मोह लेती है बल्कि अपने बुद्धि-चातुर्य से भी सबको नाकों चने चबवा देती है। बड़े से बड़ा कूटनीतिज्ञ राजा और उसका पूरा अमला उसके चातुर्य के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। मृणाल पांडेय स्त्री-सशक्तीकरण के कानून पर भी व्यंग्य करती हैं कि कोई स्त्री अगर चाहे तो कानून का आश्रय लेकर सच को झूठ और झूठ को सच बना सकती है। वस्तुतः हिमुली की कथा द्वारा समाज में स्त्री की विभिन्न स्थितियाँ स्पष्ट की गई हैं। भारतीय परिवार में तो मुख्य रूप से स्त्री के प्रति हिंसा को ही सामाजिक स्वीकृति मिली हुई है। स्त्रियाँ प्रताड़ित होती हैं, शारीरिक-मानसिक आघात झेलती हैं और इसे अपनी नियति मान कर सहजता से स्वीकार

जिज्ञासा : वर्तमान समय में आप स्त्री विमर्श को आवश्यक मानती हैं या नहीं?

कहानीकार : स्त्री विमर्श का मतलब अगर जीवन के हर क्षेत्र में स्त्रियों के अवदान का वैज्ञानिक आधार पर आकलन करना और उसका गंभीर विश्लेषण लगातार जारी रखना है, तो हाँ, यह बहुत जरूरी है। यह भी जरूरी है कि तेजी से बदलते समय, डिजिटल संचार तकनीकी और आर्थिक जगत के बदलते रूप से महिलाओं की रचनात्मकता और कौशल के लिए कितनी किस तरह की और कहाँ जगह बनेगी इस पर भी हमारे समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और नारीवादी समवेत और गंभीर शोध करना शुरू करें।

पर यहाँ भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के बीच की दीवारें कई अपरिचय के विंध्याचल बना देती हैं। भाषाई कमजोरी छुपाने को हिंदीवाले अक्सर इन सारे विषयों को पच्छिम से आयातित कह कर छुट्टी पाने की कोशिश करते दिखते हैं। जबकि इन पर बहुत सारा और बहुत बढ़िया काम देश और विदेश के उच्चतम अकादमिक क्षेत्रों में हो रहा है।

मृणाल पांडे

दूसरी बाधा हिंदी पट्टी में अधकचरे वाम या दक्षिणी राजनीति और बौद्धिक ध्रुवीकरण बन रहा है। दक्षिणपंथियों के महिला सशक्तीकरण के तमाम आदर्श और पैमाने मध्ययुगीन हैं जिनको हमने पद्मावती प्रकरण या केरल फिल्मोत्सव में महिला प्रधान फिल्मों की सेंसरशिप में साकार होते देखा। उधर वामपंथी बिना स्त्री की निजी जिंदगी और आर्थिक सरोकारों की गहरी समझ के उनसे काली बन कर क्रांति करने की तराजू थामे हुए हैं। उनकी राय में आर्थिक विषमता ही स्त्री की कमजोरी का स्रोत है। जबकि सच यह है कि आर्थिक विषमता सामाजिक परवरिश के पैमानों का फल है, उसका स्रोत नहीं। इसलिए निजी पीड़ा को फेंट कर दोयम दर्जे का क्रांतिकारी साहित्य रचने वाली लेखिकाएँ इन दिनों हिंदी के अकादमिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में मशहूरी पा रही हैं। महिला लेखिकाओं को जहाँ तक मैंने देखा-पढ़ा है, उसके संदर्भ में नारी विमर्श पर अधिकतर हो रहा काम या साहित्यिक समालोचना नारेबाजी और सामान्यीकरण से अधिक नहीं दिखाई देती।

जिज्ञासा : क्या स्त्री होने के नाते साहित्य की दुनिया में आपको किन्हीं खास मुश्किलों का सामना करना पड़ा?

कहानीकार : इस पर बात करना मैं अनावश्यक समझती हूँ। मेरे लेखन में वह जितना व्यक्त हुआ है उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना। निजी स्तर पर वे तमाम बाधाएँ निरर्थक ही थीं, हैं और रहेंगी। हर लेखक की तरह मेरा साहित्य भी जीवन के उन अनुभवों से समृद्ध ही हुआ है, गिरा नहीं।

जिज्ञासा : क्या लेखन को स्त्री और पुरुष के खेमे में बांटना उचित है?

कहानीकार : स्त्री और पुरुष, जैसा आज समाज है, वे कई स्तरों पर अलग-अलग कोण से जीवन को देखते, थाहते और उस पर प्रतिक्रिया देते हैं। मेरी राय में उनके नजरियों की इस भिन्नता को दो खेमों के बजाय तस्वीर के दो परस्पर पूरक पहलुओं की तरह देखना बेहतर होगा। खेमेबंदी के बिंब से औरत मर्द के बीच एक तरह की कांइयाँ गुटबाजी, ईर्ष्या और टकराव की छवि बनती आती है जो न निजी तौर पर सही है न ही धंधई स्तर पर।

जिज्ञासा : 'हिमुली हीरामणि कथा' रच कर आपने किस्सागोई की पारंपरिक परंपरा को आधुनिक दौर में जीवित रखने का जो चुनौतीपूर्ण कार्य किया है, क्या आप इससे स्वयं संतुष्ट हैं?

कहानीकार : हिमुली से मैं जिस हद तक कोई लेखक किसी रचना से संतुष्ट या असंतुष्ट होता है उतनी ही हूँ। भाषा और शिल्प दोनों में नए-पुराने की युति एक रोचक प्रयोग था जिसे कर के बड़ी खुशी मिली और कुछ नया कर पाने का उत्साह भी।

भी कर लेती हैं। स्त्रियों का बाहर ही यौन शोषण नहीं होता, बल्कि वह अपने अपने परिवार में भी सुरक्षित नहीं हैं। कथाकार इसे अपनी ही हथेली का मांस खाने जैसा मानते हुए भी यह सवाल पाठकों के सामने रखती है कि 'बाप और बाघ में से अधिक खतरनाक कौन है?' हिमुली का अपना बाप ही उसका यौन शोषण करता है लेकिन घर-निकाले की सजा हिमुली को मिलती है अर्थात स्त्री अगर कोई अपराध करती है तब तो दंडित होती ही है लेकिन दूसरों के अपराधों का ठीकरा भी उसी के सिर पर फूटता है। हिमुली को घर से निकलने के बाद यह तत्वज्ञान मिलता है कि जो कुछ उसके साथ हुआ वह कोई पहली घटना नहीं है, स्त्रियों के साथ आदि-अनादि काल से यह सब होता आया है और बहुत सी स्त्रियाँ मुंह पर पट्टी बांध कर यह सब बर्दाश्त करती आई हैं। किंतु कुछ ने इसका बदला दूसरी तरह से लेने के लिए अपने आप को दूसरे ही रंग में रंग लिया है। यहीं यह सवाल भी सिर उठाता दिखाई देता है कि सीधी-सादी बेजुबान हिमुली के यक्षिणी हिमुली में रूपांतरित यह उत्तर-आधुनिक कथा सरित्सागर कहीं न कहीं इस बात का समर्थन भी करता है कि वर्षों से शोषित स्त्री खुद अपने नाखूनों को तेज कर अगर समाज से बदला लेने के लिए निकल पड़े तो गलत क्या है? हिमुली ऐसा ही करती है। धूर्तों से भरी लुटियन नगरी में जहाँ स्त्रियों की अस्मिता हर घड़ी तार-तार होती है और अपराधियों को सजा भी नहीं मिलती, वहाँ विष्णु अवतार की तरह हिमुली अवतार सहज और स्वाभाविक प्रतीत होता है।

इस कथा में लोककथाओं और पुराकथाओं के सम्मिश्रण से एक ऐसी रहस्यमय रोचक कथा गढ़ी गई है जो आज के पाठकों को किस्सागोई का अहसास करा देती है।

देशी परंपरा के कथाकार एस. आर. हरनोट का एक कहानी संग्रह '**दस प्रतिनिधि कहानियाँ**' हैं। हरनोट पहाड़ी जीवन के कथाकार हैं। पहाड़ के जिस जीवन को उन्होंने देखा-समझा और अपने अनुभवों में सहेजा है वह उनकी कहानियों में सहज रूप से है। पर वे बताते हैं कि पहाड़ के लोगों से उनकी दुनिया छीन लेने की साजिशें रची जाती हैं। संपूर्ण पर्यावरण विकास के नाम पर उजाड़ दिया जाता है। कुछ लोग इस विकास की होड़ में आगे बढ़ने के लिए अपने ही भाई-बंधुओं के सपनों और उनकी जिंदगी से खेलना शुरू कर देते हैं।

कहानीकार की यह सहजता कभी-कभी सपाटबयानी लगती है, कभी बहुत सारी घटनाएँ आपस में उलझ जाती हैं कि वे विशेष प्रभाव छोड़ने में किसी हद तक पीछे रह जाती हैं।

'सड़न' धर्म के स्वघोषित ठेकेदारों और छद्म बाबाओं

की मानवभक्षी आकांक्षाओं का बयान करती है।

इस प्रतिनिधि संग्रह की यादगार कहानियों में 'मिट्टी के लोग', 'बेजुबान दोस्त', 'माफिया', 'दीवारें', 'स्वर्ण देवता दलित देवता' आदि हैं। पहाड़ी जीवन को हमारी फिल्मों में जिस तरह चित्रित किया जाता है, वस्तुत: वह उससे बिल्कुल भिन्न होता है। हरनोट पहाड़ी जीवन की कथा कहते हुए यहाँ के लोगों के विलगाव और संघर्ष को रेखांकित करते हैं। 'बेजुबान दोस्त' कहानी में एक माफिया चरित्र है। इसमें विकास के वेश में विनाश का दानव अट्टहास करता है। जंगल के पशु-पक्षी गायब होते जाते हैं। जंगलों को काट कर बसाने के छद्म में उन्हें उजाड़ने की कोशिशें होती हैं।

पंकज सुबीर की कहानियों में किस्सागोई का एक अलग तरह का अंदाज नजर आता है। उनके कहानी संग्रह '**चौपड़े की चुड़ैलें**' में नगर जीवन के साथ ग्रामीण जीवन भी है। वे अपनी भाषा और शिल्प का ठाट बांधते हुए कथा के वातावरण को जीवंत कर देते हैं। कहा जा सकता है कि पंकज सुबीर की कहानियाँ ऐसे आम इन्सानों की कहानियाँ

जिज्ञासा : आप लंबे समय से कहानी लिख रहे हैं, तब और अब में कोई उल्लेखनीय बदलाव महसूस करते हैं?

कहानीकार : बहुत से बदलाव चिन्हित किए जा सकते हैं। सबसे बड़ा बदलाव यही है कि जिन वंचितों की आवाज साहित्य होती है, उन्हें पहले से अधिक प्रताड़ित करके हाशिए से भी परे धकेला जा रहा है। प्रत्येक राजनीतिक दल मजदूर, किसान और दलितों के उत्थान की बात करता है, वह उन्हीं को बैसाखियाँ बना कर सत्ता तक पहुँचता है, इन सबके बावजूद अमीरी और गरीबी की खाई बढ़ती गई है। पहले की अपेक्षा असहिष्णुता, राजनीतिक अवमूल्यन, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, धर्मांधता, अंध राष्ट्रवाद और जातिगत असमानताएँ चरम पर हैं।

एस. आर. हरनोट

जिज्ञासा : आपकी कहानियों में पहाड़ी जीवन की घटनाएँ और दृश्य ज्यादा हैं। क्या पहाड़ के जनजीवन में कोई बदलाव आया है?

कहानीकार : पहाड़ के जनजीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचना प्रभावित हुई है। भूमंडलीकरण ने दादी-चाची के हाथों में मोबाइल पकड़ा कर दुनिया को तो नजदीक ला दिया है परंतु चूल्हे की ग्रामीण संस्कृति समाप्ति के कगार पर है। इसके अलावा पहाड़ के लोग अनेक संकटों के बीच जैसे-तैसे अपने जीवन मूल्यों को बचाने का प्रयास कर रहे हैं।

जिज्ञासा : क्या शिक्षा और तकनीकी विकास ने पहाड़ी जीवन को सही अर्थों में उन्नत करने में कोई भूमिका नहीं निभाई है?

कहानीकार : शिक्षा और तकनीकी विकास के फायदे हैं और नुकसान भी हैं। एक ओर हमारी शिक्षा व्यवस्था को निजीकरण और पूंजीवाद का दैत्य निगलता जा रहा है। दूसरी ओर आधुनिक तकनीक ने गरीबों के हाथों का काम लगभग छीन लिया है। पहाड़ के लोगों के इरादे पहाड़ों की तरह ही मजबूत और परिस्थितिजन्य हैं, जिस कारण वे इन चुनौतियों को न केवल स्वीकार कर रहे हैं बल्कि इन्हीं के मध्य जीवनयापन के रास्ते तलाश रहे हैं।

जिज्ञासा : आपकी कई कहानियाँ पढ़ते हुए लगता है कि ये सत्य घटनाओं पर आधारित हैं, क्या ऐसा है?

कहानीकार : साहित्य वास्तव में जीवन के सत्य को ही उजागर करता है। मेरी कहानियों में देखे, परखे और जीए हुए अनुभवों को सृजित करने का प्रयास है। विद्वान अक्सर कहते हैं कि कहानी में तिथियों के अतिरिक्त सब सच और इतिहास में तिथियों के अतिरिक्त सब झूठ होता है।

जिज्ञासा : पर्यावरण पर खतरा बढ़ता जा रहा है, पहाड़ और जंगल भी इसकी चपेट में हैं, इससे निपटने में शासन या आम आदमी की भूमिका के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?

कहानीकार : वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण प्रदूषण है। प्रकृति से भी ऊपर जिस ईश्वरीय सत्ता की कल्पना की जाती है, उस सत्ता को हमने ईश्वर से छीन कर अपने हाथों में ले लिया है। यह सरकारी सत्ता है जो हमेशा अपना नफा-नुकसान देखती है, देश या आमजन को नहीं। सत्ता और व्यवस्था के आगे आम आदमी निरीह और बेबस है। कई लोग अपने हित साधने के लिए प्रकृति और पर्यावरण को किसी भी हद तक नुकसान पहुँचा देते हैं। पहाड़, नदियाँ और जंगल बचेंगे तो दुनिया बचेगी। चिंता की बात है कि ये चीजें विकास के नाम पर नष्ट होती जा रही हैं। होना यह चाहिए कि हम पहाड़ों के लिए विकास के ऐसे मानक तय करते जिससे प्राकृतिक संपदा को कम से कम नुकसान पहुँचता।

जिज्ञासा : इस समय साहित्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती क्या है?

कहानीकार : आज हर चीज बाजार हो गई है। इस बाजारी संस्कृति के संरक्षक राजनीति के मठाधीश हैं। बाजार मोल-भाव में यकीन करता है, यहाँ संवेदना और मानवीय सरोकार नदारद रहते हैं। भ्रष्टाचार और अंध-राष्ट्रवाद दोनों इस बाजार के सबसे सक्रिय और घातक औजार हैं। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। हमारे पास कलम ही इन सभी चुनौतियों की काट है, परंतु उसके लिए एक हाथ नहीं हजारों हाथों की आवश्यकता है। हालांकि सभी अपनी-अपनी जगह अकेले लड़ते जा रहे हैं। ऐसी आवाजें नकारखाने में तूती जैसी हैं।

हैं जो मानवीय गुणों के साथ दुर्गुणों के भी पुतले हैं। कोई अगर प्रेम करता है तो बदला लेने के लिए किसी भी हद तक चला जाता है। व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक कुछ भी कर सकता है। इसके बावजूद फिर भी कुछ चरित्र मानवीयता को नहीं छोड़ते। संग्रह की पहली कहानी 'जनाब सलीम लंगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी' का शीर्षक ही आम पाठकों को लुभाने वाला है और कहानी कहने का ढंग भी निहायत रोचक है। पाठक पूरे मजे लेकर कहानी पढ़ता है, यहाँ तक कि नायक की हत्या भी उसे मजेदार ही लगती है। शीला और सलीम के बीच दैहिक आकर्षण या प्रेम का पनपना बेहद स्वाभाविक लगता है। पाठक को न नायक के साथ सहानुभूति होती है न नायिका से बल्कि वह अंत से दुखी होने के बजाय आनंदित होता दिखाई देता है। यह परपीड़क आनंद है, आज के दौर में ऐसे आनंद को बुरा नहीं माना जाता। जैसे महिलाओं पर बने हल्के चुटकुलों पर हँसना और उन्हें साझा करना ।

'चौपड़े की चुड़ैलें' उन अतृप्त इच्छाओं की कहानी है जो किसी भी जीते-जागते इन्सान को इन्सान रहने नहीं देती। स्त्रियाँ चुड़ैल बनने को विवश होती हैं, उनका उपयोग करने में आज की बाजारू ताकतें भी माहिर होती हैं। बाजार इनका नाम, वास्तविक पहचान आदि छीन कर इन्हें जीते जी प्रेत योनि में ढकेल देता है और मुनाफे के ढेर पर खड़ा होकर इतराता है। पंकज सुबीर लिखते हैं, 'चुड़ैलें अब हवेली से निकल कर वरचुअल हो गई हैं। हवा में फैल गई हैं, सिग्नल के रूप में, फ्रिक्वेंसी के रूप में। अब वे हर किसी के मोबाइल में हैं। ...चुड़ैलें फैलती जा रही हैं, फैलती जा रही हैं, फैलती जा रही हैं।' उपभोक्तावादी दौर में जब बाजार हर आदमी को सिर्फ और सिर्फ उपभोक्ता के तौर पर ही देखता है और उसके शिकार के लिए उसे ऐसी चुड़ैलों की जरूरत पड़ती है। इस कहानी को पढ़ते हुए सुबीर की ही एक और कहानी 'सदी का महानायक उर्फ कूल कूल तेल

का विज्ञापन' की याद बरबस ताजा हो जाती है।

पंकज सुबीर की कहानियों में पठनीयता का गुण है और किस्सागोई का फन। कहानियों में कहाँ लोक कथाओं का सम्मिश्रण करना है और कहाँ आधुनिकता का संस्पर्श देना है, वह यह बखूबी जानते हैं।

आज के दौर में कुछ रचनाकार वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ लेखन में सक्रिय हैं तो कुछ

जिज्ञासा : आज के दौर की कहानियों को आप कैसे व्याख्यायित करेंगे?

कहानीकार : आज के दौर की कहानियाँ आज के समय को बखूबी प्रतिबिंबित करती हैं। समय के साथ शिल्प में, कहन में, विषयों में परिवर्तन आता है और परिवर्तन आना जरूरी होता है, क्योंकि पाठक बदलते हैं, पाठकों की मनोदशा बदलती है, पाठकों का चयन बदलता है। इस हिसाब से कहानी में भी परिवर्तन आना जरूरी होता है। कई लोग कहते हैं कि इन दिनों कहानियाँ बहुत बोल्ड हो रही हैं, लेकिन मुझे लगता है कि आज 60 साल बाद भी हम कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' जैसा बोल्ड चरित्र नहीं रच पा रहे हैं। मुझे लगता है कि कहानी में शिल्पगत जो भी परिवर्तन हो रहे हों लेकिन पाठक आज भी कहानी ही चाहता है।

जिज्ञासा : आप कहानी कैसे लिखते हैं, क्या अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में कुछ बताएंगे?

कहानीकार : मेरे लिए कहानी लिखना किसी यात्रा के समान है। सबसे पहले कोई विषय होता है जो मुझे उद्वेलित कर देता है, इतना कि मैं उसे कहानी में डालने के लिए अंदर से बेचैन हो जाता हूँ। जब वह विषय मुझे बहुत उद्वेलित कर देता है तो फिर तय करता हूँ कि यह विषय कितना और कैसे विस्तार पाएगा। एक बार ये चीजें तय हो जाती हैं तो फिर पात्र और पात्रों का गठन। मैं कहानी को लेकर लगभग सारा काम कहानी लिखने से पहले कर लेता हूँ, फिर केवल लिखना होता है। पहले मैं पेन और कागज से लिखता था, मगर अब कंप्यूटर पर लिखता हूँ और मोबाइल पर भी लिखता हूँ।

पंकज सुबीर

जिज्ञासा : आपकी कहानियों में कई बार रहस्यमय परिस्थितियों का वर्णन होता है, भूत-प्रेत आदि की घटनाएँ चित्रित होती हैं, जैसे आपके नवीनतम कहानी संग्रह 'चौपड़े की चुड़ैलें' की एक कहानी 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ' में दिखाया गया है कि कैसे एक नाग एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है। क्या आपको इस तरह की घटनाओं पर यकीन है?

कहानीकार : बात मेरे व्यक्तिगत रूप से इन चीजों पर विश्वास करने या नहीं करने पर निर्भर नहीं है। हमारे समाज में, हमारे लोक में, हमारे आस-पास जो कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं वह हमारे जीवन का हिस्सा हैं। हम उन पर विश्वास नहीं करें और उन पर कहानी नहीं लिखें तो मुझे लगता है कि यह हमारे लिए भी ठीक नहीं होगा और हमारे पाठकों के लिए भी। मुझे लगता है कहानीकार को सारे विषयों को जस का तस अपने पाठकों के सामने रख देना चाहिए और पाठक को निर्णय लेने देना चाहिए कि वह क्या सोचता है। लेखक को अपने विचार अपने पाठक पर किसी भी सूरत में नहीं थोपना चाहिए।

जिज्ञासा : आपकी कई कहानियों पर फिल्मी प्रभाव साफ नजर आता है। जैसे 'अप्रैल की एक उदास रात'। क्या आप यह जानबूझ कर करते हैं, ताकि किसी कहानी पर कोई फिल्म बन सके?

कहानीकार : ऐसा तो नहीं कि मैं फिल्मों को दिमाग में रख कर कहानी लिखता हूँ। लेकिन

फिल्में ज्यादा देखने और फिल्मों से जुड़ा होने के कारण मेरी कहानियों पर उनका असर जरूर दिखाई दे सकता है। फिल्मों की पटकथा लिखता हूँ तो कहीं न कहीं वह असर कहानियों में आ जाता है कि मैं दृश्य दर दृश्य कहानियों को रचता हूँ। मेरे लिए 'अप्रैल की एक उदास रात' कहानी लिखना सचमुच एक बड़ी चुनौती थी, क्योंकि विषय इतना जटिल था कि यदि उसे जरा-सा भी कठिन बनाता तो पाठक के लिए कहानी एक पहेली होकर रह जाती। इसलिए इस कहानी को मैंने जरा रूमानियत भरे अंदाज में लिखा है।

जिज्ञासा : आपकी कहानियों के शीर्षक भी फिल्मी शीर्षकों की तरह होते हैं, जैसे- 'रेपिश्क'?

कहानीकार : कहानियों के शीर्षक को लेकर मैं हमेशा सजग रहता हूँ। मेरा मानना है कि पाठक कहानी बाद में पढ़ता है, पहले उसका शीर्षक उसे आकर्षित करता है।

जिज्ञासा : मौजूदा दौर में कहानीकारों की एक बड़ी जमात सक्रिय है, क्या आप इन्हें अपने लिए चुनौती मानते हैं?

कहानीकार : यह चुनौती जैसी कोई बात नहीं बल्कि यह तो और अच्छी बात है कि इतने ज्यादा कहानीकार एक समय में सक्रिय हैं। कहानीकार जितने अधिक होंगे, कहानियों के पाठकों की संख्या उतनी अधिक रहेगी, क्योंकि अलग-अलग कथा शैली और शिल्प की कहानियाँ पाठकों को पढ़ने को मिलेंगी।

स्थानीयता को प्रतिबिंबित करने के साथ वृहत्तर सामाजिक बदलाव के लिए भी कोशिश करते नजर आते हैं। कुछ रचनाकार पाठकों का मनोरंजन करते हुए समाज या देश की स्थिति पर एक सवाल खड़ा करते हैं। उपर्युक्त तीनों कहानी संग्रहों में एक ही दौर में लिखे जा रहे विविध प्रकार के शिल्पगत प्रयोगों के बावजूद एक समानता जरूर है और वह है कहानीकार किस्सागोई की परंपरा वह चाहे देशी हो या आधुनिक हर हाल में उसे जीवंत और प्रवहमान रखना चाहते हैं।

समीक्षित कहानी संग्रह

(1) **हिमुली हीरामणि कथा** : मृणाल पांडे, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 (2) **दस प्रतिनिधि कहानियाँ** : एस. आर. हरनोट, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 (3) **चौपड़े की चुड़ैलें** : पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, भोपाल, 2017

पूजा अॅपार्टमेंट, फ्लैट नं ए 3, द्वितीय तल, 58 ए/1 प्रिंस गुलाम हुसैन शाह रोड, यादवपुर, कोलकाता-700032, मो. 9883224359

विचार

हर विद्यार्थी ढूंढता है ऐसे अध्यापक

अच्छे लगते हैं वे अध्यापक जिन्हें अपनी क्लास की पहली बेंच से लेकर आखिरी बेंच तक के बच्चों का नाम पता होता है। जो उन बच्चों से भी उत्तर उगलवा लेते हैं जिन्हें उत्तर पता होता है लेकिन वे क्लास में बोलने से परहेज करते हैं। हाँ, उन अध्यापकों का थोड़ा अतिरिक्त सम्मान करने का मन होता है जो परीक्षा कक्ष में हड़बड़ी में गिरी पेन चुपचाप रख देते हैं बच्चों की टेबल पर। दोस्त की तरह लगते हैं वे अध्यापक जो उदास चेहरा देख बिना किसी लागलपेट के पूछ लेते हैं बच्चों की परेशानी। अक्सर वह अध्यापक हो जाते हैं बेहद प्रिय जो कॉपी में बड़ा-सा लाल गोला बनाने की जगह लिख देते हैं सही शब्द या पंक्ति, खेल लेते हैं विद्यार्थियों के साथ थोड़ी देर बैडमिंटन। बरबस आकर्षित कर लेते हैं वह अध्यापक जो बच्चों के साथ पी लेते है चाय, कर लेते हैं देश दुनिया पर खुल कर बहस। ऐसे अध्यापक बेहद अच्छे लगते हैं जिनका साथ महसूस करा देता है दोस्त, गार्जियन, शिक्षक, भाई, बहन जैसा रिश्ता।

हर विद्यार्थी ढूँढता है ऐसे अध्यापक। कहे-अनकहे, जाने-अनजाने भी वह पा लेना चाहता है ऐसे अध्यापक का स्नेह जो उसकी जीत में ही नहीं हार में भी खड़ा हो सके उसके साथ। जब काँपे उसके पैर तो खुदबखुद काँधे पर आ जाए उसका हाथ। ऐसा शिक्षक स्वयं में पूरा विद्यालय होता है। उसे सहेज लेता है विद्यार्थी अपने मानस में शाश्वत प्रेरणा की तरह!

'सीखना' सीखें बच्चे!

थोड़े ठीक-ठाक मध्यवर्गीय घरों की माएँ अपने बच्चों को पाढ़ा- मोहल्ले के बच्चों से मिलने-जुलने से बचाती हैं, क्योंकि इससे वे बिगड़ जाएंगे। वे उन पर पढ़ाई का दबाव बनाकर रखती हैं, हालांकि बच्चे कम उम्र में बहुत सारी दुनियावी बातें जानते हैं और पक्के होते हैं।

आज जब सुनने में आता है कि बच्चों का बचपन खोता जा रहा है, अपने बचपन की याद आती है। मैदान में जाकर खेलने का कैसा आनंद था, दुनिया की हलचलों का दबाव न था, समय की पाबंदी नहीं थी, कल्पना उन्मुक्त थी और कितने दोस्त-बंधु थे। नियमित शिक्षा के बाहर जीवन में काफी स्पेस था, जहाँ सामाजिक गतिविधियाँ भी सहज संभव थीं। अब परिवार छोटा है, परिवार में बच्चे कम हैं- एक या दो। बच्चों पर कड़ी नजर रखते हुए माँ-बाप उनका मन पूरी तरह समझ नहीं पाते। उनका इंटरनेट का नशा उतारना कठिन होता है। माँ-बाप अपनी तरफ से हर संभव उपाय करते हैं कि उनकी संतान एकदम खरा, अव्वल और निर्माणशील हो, बल्कि इसके लिए हलकान रहते हैं। फिर भी कई बार उन्हें उल्टा फल मिलता है, बच्चे बिगड़ते ज्यादा हैं।

कई माता-पिता खुद जो अपने जीवन में नहीं कर पाते, वह अपने बच्चों के जीवन में देखना चाहते हैं। वे मानना नहीं चाहते कि बच्चों के अपने स्वप्न हो सकते हैं, उनके पास भी एक दृष्टि हो सकती है। आज जरूरी है कि बच्चों को इसके

लिए तैयार किया जाए कि वे खोजी बने, सीखना सीखें। 'सीखना सीखें' का अर्थ है कि बच्चा अपने अनुभवों का विभिन्न तरह से उपयोग कर सके, इसके लिए उसमें आत्मविश्वास और साहस आए। इसके लिए जरूरी है कि वह अपने बचपन को सहजता से जी सके, दूसरे बच्चों से स्वाधीनतापूर्वक घुलमिल सके, प्रकृति के नजदीक जा सके। आजकल मुश्किल यह है कि अभिभावकों के लिए ही अवकाश का अर्थ टीवी देखना या इंटरनेट पर चैट करना है। बच्चे तब इसका अनुकरण करेंगे ही। दिशाहीन माता-पिता और शैशवहीन बच्चों को देख कर कई बार लगता है कि हम किसी बड़े अपराध में शामिल तो नहीं हैं!

जयंती

कविता

इन दिनों सोशल मीडिया पर एक चुटकुला चल रहा है। एक नवोदित कवि ने एक वरिष्ठ कवि से पूछा, 'सर, आपके पास मुक्तिबोध का व्हाट्सएप नंबर है क्या? फिर एक दिन गंगाशरण सिंह की पोस्ट पढ़ी। उन्होंने हल्के -फुल्के मजाक के साथ कहा कि उस नवोदित कवि को बताना चाहिए था कि मुक्तिबोध का व्हाट्सएप नंबर शरद कोकास के पास है, वे पुरातत्ववेत्ता हैं और सबका रिकॉर्ड रखते हैं।

मैंने इस बात को गंभीरता से लिया। मन में यह बात घूमती रही कि क्या सचमुच यह पीढ़ी मुक्तिबोध से अनभिज्ञ है? अभी दो दिन पहले राजनांदगांव स्थित मुक्तिबोध के निवास पर जाना हुआ। वहीं इस कविता ने जन्म लिया। अगर आपने मुक्तिबोध की कविताएँ पढ़ी होंगी तो इसमें प्रयुक्त कई शब्द आपके जेहन में होंगे।

मुक्तिबोध का व्हाट्सएप नंबर

रानी तालाब के घाट की सीढ़ियों पर
कुछ शब्दों के पाँवों के निशान हैं
एक पुराने खंडहर से मकान की खिड़की पर
बैठे हैं कुछ शब्द शून्य में निहारते

अभी-अभी आत्महत्या की है कुछ शब्दों ने
कूदकर बूढ़े ताल की गहराइयों में
कुछ शब्द थके-हारे चढ़ रहे हैं
अनंत की ओर जाने वाली
चक्करदार सीढ़ियों पर

बी एन सी मिल की ढही हुई चिमनियों के करीब
विचित्र प्रोसेशन के अंतिम सिरे पर
पाँव घिसटते चल रहे हैं कुछ जख्मी शब्द

शहर के कुख्यात हत्यारे डोमाजी उस्ताद ने
खरीद लिए हैं तमाम पुस्तकों के बाजार
जहाँ प्रकाशित होने वाली किताबों से
लोकहित पिता की भांति
बेदखल कर दिए गए हैं तमाम शब्द
जो जीवन की व्यर्थता पर उसे कोंचते थे

काँच की प्लेटों के नीचे
जर्जर हो चुके पन्नों में
अन्यमनस्क-सी लिपि में लिखे कुछ शब्द
अपने ही बांधवों को
सुंदर सुसज्जित किताबों में देखकर बेचैन हैं
टेरियर कुत्तों के जबड़ों के बीच फंसे शब्द
लाल गरमीले रक्त और लार में
डूबते उतराते हैं अपनी व्यर्थता में

वे शब्द अब भी उपस्थित हैं
गुजरे जमाने के चेहरे पर पड़ी झुर्रियों में
अथवा मन की परित्यक्त सूनी बावड़ी की
गहराइयों में पैठे
भय के ब्रह्मराक्षस के होंठों पर

वे नहीं पहुँच पाए
कला के उत्तुंग शिखरों की कगार पर
कि उन्हें भी डर लगता रहा ऊँचाइयों से
कैद हो गए कुछ शब्द
बुद्धिजीवियों की समझ के
सागौनी दरवाजों के भीतर
जंग खाई चिटकनियों को हिलाकर

ढूँढते रहे वे बाहर आने का रास्ता
जो उन्हें पीड़ित शोषित
जनता के हड़ताली पोस्टरों तक पहुँचाता था

भूखे बच्चों की तरह अब भी बाहर हैं वे शब्द
चमचमाते दावतखानों की परिधि से
कि अब कवियों की यह नई पीढ़ी
उन्हें तलाश रही है आभासी संसार में

मिलेंगे जरूर उन्हें वे शब्द
मीलों गहरे अतीत के सर्वग्रासी अंधेरों में
कि उन्हें उतरना होगा वहाँ तक
बिना किसी जीपीएस सिस्टम के
पहुँचना होगा मनुष्यता के उस दौर तक
जब नहीं थे रास्ते मन बहलाने के
अपने भीतर की अंधी सुरंगों से बाहर आने के
तमाम दरवाजे भी बंद हो चुके थे

उन्हें सुनाई देगी
यातनाओं के बीहड़ से आती एक आवाज
अब तक क्या किया जीवन क्या जिया
अरे मर गया देश जीवित रह गए तुम!

वे शायद तभी अंतर कर सकेंगे
उस देश और आज के राष्ट्र में
फर्क कर सकेंगे
मोबाइल के स्क्रीन से आती रौशनी
और जीवन के कठिन अंधेरों में

जहाँ आज भी जरूरी सवालों पर
चुप हैं कविजन साहित्यिक
चित्रकार शिल्पकार और नर्तक
अपनी मुखरता की अनभिज्ञता में
उन तमाम शब्दों की तलाश में
एक बार मुक्तिबोध तक पहुँचने के बाद
वे फिर कभी किसी से नहीं पूछेंगे
आपके पास
मुक्तिबोध का व्हाट्सएप नंबर है क्या?

शरद कोकास

जीवन संदेश

अपने संबंधों को बारिश की तरह न बनाएँ, जो आई और गई! बल्कि संबंध ऐसे बनाएँ जो हवा की तरह हमेशा आपके अंग संग रहें!

…

अभ्यास हमें कुशल बनाता है। दुख इन्सान बनाता है। हार विनम्र होना सिखाती है। जीत व्यक्तित्व को निखारती है। आत्मविश्वास आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है और सबसे बड़ी चीज यही है।

…

शब्दों के दांत रहीं होते पर ये काट लेते हैं, दीवारें खड़ी किए बगैर हमें बांट देते हैं!

…

पेड़ काटने आए हैं कुछ लोग मेरे गांव में, अभी तेज है धूप कह कर बैठे उसकी छांव में!

…

किसी को गलत समझने से पहले एक बार उसके हालत समझने की कोशिश जरूर करें। हम सही हो सकते हैं, लेकिन मात्र हमारे सही होने से जरूरी नहीं है कि सामनेवाला गलत हो।

…

माँ से छोटा कोई शब्द हो तो बताओ
उससे बड़ा भी कोई हो तो बताना!

हास्य

मत-मतांतर

स्वामीनाथ भारती, इलाहाबद : दूर-दराज गाँव जैसे कस्बे (फाफामऊ, इलाहाबाद) में 'वागर्थ' की हर माह प्रतीक्षा करता हूँ।

नवंबर के संपादकीय में मध्यवर्ग का चार श्रेणियों में निर्धारण उपयुक्त है। हमें लगता है समाज के ज्यादातर लोग चौथी प्रतिरोधक श्रेणी से संबद्ध हैं और कई कारणों से आपस में लड़ते हुए संतुलन साधे, सांस बाँधे रस्सी पर चलते रहते हैं। वे सदा भयाक्रांत रहते हैं, रस्सी हिली नहीं कि गिरे गड्ढे में। यह भय घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। फैशन के नाम पर साहसिक कामुकता, विकास के नाम पर घोटाला और मीडिया का मतलब बतंगड़ और निर्वस्त्र मनोरंजन है। अंत में गुजारिश है- टार्च जलाए रखें, घना अंधेरा है!

दिनेश जोशी, देहरादून : जनवरी अंक में प्रकाशित लीलाधर जगूड़ी की लंबी कविता 'कविता की बादशाहत और आदमीयत' का पाठ कष्टकारी और सुखदायक एक साथ इस मायने में साबित हुआ कि इस कविता के गूढ़ार्थ को आत्मसात करने के लिए कई पाठ करने पड़े। उसके बाद कविता की अर्थवत्ता जब खुलनी शुरू हुई तो फिर इस हद तक खुली कि कविता पाठकीय सुख उड़ेलने लगी। बादशाह के भीतर तड़प रही आदमियत की चाह का ऐसा दुर्लभ बयान यहीं संभव है। कवि होने का अदृश्य दंड तो बादशाह को भी भोगना पड़ता है, पंडित कवि को निश्छल प्रशंसा से दंडित होने लायक हर हाल में होना पड़ेगा। निस्संदेह यह वरिष्ठ कवि की अभिव्यक्ति की चरम दार्शनिक आकुलता है।

सार्थ, कानपुर : 'वागर्थ' जनवरी अंक। कुसुम खेमानी का उपन्यास 'हम अमृतकन्याएँ' पाठकीय रुचि का परिष्कार करता आगे बढ़ रहा है। स्त्री की अस्मिता को समझने में पितृसत्तात्मक समाज ने बहुत लापरवाही बरती है। समय की मांग है कि स्त्री के अमृतत्व को समझकर उसे समुचित सम्मान के साथ बराबरी का हक दिया जाए। महावीर राजी की लघुकथा 'कृष्णा बेटे' नारी-अस्मिता की सशक्त पैरोकार है।

एकांत श्रीवास्तव का धारावाहिक उपन्यास 'पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम' हृदय के तारों में एक अनोखा कोमल राग भर देता है। हम एक बहुत जटिल समय में जी रहे हैं। आँख खोल कर देखेंगे तो मन की सहजता के दर्शन भी हमें देखने का मिल जाएंगे।

गुस्तेव ली क्लोजियो का नोबेल व्याख्यान 'विरोधाभासी दुनिया में लेखन' एक गहरे सागर में पैठने के समान है। क्लेजियो का यह कथन हृदयांकित हो गया कि पुस्तकें किसी अचल संपत्ति अथवा बैंक खाते से ज्यादा मूल्यवान खजाना हैं। अष्टभुजा शुक्ल का लेख 'संस्कृत और मानव मूल्य' पढ़कर आश्वस्ति मिली। इसी कड़ी में अवधेश कुमार सिंह का आलेख 'मानव-मूल्य और आधुनिक साहित्य विमर्श' भी नए झरोखे खोलता नजर आया।

परिचर्चा 'लघु पत्रिका संवाद' अच्छी लगी। कई संपादकों का विचार एक साथ पढ़ने को मिला। वस्तुतः साहित्यिक लघु पत्रिकाएँ समय के पृष्ठ पर सशक्त हस्ताक्षर हैं।

अवधेश प्रधान का लेख 'कामायनी की भविष्य

पीयूष कांत राय, हावड़ा : 'वागर्थ' का फरवरी अंक पठनीय और संग्रहणीय है। रामेश्वर सिंह काश्यप का काव्य रूपक 'नीलकंठ निराला' अद्‌भुत और प्रेरक है।

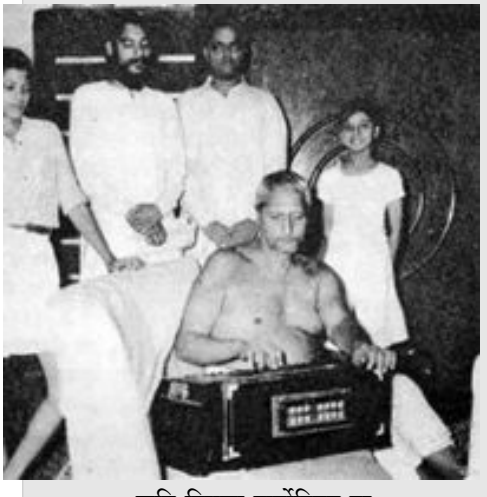

कवि निराला हार्मोनियम पर

यह निराला के व्यक्तित्व को मार्मिक ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत करता है। निराला और उनकी पत्नी मनोहरा देवी का संवाद दोनों के प्रेम और वेदना को सघनता के साथ उद्‌घाटित करता है। इस काव्य रूपक में निराला की कविताओं का बड़ा सटीक उपयोग हुआ है, जिससे उनका अर्थ भी खुलता है। साथ ही निराला का व्यक्तित्व भी। यह नाट्य रूपक निराला के संघर्षों को समझने में नई पीढ़ी के लिए कारगर साबित होता है। रचना की पुनर्प्रस्तुति और संपादन उसके मर्म को कहीं भी बाधित नहीं करता। क्या ही अच्छा हो, विभिन्न संस्थानों में इसका मंचन करके वर्तमान अंधकार से लड़ा जाए। इस पुनर्प्रस्तुति के लिए महेश जायसवाल को बधाई!

दृष्टि' भविष्य-निर्माण को दिशा देने वाले दीपक के समान है जो गहन अंधकार में डूब जाने से हमें बचा सकता है। राजस्थानी और हिंदी की सभी कविताएँ अंक के महत्व को और बढ़ा देने वाली हैं। सरल कविता लिखना बहुत कठिन कार्य है। अंक के सभी कवि साधुवाद के पात्र हैं। साक्षात्कार के अंतर्गत नामवर सिंह से हारून रशीद खान की बातचीत, उनके चिंतन-मनन-लेखन व इंसान को समझने में बहुत सहायक सिद्ध होगी। तरसेम गुजराल की 'फिसलन', अनुज लुगुन की 'हाजिरी', बसंत त्रिपाठी की 'असफल सफल' तथा पंकज चतुर्वेदी की 'जाड़ा'- चारों कहानियाँ पाठकीय भूख को तृप्ति देने वाली हैं।

मानवता के पक्ष में अलख जगाता यह अंक 'वागर्थ की सार्थक अभिव्यक्ति है।

प्रदीप तिवारी 'धवल' : नवंबर 2017 का अंक पूरा पढ़ गया। मुक्तिबोध पर उपलब्ध विशेष सामग्री के लिए धन्यवाद देता हूँ। चारों कहानियों- पीपल का पेड़, घरभरन की माई, फूलबासो तथा बड़ी खबर ने प्रभावित किया। युवा कवि पंकज चतुर्वेदी और आनंद गुप्ता की कविताएँ श्रेष्ठ लगीं। आदिवासी कविताओं से साक्षात्कार कराने के लिए आपका ऋणी रहूँगा। दोनों लघुकथाएँ ध्यानाकर्षित करती हैं।

महान साहित्यकार एवं नोबेल पुरस्कार से सम्मानित काजुओ इशिगुरो के विचारों को अवधेश प्रसाद सिंह ने बड़े मनोयोग से प्रस्तुत किया है। इन्हें पढ़कर लेखक का पूरा व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है। एकांत श्रीवास्तव का 'पँखुड़ी-पँखुड़ी प्रेम' रुचिकर है। कुसुम खेमानी का बतरस 'हम अमृतकन्याएँ' उस पड़ाव पर है जहाँ से जिज्ञासा और रोचकता और बढ़ गई है। बोलचाल की अत्यंत जीवंत भाषा से अभागन कोठेवालियों का जीवन वृत्तांत उद्‌घाटित होता जाता है।

किताबें

आवाज में झर कर (कविता संग्रह) : **प्रकाश**

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : मूल्य : 250 रुपए

प्रकाश

रजा फाउंडेशन के सहयोग से प्रकाशित प्रकाश के इस संग्रह का उनके मरणोपरांत प्रकाशन इस बात का साक्ष्य है कि प्रकाश एक भाषा सजग और शिल्प निपुण कवि थे। काव्य मर्म, दृष्टि और ब्यौरों के बीच प्रकाश के यहाँ दूरी नहीं है, न ही अलगाव है। वे दरअसल इन सभी के बीच गहरे लगाव के शिल्पकार थे। भारतीय भाषा परिषद के 'युवा पुरस्कार' से सम्मानित कवि का यह दूसरा कविता-संग्रह है।

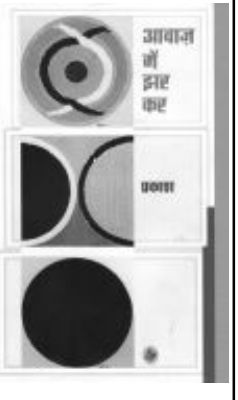

पाँच भक्त कवि (आलोचना) : **मुरली मनोहर प्रसाद सिंह**

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली : मूल्य : 350 रुपए

कबीर, मीराँबाई, जायसी, सूरदास और तुलसीदास की अलग-अलग विशिष्टताओं ने भक्ति आंदोलन में जिस वैविध्य की सृष्टि की थी, उसे उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ इस पुस्तक में विवेचना का विषय बनाया गया है। साथ ही इनकी वर्तमान प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया गया है।

अच्छे विचारों का अकाल (व्याख्यान) : **अनुपम मिश्र**

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली : मूल्य : 250 रुपए

अच्छे विचारों के अकाल ने हमारे वर्तमान को लाभ और लोभ के रास्तों पर लाकर छोड़ दिया है। ऐसे दौर में अनुपम मिश्र के प्रकाशित व्याख्यान चेतावनी के शिल्प में पुनर्जागरण के संदेश की तरह हैं।

बूँद भर सावन (कहानी संग्रह) : **कीर्ति शर्मा**

बोधि प्रकाशन, जयपुर : मूल्य : 175 रुपए

कई घटनाएँ जिन्हें हम आम जीवन में अनदेखा करते हैं- उन्हें कीर्ति शर्मा अपनी कहानियों का विषय बनाती हैं। माँ की असीम संवेदना हो, रिक्शेवाले की सदाशयता, बचपन में बिछुड़ गई सहेली की याद, प्रेम का उच्चादर्श, इन सबाको बेहद गहाराई और सूझ-बूझ से वे अभिव्यक्ति देती हैं।

बतरस

***कथन शेष** : यह कहानी है उस 'लालबत्ती-गली' की! जो हर शहर और हर क़स्बे में होती है और अन्तःसलिला की तरह समाज में बहती रहती है। इसके बाशिन्दों को अभिजात्य वर्ग अनुपयोगी जल मानता है, जबकि इनका मानना है कि वे अपना जल-धर्म निभाती हैं और समाज के अंदर की गंदगी को फैलने से रोकने के साथ ही उसका परिष्करण भी करती हैं।*

इस बाज़ार में सच्चे प्रेम की प्यासी कई अमृतकन्याएँ अपना तन-मन समर्पित कर स्वयं को एकनिष्ठ साबित करना चाहती हैं, किन्तु देह-वासना के इस बाज़ार में उन्हें प्रेम नहीं, मौत मिलती है।

ये अमृतकन्याएँ : लालबत्ती की

कुसुम खेमानी

'सैयाँ दिल में आना रे, आके फिर न जाना रे/ छम छमा छम छम/ राजा बन के आना रे, मोहे ले के जाना रे/ छम छमा छम छम।' खुले गले से ऊँची आवाज़ में झूम-झूमकर यह गीत गाती हुई प्रतिमा! 'छम छमा छम छम' कहते ही दोनों पंजों पर गोल घूमती हुई अपनी बाँहों को आकाश में उड़ते पक्षी के डैनों की तरह फैला देती थी और वापस मद्धिम चाल में थिरकती हुई गली के बीचों-बीच मस्त हिरणी-सी यों चल रही थी, मानों सोनागाछी की वह गली किसी राजा का दरबार-ए-ख़ास हो! जिसके प्रांगण में उसे पूर्ण उन्मुक्तता से अपना नृत्य प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया गया हो। उसकी चाल-ढाल में एक लोकातीत मदहोशी थी और वह कभी बाएँ तो कभी दाएँ झूमती हुई मंथर गति से

आगे बढ़ी जा रही थी। 'स्वयंसिद्धा' के दरवाजे पर खड़ी राधिका ने जब उसे आवाज़ दी, तो उसे वह भी नहीं सुनाई दी और इसके पहले कि राधिका उसे दुबारा आवाज़ देती 'अरे कोई बचाओ रे! ऐ मेरी माँ, बचा मुझे! हे दुर्गा माँ, तुम कहाँ हो? बचा लो मुझे! बचा लो रे कोई!' की मर्मभेदी पुकारें धरती-आकाश को एकाकार करती हुई उस पूरी गली में गूँजने लगी थीं।

सोनागाछी के तीन नंबर मकान से भीषण क्रंदन में गुँथी हुई, उलझे शब्दों की यह लड़ी! और उसके साथ आतीं दर्द-भरी चीत्कारें! सभी सुनने वालों के दिलों को बेधे डाल रही थीं, साथ ही पायल, केया, रुक्मी, झुमकी, सोनिया आदि के चीख़ने-चिल्लाने के स्वर ने उन आवाज़ों के साथ मिलकर वहाँ कोहराम-सा मचा रखा था। तभी अचानक समय ठहर-सा गया और वे चीख़ें और चीत्कारें, एक गझिन सन्नाटे में बदल गईं। इस क्षणिक सन्नाटे का कारण लोगों की साँसों का उनके कंठ में अटक जाना था, जब धू-धू कर जलती हुईं दो मानव-आकृतियाँ उस छोटे से बरामदे में उनके बीचोंबीच आ गिरी थीं। क्षण मात्र में ही वहाँ का नज़ारा बदल गया था और वह सारी भीड़ ख़ुद को बचाने के चक्कर में लग गई थी।

बेबी की बहन मुनिया अपनी दो साथिनों के साथ दौड़कर मोड़ पर खड़े एक सिपाही के पास गई और उसकी चिरौरी कर उससे बेबी को अस्पताल पहुँचाने की मिन्नतें करने लगीं, लेकिन 'दया' शब्द के अर्थ से ही अपरिचित यह निकम्मी कौम! चूँकि मात्र पैसे की ही भाषा समझती है इसलिए वह बिना हिले-डुले, न केवल पान चबाता रहा, बल्कि अपने काले दाँतों को 'सींक' से कुरेदते हुए अपना पूरा जबड़ा खोलकर पास खड़े मस्तानों से उन लोगों से संबंधित अश्लील बातें करके खी-खी ठीं-ठीं भी करता रहा। वे लड़कियाँ लगातार रिरियाती हुईं उससे सहायता की भीख मांग रही थी, पर उस तोंदवाले चिकने घड़े पर इसका कोई भी असर नहीं हो रहा था। तभी पीछे से आकर एक ज़बरदस्त हाथ ने उस मस्तान सिपाही की वर्दी के कॉलर को कसकर पकड़ लिया और कड़कदार आवाज़ में कहाः ''अबे ओ हरामी की औलाद! कभी तो मनुख-धर्म भी निभा लिया कर स्साले! उल्लू के पट्ठे! तुम अभी की अभी एम्बुलेंस का इन्तजाम करते हो या बुलाऊँ तुम्हारे ससुरों को?'' यह कह कर उस हाथ ने उसके कॉलर को छोड़ कर उसके हाथ से डंडा छीन लिया और उस डंडे को ज़ोरों से लहराते हुए 'दक्काल' कर कहा : ''जल्दी करते हो सिपहैया जी या...?''

एक सेकेंड में ही वह सिपाही अपनी सारी हेकड़ी भूल गया और आवाज़ में मिश्री घोलकर बोला : ''राधिका दीदी जी! हम अभी ही अम्बुलेंस का बुलाय देत हैं, आप काहे परेसान होत हैं।''

''रामसिंह, डायलॉगबाजी बंद कर और तुरंत एम्बुलेंस हाज़िर कर, समझे।'' आश्चर्यजनक ढंग से बगल की गली में खड़ी एम्बुलेंस! पलक झपकते ही वहाँ आ गई और दोनों घायलों को उसमें लिटाने के बाद, राधिका और बेबी की चचेरी बहन मुनिया, उसी एम्बुलेंस में आगे की सीट पर बैठ कर अस्पताल के लिए रवाना हो गईं।

रास्ते में राधिका के पूछने पर मुनिया ने उसे बताया कि चूँकि उसकी और बेबी की कोठरी के बीच, काठ का एक पतला सा 'पार्टीशन' भर है, इसलिए उसे मंसाराम और बेबी के बीच की सारी बातें सुनाई दे रही थीं। उसने बताया : इस झगड़े की शुरुआत मंसाराम के हजार रुपए माँगने से हुई थी और बेबी के यह कहने पर कि वह तो उसके सिवा किसी और के साथ सोती नहीं है, तो फिर उसके पास इतने सारे रुपये आएँगे कहाँ से सुनते ही मंसाराम ज़ोरों से चिल्ला-चिल्लाकर बकने लगा

: ''अरी ओ सती साबित्री! जादा चरित्तर मत बिखरा। ऐ हरामजादी! तू एक के साथ सो या सौ के साथ इससे मेरे क्या फरक पड़ता है? मुझे तो बस नोट चाहिए नोट! इसके लिए चाहे तू अपनी हड्डियाँ बेच या अपना माँस! पर मुझे तो अभी के अभी हजार रुपए चाहिए। अरी ओ कुतिया, क्या तू मेरी बीवी है, जो तुझे मैं ही हमेशा पैसा देता रहूँगा? अरी ओ रांड! बकबक बंद कर और बता कि तू मुझे पैसा देती है या मैं तेरा कचूमर निकालूँ?''

''बेबी ने उसे बहुत समझाने की कोशिश की, हाथ-पैर जोड़े, अपना बक्सा भी खोलकर दिखाया, पर उस बन्दे के गुस्से का पारा तो ऊपर की ओर चढ़ता ही गया। बेबी ने जब उसे दिखाने के लिए पलंग के नीचे से अपना बक्सा निकाला था, तो मंसाराम को रसोई के बर्त्तन-भांड़ों के साथ, किरासिन तेल का एक डिब्बा भी दिख गया था। अब क्या था, उस नीच ने उस डिब्बे का पूरा किरासिन तेल बेबी पर उलट दिया और पलक झपकते ही पॉकेट से माचिस निकाल कर उसके आग लगा दी। अचानक किए गए इस अनसोचे हमले से बेबी बहुत ज़्यादा डर गई और घबराकर मंसाराम से चिपक गई। मंसाराम ने आग की लपटों से घिरी बेबी को, अपने से दूर झटकने की बहुत कोशिश की, पर बेबी अपने दोनों हाथों को उसकी काँख के नीचे से घुसाकर उन्हें उसकी पीठ पर कसे, उससे चिपकी ही रही, नतीजतन मंसाराम भी उसके साथ अपनी ही लगाई हुई आग में जलने लगा।''

इतना कह कर मुनिया सुबक-सुबक कर रोने लगी। राधिका ने एक माँ की तरह उसे अपने से चिपकाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे चुप किया ही था कि एम्बुलेंस ने अस्पताल में प्रवेश किया। वहाँ के इंमरजेंसी विभाग के डॉक्टरों ने बेबी का 'चेकअप' करते ही उसे मृत घोषित कर दिया। दुष्ट मंसाराम को अस्पताल में भरती तो कर लिया गया, पर वे सब जानते थे कि वह बचेगा नहीं। और दो दिन बाद ही उसके मरने की ख़बर गली में आ गई।

जिस दिन 'बेबी-कांड' हुआ था उस दिन केया अपने एक ग्राहक के साथ कलकत्ते के बाहर गई हुई थी। वापिस आते ही जब उसने गली के रखवाले सिपाही की बदसलूक़ी की कथा सुनी, तो उसका ख़ून खौल गया और उसने उसे कड़ा सबक सिखाने की ठान ली। इसके लिए केया ने एक 'फुलप्रूफ प्लान' बनाया, जिसमें उसकी कई सहेलियाँ भी शामिल थीं।

'प्लान' के शुरू में उसने उस सिपाही को अपनी अदाओं से रिझाया और उसे अपने कोठे पर आने का इशारा कर, धीमी चाल से मटकती हुई अपने ठाँव की ओर चल पड़ी। उसके पीछे-पीछे मस्ती में चूर वह कामासक्त सिपाही भी उसके कोठे पर जा पहुँचा। कुछ ही देर बाद जब उस कोठे के बरामदे से कई लड़कियों के चिल्लाने की आवाज़ें सुनाई पड़ीं, तो सबको बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ बेवक़्त इस तरह का हो-हल्ला सुनने में नहीं आता था। ख़ास अचम्भे की बात यह थी कि जो सिपाही हर वक़्त हेकड़ी से अपना डंडा घुमाता हुआ गरदन ताने तिरछा-तिरछा चलता दिखता था, वही सिपाही आज केया के जाल में फँस जाने के कारण अपनी गरदन झुकाए हुए एक अपराधी की तरह अपने पीछे आतीं अनेक लड़कियों की लानत-मलामत सह रहा था।

दरअसल केया ने मुनिया, पायल, लिपिका, बबली आदि लड़कियों से मशविरा कर बहुत ही होशियारी से पायल और लिपिका को सिपाही के आने के पहले ही अपने पलंग के नीचे छिपा दिया था। सिपाही के आने पर केया ने पहले तो अपनी अदाओं और नखरों से उसका ऐसा स्वागत किया,

जैसे पुराने ज़माने में राजा-महाराजाओं का होता था और उसी कड़ी में दो मिनट फ़िल्मी गाने पर नाचने के बाद उसने उसे पलंग पर लिटा लिया। सिपाही तो इस घड़ी का बेसब्री से इन्तज़ार कर ही रहा था। उसने आव देखा न ताव झट से अपना पैन्ट उतार कर पलंग के एक कोने में रख दिया।

पलंग के नीचे छिपीं लड़कियाँ तो इसी इन्तज़ार में थीं। उन्होंने बिना कोई आवाज़ किए पैन्ट को आहिस्ता से नीचे खींच लिया और उसमें जो भी माल-मत्ता था, वह निकाल कर, पैंट को यथास्थान रख दिया। रति-क्रिया संपन्न कर लेने के बाद तृप्त सिपाही राम जी जब मस्ती से एक अश्लील धुन गुनगुनाते हुए, सज-सँवर कर जाने लगे, तो केया ने एक कनीज़ की मुद्रा में कोरनिश बजाते हुए कहा : ''हुज़ूरे आलम! इस नाचीज़ की बख़्शिश?'' नवाबों की खिदमत में कहे जाने वाले भारी-भरकम अल्फ़ाज़ सुनकर इतराए हुए सिपाही ने अपने गुरूर में 'हाँ! हाँ! क्यों नहीं, तुम भी क्या याद रखोगी!' कहते हुए सदा ही रिश्वत के रुपयों से ठसा-ठस भरा हुआ अपना बटुआ जब एक झटके से पैन्ट से खींचकर बाहर निकाला तो उस बटुए को एकदम खाली देखकर उसके होशो-हवास उड़ गए और उसका माथा चकराने लगा। चोरों को पकड़ने में उस्ताद चोर! आज एक ऐसी विचित्र उलझन की गिरह में फँस गया था कि उसका कोई भी सिरा उसके हाथ में नहीं आ रहा था।

वह पत्थर की मूर्ति-सा 'सुन्न'! कुछ देर तो वहीं खड़ा रहा, फिर कोई चारा न देखकर दोनों हाथों से सिर पकड़े वहाँ से भाग निकला।

केया मन ही मन हँसती हुई 'मेरी बख़्शीश! मेरी बख़्शीश!' कहती उसके पीछे भागती-सी चल रही थी और पलंग के नीचे की लड़कियों के साथ कोठरी के आसपास छिपी बाक़ी की लड़कियाँ भी केया के पीछे-पीछे 'मेरे सैंया भये कोतवाल, पर पाकिट से कंगाल' आदि जुमले सिपाही जी को सुनाती हुई ठेठ गली की नुक्कड़ पर सिपाही के अड्डे पर जा पहुँचीं और उन जुमलों के नारे बना कर उन्हें गाती हुई उस सिपाही के चारों ओर घूमने लगीं।

अपनी इज़्ज़त का सर्वनाश होता देखकर सिपाही ने अन्त में हाथ जोड़कर केया को एक ओर बुलाया और गिड़गिड़ाते हुए कहा : ''केया जी! ख़ैर मेरी इज्जत ससुरी तो गई पानी लाने, पर आज तो मेरी समझ भी मेरा साथ नहीं दे रही है!.. आज मेरा बटुआ ऐसे ख़ाली हो गया, जानों वहाँ कोई भूत-परेत था! केया जी! हम आपको पइसा बाद में दे देंगे, दया करके आप हमें अभी माफ़ी दे देवें।'' केया ने कहा : ''सिपाही जी! पैसा तो हम लोगों के लिए हाथ का मैल होता है, पर जब आप लोग हम लोगों के साथ आवारा कुत्तों जैसा व्यवहार करते हैं तो हमें बहुत तक़लीफ़ होती है। जब बेबी आग से जल रही थी, तब आप लोगों का जो व्यवहार था वह माफ़ी के क़ाबिल तो नहीं है, पर हम लोग आप लोगों की तरह कमीने नहीं हैं, इसलिए इस चेतावनी के साथ आपको माफ़ी दे रहे हैं कि कल से यहाँ की हर औरत को आप अपने घर की माँ-बेटी समझेंगे, ठीक है?'' अपने दोनों कानों को छूकर सिपाही बोला : ''हाँ केया जी! कसम काली माई की, हमारा वादा है कि हम आज से आपलोगों के भक्षक नहीं, रक्षक बनेंगे।''

केया के इशारे से जब वह जत्था लौटकर जाने लगा तो केया ने रास्ते में रुक कर राधिका को वह पूरा वाक़िआ सुनाया। उसकी बातें सुनकर राधिका गंभीर हो गई और ठहरे स्वर में बोली : ''केया! हमें हमेशा अपनी औक़ात देखकर ही किसी से झगड़ा मोल लेना चाहिए। यह मत भूलो कि इस गली में कोई भी अपना नहीं है और यहाँ की सारी यारी मतलब की है, इसलिए हमें अपना हर कदम

सोच-समझ कर रखना चाहिए। ख़ैर, जो घट गया सो घट गया, पर अब तुम्हें ख़ूब सावधान और सतर्क रहना होगा, क्योंकि चोट खाया हुआ साँप कब? और कैसे? हमला कर देगा, इसका अंदाज़ करना बहुत मुश्किल होता है।

''केया! दरअसल तुम मन की बहुत अच्छी हो, और जब भी तुम ऐसा कोई काम करती हो, तो मुझे तुम्हारी मुर्शिदाबाद की लड़की वाली बात याद आ जाती है। मुझे याद है कि कैसे तुमने रात के एक बजे मेरा दरवाज़ा खटखटाया था और फिर मुझे बाध्य किया था कि मैं मुर्शिदाबाद से आई हुई, उस तेरह साल की लड़की का उद्धार करूँ। तुम्हारी ताक़ीद थी कि हम बिना समय गवाएँ उस लड़की को रातों-रात उसके घर पहुँचा दें, वरना जिस नीच ने उसे यहाँ भेजा है, वह उसे छोड़ेगा नहीं। इसलिए हम दोनों उसी वक्त टैक्सी से उसके घर के लिए निकल पड़े थे और उसके माँ-बाप को समझा-बुझाकर उसे लौटा आए थे। केया, तुम चाहती तो उस लड़की को धंधे के लिए बेचकर लाखों कमा सकती थी, पर तुमने अपनी मनुष्यता और संवेदनशीलता के कारण इतने बड़े लोभ का संवरण कर लिया था। तुम्हारी ऐसी त्यागमयी-करनी देखकर मेरा मन तुम्हारे प्रति श्रद्धा से भर गया था और उसी दिन से तुमने मेरे दिल में एक ख़ास जगह बना ली है।

सोनागाछी की उस गली में आज जो दृश्य रचा गया था, वह वाक़ई क़ाबिले-तारीफ़ था। बिना किसी को चोट पहुँचाए, ऐसे निर्मल हास्य की सृष्टि हो जाना, वह भी वहाँ के माहौल में! सचमुच ही एक अनोखी घटना थी। इस वजह से आज सबके मनों में हल्कापन था। प्रफुल्लता की उसी रौ में राधिका ने नीचे से आवाज़ दी : ''अरी ओ छम छमा छम प्रतिमा! कहाँ हो? आओ, आज उस दिन के अधूरे नाच और गाने को पूरा कर लो।'' राधिका की पुकार के साथ ही प्रतिमा वहाँ ऐसे उग आई, मानों वहीं ज़मीन में गड़ी हुई थी। उसकी तत्परता से निहाल होकर राधिका बोली : ''मेरी छम्मकछल्लो! अपने हाल-चाल सुनाओ। सच बताओ कि क्या मोहन अभी भी तुम्हारा ख़ूब ख़्याल रखता है या बस यों ही तुम्हें टरकाता रहता है?''

लाड़ से राधिका के गले में झूलकर प्रतिमा शरमाती हुई फुसफुसा कर राधिका के कानों में मोहन की नाटकीय मक्कारियों का रस भरा बयान करती रही और पूरे मन से उसे सुनने का अभिनय करती हुई राधिका प्रतिमा के लिए और भी अधिक चिन्तित हो गई।

राधिका को चिन्ताओं के आकाश में खोया देख कर केया ने उसे वापस धरती पर लाने के लिए कहा : ''दीदी! जैसे आप उस दिन हमें इस गली के अपने अनुभव सुना रही थीं, वैसे ही एक-आध क़िस्से आज भी सुनाइए ना।''

केया के आग्रह की गहराई को देख कर राधिका अभी दूसरों के उदाहरण देते हुए केया और प्रतिमा को वहाँ के जीवन की सच्चाइयों से रूबरू करवा ही रही थी कि सोदपुर के ब्राह्मण ख़ानदान की रत्ना ने वहाँ आ कर राधिका से मनुहार-भरे स्वर में कहा : ''राधिका दी! एक मिनट के लिए मेरे कमरे में चलिए ना, मैं आपको कुछ दिखाना चाहती हूँ। बस, यही तो रहा मेरा घर! चलिए ना राधिका दी!'' उसके प्रेम-भरे अनुरोध को टालना असंभव था इसलिए जब राधिका, केया और प्रतिमा को साथ लेकर रत्ना के कोठे पर पहुँची तो वहाँ की शुचिता देखकर दंग रह गई।

रत्ना की वह छोटी-सी कोठरी! कोठा कम और 'लड्डू गोपाल की ठाकुरबाड़ी' ज़्यादा लग रही थी। कोठरी की अलगनी पर घटिया सिल्क की एक सफ़ेद साड़ी टँगी हुई थी, जो आम तौर पर शुद्ध

आचार-व्यवहार पालन करने वाली विधवाएँ पूजा के समय पहना करती हैं। उसका सारा ढंग-ढाँचा देखकर राधिका अवाक् रह गई और उसने रत्ना से कहा : ''बहिनी! क्या तुम यहाँ साधुओं के साथ सत्संग करती हो, जो तुमने कोठे के ऐसे साज-बाज कर रखे हैं? मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि तुम कैसे तो अपने ग्राहकों को पटाती होगी और कैसे वे रंजते होंगे?''

राधिका की चिन्ता देखकर रत्ना ने बिना संकोच के कहा : ''दीदी! मेरे लिए आपका यह ममता-भरा प्रेम बहुत ही क़ीमती है, क्योंकि बचपन से आज तक किसी ने भी मेरी हारी-बीमारी तक में ऐसी चिंता नहीं की, जैसी आज आप कर रही हैं।'' कहते न कहते उसने अपने ठाकुर को साष्टांग प्रणाम कर राधिका के पैर छुए और कहा : ''दीदी! आशीष दीजिए कि मैं सदा 'सत्पथ' पर रहूँ।''

राधिका ने आज अनेक वर्षों बाद ऐसे उद्‌गार सुने थे और इस गली में आने के बाद पहली बार उसका सामना एक ऐसी औरत से हुआ था जो रुपये-पैसे की नहीं, बल्कि 'सत्पथ' पर चलने की कामना कर रही थी। राधिका की दुनिया देखी हुई आँखों में हल्का-सा पानी तिर गया और वह पलकें झपकाना भूल कर उसे एकटक देखती ही रह गई।

भावों की इन ऊँचाइयों को केया समझ नहीं पा रही थी, इसलिए ऊबी हुई मुद्रा में बोली : ''रत्ना दी! आप यह तो बताइए कि आपने राधिका दी को यहाँ क्यों बुलाया है?''

केया का उलाहना सुनकर रत्ना ने 'सॉरी', 'सॉरी' करते हुए अपना एक संदूकनुमा बक्सा, पलंग के नीचे से बाहर निकाला और उसमें रखी हुई चीज़ों को पलंग पर सजाने लगी। सबसे पहले उसने महँगे दामों की लाल पाड़ वाली दो 'गरद' सिल्क की साड़ियाँ निकाल कर कहा : ''राधिका दी! दुर्गा पूजा आने वाली है और आप तो जानती ही हैं कि हम बंगाली लोग इस त्यौहार पर परिवार के सभी छोटों-बड़ों को उपहार देते हैं। मेरी कई दिनों से साध थी कि मैं दादी, माँ, बाबू जी और दादा जी के लिए कपड़े बनवाऊँ, पर यहाँ कई घरों में बर्तन माँजने और झाड़ू-पोंछा करने के बाद भी मैं कुछ ख़ास बचा नहीं पाई, इसलिए मुझे यह सामान इकट्ठा करने में दो-तीन साल लग गए। दीदी! ध्यान से देखिए, मैंने एक-एक चीज़ छाँट कर ख़रीदी है, आख़िर मेरे मायके के लोग पैसे वाले जो ठहरे। दीदी! मैं आज ही सोदपुर जाऊँगी और सबको प्रणाम करके यह सामान उन्हें दे आऊँगी।'' ये बातें कहते हुए रत्ना का चेहरा आनंद से चमचमा रहा था। ऐसा लग रहा था मानों उसके शैशव, कैशोर्य और युवावस्था तीनों ने उसे अपने 'प्रेम-रसायन' से ऊपर से नीचे तक नहला दिया है।

उसके प्रेम के ज्वार को देखकर राधिका ने बतौर एहतियात उससे कहा : ''रत्ना, मुझे याद है कि जब तुम्हारा पति तुम्हें यहाँ बेच गया था, तो तुम यहाँ से भाग कर अपने पिता के पास गई थी और उन लोगों ने तुम्हें देखकर न केवल अपने दरवाज़े पर ताला लटकवा दिया था, बल्कि दरवान को हिदायत दे दी थी कि तुम्हें अंदर न घुसने दे।''

''दीदी! वह तो पुरानी बात है और तब तो मैं वहाँ आश्रय माँगने गई थी, पर आज तो मैं केवल उन्हें प्रणाम करने और उपहार देने जा रही हूँ, फिर वे मुझे क्यों रोकेंगे?''

''ख़ैर, तुम्हारा इतना ही मन है तो चली जाओ, पर जाने से पहले उन्हें फ़ोन ज़रूर कर लेना।''

जब रत्ना ने राधिका की इस बात के उत्तर में 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नहीं कहा तो राधिका को खटका भी हुआ कि रत्ना शायद उसकी बात को तवज्जुह नहीं देगी, पर इसे अपने मन का वहम मान कर वह यह कहते हुए उठ गई कि ''रत्ना, तुम्हारी सारी चीज़ें बहुत सुन्दर हैं, भगवान तुम्हारी इच्छा

पूरी करे।''

रत्ना ने जाती हुई राधिका को रोक कर उसे फिर से प्रणाम किया और भविष्य के गर्भ में छिपी 'होनी' से अनजान राधिका ने उसे बेसाख़्ता आशीर्वाद दे दिया : ''सुखी रहो!''

राधिका ने शाम की चाय पी कर कुल्हड़ एक ओर फेंका और रत्ना की कोठरी की ओर चल पड़ी। स्त्री चाहे जितनी परिपक्व हो, पर मायके के नाम से उसके हृदय में एक ऐसा आलोड़न होता है, जिसे समझना पुरुष के क्या! स्वयं स्त्री के बूते में नहीं होता? राधिका के मन में उठती यह उत्कंठा कि रत्ना का मायका जाना कैसा रहा शायद इतनी प्रबल थी कि वह बरबस ही रत्ना की कोठरी के सामने जा खड़ी हुई।

रोज जिस कोठरी से सरे-साँझ ही 'शंखघोष' और पूजा के 'धूनों' की ख़ुशबू बाहर उड़कर राह चलते का मन हरा कर देती थी; वहाँ आज एक अबूझ निस्तब्धता छाई हुई थी। सन्नाटा! नीरवता! आदि शब्द एक अर्थ के होते हुए भी अक़्सर अलग-अलग भाव व्यक्त करते हैं। जैसे कई बार हमें हमारे मनों में इन शब्दों के साथ 'मृत्यु' शब्द भी जुड़ा दिखने लगता है, और वह मृत्युगंध हमें अनायास ही अपनी ओर खींच लेती है। रत्ना की कोठरी का दरवाज़ा बंद देख कर राधिका सहम गई और उसने पहले हल्के से फिर ज़ोरों से उस बंद दरवाज़े को खटखटाया। कोई जवाब न आने पर किसी बुरी घटना की आशंका से वह दहल गई, तभी उसे खोजती हुई मधुमिता और केया भी वहाँ आ गई और वे रत्ना की कोठरी के भीतर का सारा माजरा समझ गईं। राधिका की काष्ठवत हालत देखकर केया ने तुरंत पिंकू और सिपाही को बुलाकर रत्ना के दरवाज़े को तुड़वा दिया। दरवाज़े के ठीक सामने ही उन्हें पंखे से लटकती हुई रत्ना दिखाई पड़ी, जिसकी खुली हुई बड़ी-बड़ी आँखें ऐसी लग रही थीं मानों इस दुनियाँ से पूछ रही हों : ''आख़िर मेरा क़सूर क्या है? क्या मेरा क़सूर यह है कि मैंने एक पढ़े-लिखे ग़रीब आदमी से विवाह किया और प्राणपण से अपना प्रेमव्रत निभाया? या यह है कि मुझे जब भी अपना शरीर बेचना पड़ा तो मैंने उसमें भी पूरी ईमानदारी और सत्यता निबाही? या यह है कि मैं अपने परिचितों को उनके गुनाहों के लिए माफ़ करके, आज भी उनको प्रेम करती हूँ? क्या कुछ भी पाने की आशा किए बिना प्रेम करना अपराध है?''

ये प्रश्न चाहे राधिका के अपने मनोलोक में ही उत्पन्न हुए थे, फिर भी उनसे घबरा कर, उसने आगे बढ़ कर हल्के से रत्ना की आँखों को उसकी पलकों से ढँक दिया और केया को धीमे से कहा : ''केया बेटी! रत्ना को हम एक लावारिस लाश की तरह नहीं दफ़ना कर, हिन्दू पद्धति से इसका दाह-संस्कार करेंगे और यह सारा इन्तज़ाम तुम्हें करना है; खर्च की चिंता मत करना।''

राधिका की बात सुनकर केया चकित थी और सोच रही थी : 'एक-एक पैसे को दाँत से पकड़ने वाली राधिका दी के मन में ऐसा क्या चल रहा है कि उन्होंने यह निर्णय लिया?'

3 लाउडन स्ट्रीट, कोलकाता-700017